महात्मा

श्री भूरीबाई 'अलख'

जीवनी और संस्मरण

आदि सम्पादक
ब्रह्मलीन लक्ष्मीलाल जोशी

वर्तमान सम्पादक
देवकर्ण सिंह राठौड़

प्रकाशक :
श्री अलख आश्रम
कुम्हारवाड़ा, नाथद्वारा, राजसमन्द (राज.)
मो. नं. 09414156984

संस्करण: सातवां-2015

प्राप्ति स्थान :
• अलख नयन मन्दिर नेत्र संस्थान
अशोक नगर, उदयपुर - 313001 (राज.)
मो. नं.: 09414156984, 09950995041, 09772204626
e-mail : info@alakhnayanmandir.org,
Website
: www.alakhnayanmandir.org

• म. शिवदानसिंहजी शिवरती, श्री अलख

आश्रम ट्रस्ट
कुम्हारवाड़ा, नाथद्वारा, राजसमन्द (राज.)
मो. नं.: 09414156984 09413474816, 09414163682

• आत्मदर्शन स्थल : अलख ज्योति, बाई मन्दिर
लावासरदारगढ़, राजसमन्द (राज.)
मो. नं.: 09414157050, 09351954191

मुद्रक :
चिराग प्रकाशन
3-थ-19, प्रभातनगर सेक्टर 5, हिरणमगरी
उदयपुर
2

प्रकाशकीय

परम पूज्या महात्मा भूरीबाई जिनको भूरी भूआजी, 'अलख', सुथारन बाई, बाई आदि नामों से जानते हैं, के बारे में कुछ लिखना असंभव सा लगता है। वे हम सबकी पहुंच से दूर थीं, वे स्वयं लिखने के विरुद्ध थीं, यहाँ तक कि बोलना भी उनको ठीक नहीं लगता था। उन्होंने अपने निवास के मुख्य द्वार 'अलख आश्रम' पर 'चुप' लिखवा दिया था। शास्त्रों को सन्निपात (पागलपन) में लिखे हुए कह दिया। वे कहती थीं 'अनुभव' को कोई बोल और लिख नहीं सकता। फिर भी 'स्वान्तः सुखाय', 'यद्यपि लिखे बिन रहा न कोई' बाई के संस्मरणों को बाई के भक्तों ने समय-समय पर लिपिबद्ध किया है। श्री लक्ष्मीलालजी जोशी द्वारा सम्पादित इन्हीं संस्मरणों की पुस्तक छः दफा छप चुकी है। गुजराती में भी कुछ प्रकाशन अलग-

अलग जगहों से हुए है ।

बाई हिन्दी बहुत ही कम बोलती थीं। प्रायः मातृभाषा मेवाड़ी में ही उच्चारण होता था। शास्त्रों का गहन अनुभव झलकता था, यद्यपि उन्होंने शास्त्र कभी नहीं पढ़े थे। शिष्यों की शंकाओं के समाधान हेतु गिने-चुने शास्त्रों का अध्ययन करवाती थीं।

मूल लेखन मेवाड़ी में था, जो हिन्दी भाषा बोलने वालों के लिये कठिन था। इस कठिनाई को समझ श्री लक्ष्मीलालजी जोशी ने मेवाड़ी के साथ-साथ हिन्दी अनुवाद भी लिख दिया था। पाठकों को अनुवाद की सुविधा तो मिली, परन्तु बीच-बीच में भाषान्तर होने से भावों के प्रवाह में रुकावट होती रही। पुस्तक का आकार भी बड़ा हो गया, इन्हीं भावों का आदर करने के लिये यह निश्चय किया गया कि मूल मेवाड़ी और हिन्दी की पुस्तकें अलग-

अलग छपवाई जायें। इसी क्रम में यह पुस्तक साधकों के हाथ में है, त्रुटियां स्वभाविक है। साधकवृन्द क्षमा करने के साथ-साथ सुझाव भेजेंगे तो अगले संस्करणों में सुधार कर सकेंगे।

3

स्व. महाराज श्री शिवदान सिंहजी शिवरती की ओर से निर्मित 'श्री अलख आश्रम' नाथद्वारा में है, जहाँ बाई अपने महापरिनिर्वाण तक बिराजी थीं, आज भी वहाँ साधन-भजन चलता रहता है। बाई का पीहर (नेहर) स्थान सरदारगढ़, जिला - राजसमन्द है, वहाँ भी बाई आगन्तुकों की सेवा करती थीं, एक मन्दिर स्मृति शेष को बनाये रखे हुए है। इसी गांव में एक 'विशाल आत्म-दर्शन स्थल' का भी निर्माण अपनी शोभा लिये हुए है। यह बाई के भक्त सरदारगढ़ ठाकुर साहब की सम्पत्ति थी, जहाँ कभी खेती होती थी। बाई एकान्त में इसी

स्थान पर साधना करते हुए परम लाभ को प्राप्त हुई थीं। आज भी इसके गर्भगृह में मौन और तदनन्तर आत्मस्थ होना साधकों को स्वतः ही बाई की निराकार उपस्थिति का आभास देती है। यहाँ बाई की चरण रज शोभा लिये हुए है जो उनके श्रद्धालुओं को शान्ति प्रदान करती है।

श्री बाई के मूल वचनों को उनके जीवनकाल में ही श्री श्याम सुन्दरजी जोशी ने मेवाड़ी में छोटी पुस्तिका 'अमृत वचन' के रूप में छपवाया था, उसका भी पुनर्मुद्रण हो चुका है, इसका हिन्दी अनुवाद भी अलग से उपलब्ध है। साधकों के आग्रह पर श्री नारायणसिंहजी झाला ने उसका अंग्रेजी अनुवाद भी किया है, जो कुछ समय में उपलब्ध होगा। इस पुस्तक में संस्मरणों के अन्त में 'अमृत वचन' के दोहों का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत है।

पुनः उन सब का आभार जिन्होंने प्रत्यक्ष-परोक्ष इस अनुष्ठान में आहुतियां अर्पित की हैं।

प्रकाशक

निवेदन

(प्रथम संस्करण से)

परम पूज्या भूरी बाई की संक्षिप्त जीवनी और कतिपय भक्तों द्वारा लिखे प्रश्नोत्तर, वार्तालाप आदि का यह संग्रह जिज्ञासुओं की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है।

पूज्या बाई अपने वार्तालाप को कोई महत्व नहीं देना चाहती थीं इसलिए उनके समक्ष उनके आदेश के विरुद्ध उनके वचनों को लिखने का किसी को साहस नहीं होता था। बाद में लिखने में लिखने वाले की स्मरण शक्ति के अनुसार अन्तर पड़ सकता है। परन्तु जहाँ तक मैं समझ पाया हूं कि विचारों की दृष्टि से अधिकांश संस्मरण सही अंकित किए गए हैं। मुझे उनमें बहुत ही कम हेर-फेर करना पड़ा है।

पूज्या बाई अधिकतर मेवाड़ी में ही बोलती थीं। आदरणीय ठाकुर चैनसिंह जी ने भी संस्मरण मेवाड़ी में ही नोट किये थे। मेरा उनका हिन्दी रूपान्तर करने का कोई विचार नहीं था। परन्तु पूज्य राजवैद्य **लक्ष्मीनारायाणजी शर्मा** ने, जो उदयपुर आयुर्वेद कॉलेज के प्रिंसिपल के पद से निवृत्त होने के बाद श्री वृन्दावनधाम में ही निवास करते हुए श्री राधा माधव की सेवा, मौन लेकर कर रहे थे, मुझे श्रीमती रतन कुंवर बाई जी के नोट किये हुए संस्मरण दे दिए जो करीब एक सौ पृष्ठों में हैं। ये भी मेवाड़ी बोली में ही हैं। पूज्य वैद्यराज जी के शिष्य अजय हरिजी डालमिया और उनके मामाजी घनश्यामजी केजड़ीवाल ने, जो पूज्याबाई के सम्पर्क में आये हुए थे, मुझसे आग्रह किया कि इन संस्मरणों का हिन्दी रूपान्तरण कर मूल मेवाड़ी के सामने ही छपा दिया जावे तो मेवाड़ से दूर मूल निवासी राजस्थानी

भाइयों के लिए भी पूज्या बाई के वचन समझना आसान हो जायेगा। मैंने यह बात सहर्ष स्वीकार कर ली और साथ ही ठाकुर साहब चैनसिंह जी के संस्मरणों का भी (जो केवल 25 पृष्ठ हैं) हिन्दी रूपानन्तर कर दिया है तथा मेवाड़ी और खड़ी बोली की विषय वस्तु एक दूसरे के आमने-सामने छपवाई गई है। इससे पुस्तक का कलेवर अवश्य बढ़ गया है।

राजकीय महाविद्यालय नाथद्वारा के (अब सेवानिवृत्त) प्रिंसिपल भाई भंवरलालजी शर्मा ने पूज्या बाई से सुनी हुई बातें घर जाकर खड़ी बोली में ही नोट की थीं। उनको प्रायः ज्यों का त्यों ही छपवाया गया है । शर्माजी ने पूज्या बाई के कुछ बहुत अच्छे चित्र भी पेण्ट किए हैं।

वकील साहब भाई कालीदासजी ने 'सुजाण

बावनी’ की रचना बहुत ही सरल मेवाड़ी में की थी। इन दोहों की भाषा भी काफी सरल होने से उनका हिन्दी रूपान्तर नहीं कर केवल कठिन शब्दों का अर्थ फुट नोट के रूप में दे दिया गया है।

श्री श्यामसुन्दर जोशी ने ‘सुजाण बावनी’ का दूसरा वेदान्ती पक्ष ‘अजाण बावनी’ लिखा था। इन दोहों की भाषा भी काफी सरल होने से उनका हिन्दी रूपान्तर नहीं किया गया है। उन्हीं की पूर्व प्रकाशित पुस्तक ‘अमृत वचन’ को भी भक्तों के आग्रह से ‘वचनामृत’ नाम से पुर्नगठित करा इस पुस्तक के अंश के रूप में सम्मिलित की गई है। इसमें हिन्दी टिप्पणियां लेखक ने ही दी है।

पूज्या बाई के मना करते रहने पर भी उनसे मिलने वाले कवि अपने भाव प्रकट करते रहते थे। उनमें से अधिकांश कवियों का प्रतिनिधित्व इस पुस्तक में

आ जाने की दृष्टि से कई रचनाएं छोड़ देनी पड़ी हैं।

अब ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी जी महाराज सनातन देव जी ने इस पुस्तक की भूमिका लिखना स्वीकार कर बड़ी ही कृपा की थी। पूज्य स्वामी जी जैसे प्रसिद्ध विद्वान और लेखक थे वैसे ही जिज्ञासु भक्तों के लिए अनुभवी मार्गदर्शक भी थे। संन्यास ग्रहण करने से पूर्व (मुनिलाल नाम से) उनके द्वारा गीता प्रेस गोरखपुर ने अनेक प्रमुख शास्त्रीय ग्रंथों का अनुवाद करा कर छापे थे। बाद में उनसे सूफी सन्त मुहम्मद गजली के प्रसिद्ध ग्रंथ 'कीमियाए सआदत' का 'पारस मणि' नाम से संशोधित अनुवाद करा कर ब्रह्मलीन स्वामी जी महाराज आत्मानन्द जी मुनि ने आनन्द कुटीर आश्रम पुष्कर से प्रकाशित कराया जो जिज्ञासु समाज का परम प्रिय ग्रन्थ है। जीवन के अंतिम पन्द्रह वर्षों में पूज्य स्वामी जी श्री राधा माधव के प्रेम प्रवाह से

आप्लावित रहे और सखी भाव, आत्म समर्पण, विरह, उलाहना आदि भावों से पूर्ण आपकी भारती हजारों पदों के रूप में प्रवाहित रही। अब तक इन पदों के सोलह संग्रह संकीर्तन भवन झूसी (इलाहबाद) द्वारा प्रकाशित किये जा चुके हैं। इनके अध्ययन से सूरदास, परमानन्द दास, आदि अष्ट छाप के कवियों के समकक्ष रसास्वादन प्राप्त होता है।

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की छपाई का सारा खर्च पूज्या बाई के सम्पर्क में आने वाले एक ही प्रेमी भक्त ने प्रदान कर अपना नाम प्रकाशित किया जाने से सर्वथा इन्कार कर दिया। ऐसी उत्तम उदारता के लिए मेरे साथ सभी पाठक उनके लिए परमेश्वर से मंगल कामना करते रहेंगे।

इस दूसरे संस्करण की छपाई का खर्चा भी पूज्या बाई के दो भक्तों ने दे दिया है। फिर भी आगामी संस्करणों की छपाई के खर्च की दृष्टि से पुस्तक को

समूल्य कर देना उचित समझा गया है।

रामनवमी
सवंत् 2040 विक्रमी

विनीत
लक्ष्मीलाल
जोशी

भूमिका

(प्रथम संस्करण से लिखित)

सम्भवतः सन् 1948 ई. की बात है, मैं उदयपुर गया था अपने पुराने सहपाठी श्री लक्ष्मीलाल जोशी जी के पास। उस समय वे शिक्षा विभाग के निदेशक के पद पर थे। उससे पहले सन् 1939 ई. में गीता प्रेस तीर्थयात्रा - ट्रेन का सदस्य होने के नाते मैं नाथद्वारा गया था । किन्तु तब तक मैंने आदरणीया श्रीबाईजी के विषय में कुछ भी नहीं सुना था। उसके पश्चात् मैंने सुना कि नाथद्वारा में श्रीभूरीबाई नाम की एक महिला सन्त हैं जो सात-सात दिन तक समाधिस्थ रह जाती हैं। अतः तब से ही मुझे उनके दर्शनों की उत्कण्ठा थी। जब उदयपुर गया तो मालूम हुआ कि श्री जोशीजी से उनका अच्छा परिचय है। उन दिनों मैं अपने पास पैसा नहीं रखता था इसलिए

किसी अपरिचित स्थान पर स्वतन्त्र रूप से जाने में असुविधा अनुभव करता था। श्री जोशीजी ने श्री कालीदासजी भाटिया के नाम एक पत्र लिख दिया। वे श्री बाईजी के प्रधान सेवक थे। उस पत्र को लेकर उदयपुर से नाथद्वारा चला गया।

तभी श्री बाईजी का मुझे पहली बार दर्शन हुआ। उस समय वह अपने निजी घर में रहती थीं। वह बहुत छोटा था, परन्तु वे स्वयं उतनी ही महान् थी। मैं दिन भर उसी घर में रहा और उनका आतिथ्य ग्रहण किया। उन्होंने श्रीनाथजी के राजभोग का प्रसाद मंगाकर उसका रसास्वादन कराया। उस समय दोपहर पश्चात् इसी स्थान पर कुछ भक्तजन श्रीरामचरित मानस का गान करते थे। इसके सिवा और कोई सत्संग चर्चा सुनने को नहीं मिली। अतः श्री बाईजी के मुख से कोई परमार्थ-चर्चा सुनने की मुझे इच्छा हुई। इसी उद्देश्य से मैंने बाईजी से पूछा-

श्री दुर्गा सप्तशती में कहा है-

"ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादायकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।"

तथा गोस्वामी श्री तुलसीदासजी भी लिखते हैं- "सो ज्ञानिहुं कर चित अपहरई । बरियाई विमोहवश करई।" इससे जान पड़ता है कि माया के प्रभाव से ज्ञानी भी मुक्त नहीं होते हैं। यदि ऐसी बात है तो तत्व ज्ञान से भी अभय पद की प्राप्ति नहीं हो पाती, माया के प्रभाव से वहाँ भी छुटकारा नहीं मिलता। इस विषय में आपका क्या विचार है?

श्री बाईजी बोली, "बावजी थे ही अपनो विचार कहो।" मैं तो उनका ही विचार सुनना चाहता था, अतः बोला, "बाईजी! हम तो भिक्षुक हैं, आपके घर आकर भिक्षा माँग रहे हैं। आपकी इच्छा हो तो भिक्षा दे दीजिये।"

तब बाईजी ने कहा, “कुछ रह जाता होगा। यही रह जाता होगा कि मैं ज्ञानी हूँ।”

इस संक्षिप्त उत्तर से मेरा समाधान तो हुआ ही, मुझे यह भी अनुभव हुआ कि अध्यात्म विद्या में श्री बाईजी की पैठ गहरी है सचमुच ज्ञानाभिमान एक ऐसा दोष है जिसका मोह साधक बहुत कठिनाई से छोड़ पाता है और वह उसके पतन का कारण होता है। श्री बाईजी ने बहुत थोड़े शब्दों में बहुत गहरी बात कही है।

इससे श्री बाईजी के प्रति मेरी बहुत श्रद्धा हो गयी और मुझे पुष्कर, नाथद्वारा, सरदारगढ़, वृन्दावन और जयपुर में कई बार उनसे मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनसे विशेष परमार्थ चर्चा तो नहीं होती थी, परन्तु उनका मातृवत् सहज स्नेह हठात् चित्त

को आकर्षित कर लेता था। उनमें अत्यन्त सरलता, सादगी और गहरी आत्मीयता आदि अनेक गुण थे। इतना सहज स्नेह रहने पर भी वह सर्वथा असंग थीं और असंग रहने की ही प्रेरणा भी देती थीं। उनकी ब्रह्मनिष्ठा अक्षुण्ण थी। वे स्वयं परमार्थ-चर्चा बहुत कम करती थीं, परन्तु जो कुछ कहती थीं उससे उनकी गम्भीर निष्ठा का आभास अनुभव होता था। एक बार पुष्कर में मेरे अभिन्न मित्र स्वामी ब्रह्म ज्योतिजी ने उनसे कहा- "बाईजी आपका कथन तो सर्वथा सत्य है, परन्तु सब इसके अधिकारी नहीं हैं। सिंहनी का दूध सुवर्ण के पात्र में ही ठहरता है।" इस पर बाईजी ने कहा, "तो सिंहनी गीदड़ी को दूध कठैशू लावें।" ऐसी थी उनकी ब्रह्मनिष्ठा । श्री नारायण स्वामीजी ने उन्हें साक्षात् श्री नारायणजी के दर्शन कराने की बात कही और उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। इससे नाम और रूप के प्रति उनकी सुदृढ़ अनास्था की अनुभूति होती है।

श्री जोशीजी ने प्रस्तुत ग्रन्थ का संकलन कर निःसन्देह जिज्ञासुओं का बड़ा उपकार किया है। इस समय जो लोग विद्यमान हैं उनमें से ऐसा कोई नहीं है जो उनकी अपेक्षा श्री बाईजी के सम्पर्क में अधिक आया हो। श्री बाईजी ने यह कहकर कि "इसे तो मैंने नौ महीने केवल पेट में ही नहीं रक्खा", आपके प्रति स्वयं अपनी गहरी आत्मीयता प्रकट की है। अतः आपसे अधिक उन्हें समझने और उनके आंतरिक भाव को अभिव्यक्त करने में और कौन समर्थ हो सकता था। प्रस्तुत पुस्तक में श्री बाई जी के जीवन की संक्षिप्त झांकी तो है ही उनके सान्निध्य और सत्संग में जिज्ञासुओं ने जो अमूल्य सामग्री संग्रहीत की है, उसका भी रसास्वादन हो जाता है। जीवनी यद्यपि बहुत संक्षिप्त और अनौपचारिक है, तथापि उससे उनके शील, स्वभाव, त्याग, तपस्या, तितिक्षा और औदार्य का

पूरा परिचय मिल जाता है।

जीवन के प्रारंभ से ही उनमें दया और औदार्य की सुगन्ध थी। दैववश उन्हें अनेकों कठिनाईयों से भी जूझना पड़ा, अतः स्वयं ही तपस्या हो गई। धन और सम्मान से वे सर्वदा ही उदासीन रहीं तथा जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त करने की उनमें आरंभ से ही तीव्र लगन थी। वैसी ही परिस्थितियां भी आती गयीं। फिर महाराज चतुरसिंह जैसे अनुभवी सद्गुरु मिल गये। उनकी कृपा से उन्होंने अपने चरम लक्ष्य को ही प्राप्त नहीं किया प्रत्युत बड़ी उदारता से जिज्ञासुओं को उस अमृत का पान भी कराया। उस अमृत से तृप्त होकर प्रेमियों ने अपने उद्गार भी व्यक्त किये। उनमें इस पुस्तक के संकलनकर्त्ता के सुपुत्र श्री श्याम सुन्दर जोशी और बाईजी के प्रधान सेवक श्री कालीदासजी भाटिया प्रधान हैं। श्री श्याम सुन्दर जी की कृति 'अमृत वचन' एवं 'अजाण बावनी'

तथा भाई भाटियाजी की कृति ‘सुजाण बावनी’ इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

भाई श्यामसुन्दर जी ने आदरणीया बाई के भावों को उन्हीं के शब्दों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। यह निश्चय ही एक कठिन कार्य है, परन्तु इसमें श्री बाई जी के प्रति उनकी निष्ठा एवं उनके गूढ़ वचनों में गहरी पैठ प्रकट होती है। माया की अवस्तुता और ब्रह्म से उनकी अभिन्नता उन्होंने कैसे सुन्दर ढंग से व्यक्त की है-

सूर्य-किरण सम पुरुष रो, प्रकृति नित्य स्वभाव
भिन्न जाण पकड़्यो चहे, हाथ कछू नहिं आव ॥ 5 ॥
माया है भगवान री, मनमोहक मुस्कान ।
‘हास्य’ वणारो वणा री, करूणा कहै

पुराण ॥ 6 ॥

यहाँ माया और करूणा के लिए मुस्कान और हास्य की उपमा कैसी अनुरूप है। मुस्कान माया के समान मोहिनी है और करुणा हास्य के समान आल्हादिनी है। जब तक कहीं भी रूचि हैं तब तक संसार बंधन छूट नहीं सकता। यह बात इस दोहे में कही गई है-

देख्या व सुण्याँ मायँनै, जब लग रुचि
अवशेष।
तब लग भव नहि कट सकै, मिट नहि
सकै कलेश ॥10॥

शास्त्र भी कहता है "किञ्चि यच्चे द्रोत्वते तुम्यं तद्धद्धोऽसि अवस्थितौ" च्चेद्रोचते तुभ्यं तद्बद्धोऽसि अवस्थितो लोग ब्रह्म दर्शन के लिए लालायित होते हैं परन्तु वह किसी भी वृत्ति का विषय नहीं हो सकता। यह बात इस दोहे में कही गयी है-

लखणों चावै ब्रह्म नै, ज्यूँ व्है कोई चीज

।

यो सम्भव नी व्है सकै, वो तो घणो
नजीक ।।13।।

इसी प्रकार इस पुस्तक में अनेकों प्रसंग अत्यंत मार्मिक हैं। प्रायः दो सौ दोहों की यह पुस्तक एक प्रकार से श्री बाईजी के जीवन और विचारों का संक्षिप्त कोश ही है।

'सुजाण बावनी' और 'अजाण बावनी' की बात तो बड़ी ही विलक्षण है। उनमें भी अत्यन्त स्वल्प शब्दों में बड़ी गम्भीर बातें कही गयी है। इनमें से 'अजाण बावनी' में तो बावन दोहे ही हैं, परन्तु 'सुजाण बावनी' में 136 दोहे हैं। फिर भी इसको बावनी क्यों कहा गया है, यह बात स्पष्ट समझ में नहीं आती। 'सुजाण बावनी' में ब्रह्म का विधि-मुख से वर्णन किया गया है और 'अजण बावनी' में निषेध-मुख से। अब 'सुजाण बावनी' के कुछ दोहों का दिग्दर्शन कराया जाता है। एक ही तत्त्व विभिन्न

नामों से कहा गया है, यह बात इस दोहे में कही है-

वही सत्य वहि आत्मा, वही ब्रह्म वहि
राम।
वही 'जाण' वहि ज्ञान है, वस्तु एक बहु
नाम ।।

श्री बाईजी उसी तत्व को 'जाण' नाम से कहती हैं। वास्तव में उसका कोई नाम नहीं है; यथा:-

गुणातीत ई 'जाण' के, फबै न कोई नाम
।
भाव जणावा वासते, है संकेत तमाम
।।16 ।।

ऐसा होने पर भी वह 'जाण' ही सब कुछ है, यह बात इस प्रकार कही गई है-

द्रष्टा दरशण दृश्य सब, ज्ञाता ज्ञेय रू
ज्ञान।
जितनी है त्रिपुटी सबी, याही केवल
'जाण' ।।19।।

ज्ञान की साधनभूता इन्द्रियाँ इस 'जाण' की ही आभास है-

किरण रूप है इन्द्रियाँ, भाँण रूप है
जाण।
किरण भाँण सूँ भिन्न नी, युं ही जगत
अरू जाण ॥ 27 ॥

यहीं नहीं, सारा जगत ही 'जाण' मात्र है-

अस्ति भांति प्रिय जाण है, नाम रूप भी
'जाण'
अन्वय ने व्यतिरेक शूं बुधजन करै
'प्रमाण' ॥37 ॥

किन्तु यह भेद अज्ञान जनित ही है 'जाण' में कोई भेद नहीं है-

जाति बिजाति स्वगत सब, भेद और
परिछेद।
ये सब हैं अण-जाण में, 'जाण' मांय
नहिं भेद ॥38 ॥

फिर कहते हैं जगत् सापेक्ष है और 'जाण' निरपेक्ष-

नाम रूप दुख सुख सबी, जगत द्वन्द्व सापेक्ष।
सब द्वन्द्वा यूँ रहित है, 'जाण' नित्य निरपेक्ष ।।43 ।।

परन्तु जगत से विपरीत स्वभाव वाली होने पर भी वह 'जाण' अगम (अबोध्य) नहीं है, केवल तीव्र जिज्ञासा होनी चाहिये-

'जाण' जाणणो अगम नी, है निज की गम जाण।
प्रबल जिज्ञासा होय तो, पल पड़े पछाण ।।68 ।।

परन्तु जब तक जगत् में कुछ भी आस्था है जब तक यह उपलब्धि नहीं हो सकती-

जब तक दीखै जगत में, लेश मात्र भी सार।

तब तक तो साधन सबै, मायाकृत उपचार ॥68 ॥

संसार और 'जाण' फिल्म और उसके पर्दे के समान है यह बहुत सुन्दर दृष्टान्त है। वस्तुतः कुछ न होने पर भी माया ब्रह्म को आवृत कर लेती है, जैसे फिल्म दिखने पर पर्दा नहीं दिखता-

परदा के ही आसरै, फिल्म दिखावै चित्र ।

पण परदाने ढांक दै, माया बड़ी विचित्र ॥84 ॥

किन्तु यह जाण स्वतः सिद्ध है, किसी भी प्रयत्न से इसकी उपलब्धि नहीं होती-

सहज समाधी 'जाण' है, रहवे सदा अखण्ड ।

करवा शूं जो कुछ वणै, कृत्रिम है सब खण्ड ॥ 88 ॥

ये सब उद्धरण 'सुजाण बावनी' के हैं। अब

'अजाण बावनी' का कुछ रसास्वादन करें। 'सुजाण बावनी' में ब्रह्म का विधिमुख से वर्णन है और 'अजाण बावनी' में निषेधमुख से। देखिए कैसे स्पष्ट शब्दों में उसे सर्वभावातीत बताया है-

भान अभान-विवर्जित, नहीं अनित्य न नित्य।
अविकारी सविकार नहिं, नहीं सहित रहित ॥19॥

नहिं कारण नहि कार्य है, नहिं व्यापक नहिं व्याप्य।
नहिं दूजा पहला नहीं, अविगत अकथ अमाप्य ॥20 ॥

है भी नहिं नहिं भी नहिं, उभयानुभय हुं नाहिं।
चतुष्कोट विनिर्मुक्त रहो अजाण समाई ॥ 36 ॥

परतत्त्व ज्ञेय-ज्ञान दोनों से रहित है-

ज्ञेय बिना अज्ञान है, ज्ञेय सकल अज्ञान
।
ज्ञेय-ज्ञान से द्वैत भी है अज्ञान महान
॥44 ॥

ये केवल दिग्दर्शन मात्र है। उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में वस्तु तत्व का बड़ा ही मार्मिक और गंभीर विवेचन है।

इनके अतिरिक्त ठाकुर चैनसिंहजी द्वारा संग्रहित जिन वचनों का संकलन किया गया है उनसे भी श्री बाईजी की विरक्ति, उपरति, भजननिष्ठा और सेवा भावना का अच्छा परिचय मिलता है। श्री बाई जी की जिस पुस्तक का उल्लेख 21वें वचन में किया गया है वह उनकी अनोखी सूझ-बूझ और सार-ग्राहिणी प्रतिभा का द्योतक है।

सत्ताइसवें वचन में यह बताया गया है कि किसी को भी तभी कोई उपदेश देना चाहिए जब वह उसे

सुनना या ग्रहण करना चाहे।

श्रीमती रतन कुंवर जी के संग्रहित प्रश्नोत्तरी ने ही इस पुस्तक के कलेवर का सबसे अधिक अंश व्याप्त किया है। वे बहुत उपयोगी हैं, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु मेरे विचार से उनमें कुछ असंगतियां है। एक बात कहते-कहते उससे असम्बद्ध कोई दूसरी चर्चा आरम्भ हो जाती है। बातचीत में ऐसा ही होता है। वे लिखे भी गये होंगे बातचीत होने के बाद अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर। अतः उनमें ऐसी त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है। यदि उनका सम्पादन करते समय उनका कुछ सुधार हो जाता तो उसमें अभिव्यक्त विचारों का प्रवाह सुसंगत हो सकता था।

श्री भंवरलालजी ने श्री बाई जी के द्वारा कहे हुए जिन प्रसंगों का संग्रह किया है वे निश्चय ही बड़े रोचक और जीवन निर्माण में उपयोगी है। उनमें से कुछ प्रसंगों से सम्बद्ध महानुभावों के अलौकिक

चमत्कारों का भी परिचय मिलता है तथा श्री बाई जी के अद्भुत संयम और उग्र तप की बात भी प्रदर्शित होती है। पृष्ठ 337 पर जौ की रोटियों को गौ के गोबर के साथ खाना तो बहुत रोमांचकारी है। राजराणा श्री हरिसिंह जी ताणा के संस्मरणों से श्री बाईजी के साथ महाराणाजी और राज परिवार के सदस्यों की घनिष्ठता का परिचय मिलता है।

पुस्तक के परिशिष्ट में जो उपनिषदादि शास्त्र वाक्यों का उल्लेख है, श्री बाईजी के विषय में अनेकों सुकवियों के अभिनन्दन हैं तथा श्री बाईजी के प्रिय ग्रन्थों का उल्लेख है, वह सब भी आवश्यक और उपयोगी है। इन सभी से श्री बाईजी के जीवन परिचय में जो आवश्यक अंश रह गए हैं उनकी पूर्ति भी हो जाती है।

इस प्रकार इस ग्रंथ में जो कुछ है उसका यहाँ संक्षेप से दिग्दर्शन कराया है। इसका सम्यक्

आस्वादन तो ग्रन्थ का स्वाध्याय करने पर ही हो सकता है। अब आयु अधिक हो जाने के कारण मेरा लिखने-पढ़ने का अभ्यास कुछ कुण्ठित सा हो गया है। परंतु श्री बाईजी के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धा और सद्भाव रहा है तथा ग्रंथकार के प्रति भी 'आत्मीयता का संबंध' है, इसलिए इन पंक्तियों द्वारा अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करने का प्रलोभन मैं त्याग नहीं सका। इस प्रकार श्री बाईजी का स्मरण होता रहा। महापुरुषों का स्मरण सर्वदा कल्याणकारक होता है। आशा है, इससे मुझे भी अपना जीवन निर्माण करने में कुछ प्रेरणा प्राप्त होगी। इन शब्दों के साथ मैं यह वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

श्री सनातन धर्म सभा **स्वामी सनातन देव**

कसौली

(हि.प्र.)

ज्येष्ठ शु. 14

सं. 2040 विक्रमी

ॐ गुरु प्रसन्न बाई प्रार्थना

• गृहस्थ, अनपढ़, अलख आश्रम में निवास करने वाले यतिवर, स्त्री-शरीर धारण करके भी ज्ञान से परिपूर्ण, सदैव सम स्थिति में रहने वाले, दयावश व्यवहारिता को धारण करने वाले, नित्य अचल आत्मस्वरूप में रहने वाले;

• जिनके वचन समस्त संशयों को हरने वाले हैं, जिनकी दृष्टि भ्रमरूपी मद वाले हाथी के लिये अंकुश के समान है, जिनकी क्रियाएं दूसरों को सुख पहुँचाने के लिये है और अपने शरीर के सुखदायी कार्यों के प्रति अत्यन्त उदासीन हैं;

• जिनके देह की प्रभा पके आम के समान है, जिनका अत्यन्त चंचल इन्द्रियों के निग्रह में पूर्ण अधिकार है, जिनकी भार्या प्रज्ञानघनमयी लता है, जिन्होंने अल्प वचनों में समस्त मंत्रतन्त्रों का संग्रह

किया है;

• जो निर्मल, जो अनन्त गुणों की निधि हैं; अत्यन्त प्रकाशपुंज, अपनी किरणों से अपने चरणों का आश्रय लेने वालों के जड़भाव को यथा समय हटा देते हैं, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से अन्धकार को दूर करता है;

• वचनों में अत्यन्त मृदु, दृष्टि में शीतल, कमल सदृश मुख में विकसित, मध्यान्ह चन्द्र के समान मन में शून्य, आकाश में अदृश्य के समान, अपने हृदय में प्रकाशमान, अपने शरीर व्रत में कठिन, अर्थात् अपने प्रति दयारहित, विषय जाल में अत्यधिक कठोर चित्त, तत्वदृष्टा, रोषरहित, निष्काम, प्रज्ञानघन के प्रवाह के कारण देह विस्मरण के बोध को धारण करने वाले;

• मोहरहित, लोभरहित, भावनारहित, मत्सररहित, सदैव प्रसन्न, संसार महासागर से तारण कर्म में प्रतिफल के बिना सदैव तत्पर;

दण्डरहित होने पर भी जो दण्डपाणि है, जो ॐ मन्त्र के प्रतिपाद्य देवता है, दुःख सागर से तारने वाले हैं, संसार को त्याग कर जो निरन्तर भजन करते हैं, हंस जैसे संन्यासी है और मानस (मन) की आसक्ति से रहित है,

• जो धीरता में सुमेरू से कम नहीं हैं, जो गंभीरता में समुद्र से भी अधिक हैं, जो क्षमा में अखिल धात्री पृथ्वी को भी परास्त करने वाले हैं, जो इन्द्रिय-दमन में आदर्श हैं, जो अशान्ति की चर्चा मात्र से अत्यन्त दूर हैं,

• जो प्रसन्नता में नील कमल बन्धु चन्द्र के समान हैं, जो ब्राह्मी स्थिति में वटमूल वासी हैं;

• जिनके मस्तिष्क में शुभ विचारों के रूप में देवसेना सुशोभित है, जिनको कामदेव ने स्पर्श नहीं किया, जो गृहस्थ होते हुए भी यतियों में प्रमुख हैं;

वन्दना करने वाले लोगों को वर देने वाले महान गुरु हैं, वृक्ष के समान अपने चरणों की छाया का

आश्रय लेने वाले समस्त जनों के परिताप को हरने वाले हैं;

• जिन्होंने अनेक विचित्र युक्तियों से विभूषित, वेद के जीवन्त ग्रंथ 'अमृत वचन' में रचित शब्दों का उच्चारण श्रीमुख से स्वतः ही स्वभाववश, प्रबल जिज्ञासुओं की सांत्वना हेतु किया, पण्डितवृन्द से भली प्रकार स्तुत वेदान्तार्थ का विचार करते हैं;

• जिन्होंने वेदान्त वाक्य समूह का सार संग्रह, गूढ तथा अल्प बहुमुख, सूत्रभूत वचन 'चुप' उच्चारित किया;

• यद्यपि संस्कृत अथवा अन्य भाषा में जिन्होंने किंचित मात्र भी शिक्षा प्राप्त नहीं की, संस्कृत के शास्त्रों से कतई सम्पर्क नहीं रहा तथापि जिनकी स्फुरित वाणी के अनुरूप शास्त्रों का भाव समूह एवं व्यवहार अनुगामी रहता हैं;

• जो अपार मेधायुक्त, भगवान राम का अवतार

ब्रह्मनिष्ठ की दशा का प्रदर्शन करके युक्तिवादी रूपी अंधकार की शान्ति के लिये हुआ;

• जो अपनी बुद्धि से जरारहित महान ज्योति को देखे;

• जो बालक, मूर्ख, गोप, वानर, कुत्ता, खल, पण्डित अथवा अपने भक्त पक्षपातरहित समदृष्टि रखते हैं;

• जो शक्तिमान होते हुए भी शान्त हैं, भक्त होते हुए भी भेदरहित हैं, दागरहित होते हुए भी सबसे प्रेम करने वाले हैं, देवताओं के भी देवता होते हुए भी नम्र चेष्टा करने वाले हैं;

• "मैं पति की आज्ञा पालन कर रही हूँ, मेरी खोज सहज भी है और कठिन भी. क्योंकि विशेषयुक्ति की आवश्यकता है", सिद्ध लोगों की महिमा विचारने में नहीं आती है, वे वरों को देने में भी समर्थ हैं,

• जिन्होंने **'काली पोथी'** रचकर समस्त शास्त्र ग्रंथों को सन्निपात (पागलपन) में रचा हुआ कहकर

पानी फेर दिया और मुख पृष्ठ पर केवल 'राम' लिख कर 'राम' के सिवाय समस्त जगत ही नहीं ब्रह्माण्ड मात्र की सत्ता को अस्वीकार कर दिया, गुरुडम में न भटकाने वाले, मंत्रदीक्षा भी न देने वाले. उन मेरे गुरुदेव **महात्मा भूरीबाई 'अलख'** को अस्मिता, अपनी सत्ता खोते हुए और उनमें **'समा'** जाने से पहले, कोटि-कोटि नमन करने का अन्तिम अहंकार पालन किये बिना नहीं रह रही है।

॥ चुप ॥

पूज्या भूरीबाई: संक्षिप्त जीवन-वृत्त

पूज्या भूरी बाई का जन्म सरदारगढ़, मेवाड़ में संवत् 1949 को आषाढ़ शुक्ला 14 के दिन हुआ। इनके पिताजी का नाम रूपाजी सुथार व माताजी का केसर बाई था। रूपाजी अत्यन्त कुशल कारीगर थे और बड़े ही सात्विक, धर्मात्मा और बुद्धिमान होने से उनकी समाज में और तत्कालीन ठिकाने सरदारगढ़ में बड़ी प्रतिष्ठा थी। माताजी बड़ी ईश्वर भक्त और पुण्यात्मा थीं। दयालु इतनी थीं कि एक दिन उनके मकान में एक चोर घुस आया व घर के लोगों के जग जाने से उसे खाली हाथ भाग जाना पड़ा जिसका भी उनको रंज हुआ, उन्होंने कहा कि भरे घर में से बेचारा यों का यों ही चला गया।

सीढ़ियों पर रखे हुए कुछ बर्तन ही ले जाता तो उसके काम आते।

बाई भी बचपन से ही दयालु और धर्म प्रेमी थीं। संवत् 1956 के अकाल में पास-पड़ोस के बच्चे जो भूखे होते उनको घर से ले जाकर रोटी खिला देती थीं और मवेशियों के साथ बहुत दया और स्नेह का बर्ताव रखती थीं। इनका यह स्वभाव आजीवन रहा। इनके घर के मवेशी बाई के हाथ का कोमल स्पर्श और दिया हुआ चारा - दाना प्राप्त करने के लिए सदा उत्सुक रहते थे और उनको देखकर प्रेमपूर्वक रंभाते थे।

तेरह वर्ष की आयु में बाई का विवाह नाथद्वारा के एक धनी चित्रकार फतहलालजी सुथार के साथ कर दिया गया जिनकी आयु उस समय 43 बरस की थी। उनकी पहली पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था और कोई संतान नहीं थी। छोटे गांवों के सुथार लड़कों को बाई जैसी सुन्दर शरीर वाली लड़की के

योग्य नहीं समझा गया क्योंकि उनके घरों में लकड़ी का या खेती का ही काम होता था। उन दिनों ऐसे बेमेल विवाह को इतना अनुचित भी नहीं माना जाता था परन्तु विवाह के दो तीन बरस बाद ही फतहलालजी को श्वास का रोग हो गया जो बहुत इलाज कराने पर भी बढ़ता ही गया। पति की बीमारी असाध्य प्रतीत होने से बाई का चित्त अत्यन्त खिन्न रहने लगा।

उन दिनों जब एक बार बाई सरदारगढ़ गए हुई थीं वहाँ देवगढ़ की एक मुसलमान योगिनी नूरी बाई का आगमन हुआ और बाई उनके सम्पर्क में आयीं। नूरी बाई ने उनकी गहरी उदासी को भांप कर उसका कारण जानने का प्रयत्न किया। उनके अधिक पूछने पर बाई ने अपने पति की बीमारी का हाल बता दिया। उस योगिनी ने बाई की स्थिति पर विचार कर यह उपदेश दिया कि ईश्वर की इच्छा होगी सो होगा। पति की सेवा तो अच्छी तरह करती

रहो। परन्तु इस बात का पूरा ख्याल रखना कि तुम्हारे कोई सन्तान न हो जावे। नाथद्वारा में घर के काम व पति सेवा से निवृत्त होने पर अभ्यास भी करने लग गयीं। उनका शरीर बहुत स्वस्थ था जिसे निर्बल करने के लिए बाई ने भोजन पर बहुत नियंत्रण कर लिया। पति को भोजन कराने के बाद उनकी थाली में जो कुछ भी बच जाता उसी को खा-पीकर दिन निकालने लगीं। इससे कभी-कभी तो उनके पूर्णतया निराहार रह जाने की भी नौबत आती रही।

पति के इलाज में बाई ने किसी प्रकार की कसर नहीं रखी। पैसे को पानी की तरह बहा कर जो भी औषधि बताई जाती उसका सेवन कराया और दान-पुण्य भी करती रहीं। बाई के जेठ खेमराजजी भाई के साथ अधिक स्नेह हो जाने के कारण अपने पुत्रों के होशियार हो जाने पर भी उनके साथ न रहकर फतहलालजी के साथ ही रहते रहे। उन्हें

भोजन की विविध वस्तुएं अच्छी बनाने का बहुत अनुभव था जो वे बाई को सिखाते रहे। सात्विक संस्कारों और पूर्ण मनोयोग के साथ काम करने के कारण बाई के हाथ का बना हुआ भोजन कितना स्वादिष्ट एवं भारी होने पर भी सात्विक एवं सुपाच्य होता था, उसको प्रसाद पाने वाले सभी भक्त एवं अतिथिगण कभी भूल नहीं सकते।

अतिथियों एवं साथ रहने वालों को अच्छा भोजन खिलाने का शौक बाई को अंत तक रहा। रसोई में अपने हाथ से खास-खास काम करते रहना उन्होंने शरीर त्यागने से केवल पन्द्रह दिन पहले निर्बलता बढ़ जाने पर ही छोड़ा था।

बाई की उदारता और दानशीलता बचपन से लेकर अंत समय तक बराबर बनी रही। पति के समृद्ध घर की अधिकांश वस्तुएं जरूरतमंद लोगों को दे-देकर घर को साफ ही कर दिया। उनके जेठ एक बार उनके लिए, फतहलालजी एवं स्वयं के

ओढ़ने के लिए अच्छे शाल ले आए थे। परंतु कुछ ही दिन बाद एक मेहतरानी को ठंड में ठिठुरती देख बाई ने अपना शाल उसे दे दिया। उनके पुत्र अपनी सम्भावित विरासत का ह्रास होते देख अप्रसन्न होते थे। बाई की अन्तिम बीमारी के वर्ष में एक संन्यासी आया और भोजन के उपरान्त उत्तराखंड में यात्रा जाने की तैयारी के लिए एक कम्बल मांगा। बाई के पास कोई कम्बल नहीं था और नया खरीदवाकर देने के लिए उस समय रुपया भी नहीं था। बाई ने उनके भतीजे खूबीरामजी से उनका कम्बल संन्यासी को दिलवा दिया और कुछ समय बाद उनको नया खरीदवा दिया। किसी को भूखा देखतीं तो उसे जो भी हो सकता खाने के लिए दिलवाए बिना नहीं रहा जाता था। कहा करती थीं कि उन्होंने बहुत भूख काटी है जिसका दुःख वे ही जानती हैं।

फतहलालजी का सभी सम्भव इलाज कराने पर भी उनकी हालत दिन-दिन गिरती गई। जब वे

अधिक निर्बल हो गयीं तो बाई ने बिछौना बिछाकर सोना छोड़ दिया। उसके पास ही दीवार के सहारे बैठे-बैठे ऊंघ लेती थीं और उनकी सेवा के लिए तत्पर रहती थीं क्योंकि किसी भी अन्य व्यक्ति का सहयोग उनकी सेवा करने में नहीं मिलता था और जेठजी खेमाजी का भी स्वर्गवास हो चुका था। पति के अन्तिम दिनों में बाई ने उनसे पूछा कि आपका शरीर जाने के बाद मुझे क्या करना चाहिए सो बता दीजिये। फतहलालजी बाई की सेवा से और उनकी त्यागवृति से अत्यन्त प्रसन्न थे, उन्होंने कहा कि तुम तो साधु हो जाना। उनका आशीर्वाद ऐसा फलदायक हुआ कि यद्यपि बाई ने घर छोड़कर निकल जाने की हिम्मत नहीं की, उनका त्याग, वैराग्य और तपस्या अच्छे-अच्छे महात्माओं के लिए भी उदाहरणस्वरूप बन गये।

पति के स्वर्गवास के समय बाई की आयु 26 वर्ष की थी। उस समय घर की सब चल सम्पत्ति या तो

इलाज में या दानपुण्य में समाप्त हो चुकी थी। खेती की जमीन जो उनकी पांती की थी उस पर भी बाई ने अपना अधिकार छोड़ दिया और उत्तराधिकारियों का कब्जा करा दिया। इससे बाई को खाने-पहनने का भी बहुत कष्ट उठाना पड़ा। पड़ोस में कई जाट बन्धु रहते थे, उनकी व कुछ अन्य लोगों की सहानुभूति बाई के साथ थी जिससे भाई-बन्धुओं के दिए हुए कष्ट एवं कटुवचनों की परवाह न कर बाई मौन रहकर सहन कर लेती थीं। पडोसी ताँगेवालों के घोड़ों के लिए दाना दलकर व आटा पीस कर तीन-चार आना नित्य कमा लेती थीं और अपने पति के अधीन चित्र बनाने वालों से कुछ पढ़ना व भगवान श्रीनाथजी के चित्र बनाकर चित्रों के व्यापारियों के पास भेजकर कुछ पैसे कमा लेती थीं। अपनी मेहनत की इस थोड़ी कमाई में से भी बाई साधु-सन्तों का आतिथ्य कर देती थीं।

इन्हीं दिनों में नाथद्वारा में आए हुए एक युवा

योगाभ्यासी संन्यासी से बाई ने भस्त्रिका प्राणायाम आदि क्रियाएं भी सीखीं। उन दिनों साधना में बाधा पहुंचने से बचने के लिए बाई मकान के बाहर ताला लगवा कर चाबी अपने पास मँगवा लेती थीं। भोजन और निद्रा पर कठोर संयम रखती थीं, और मन कभी किसी वस्तु का स्वाद का स्मरण कर लेता तो उसको कठोर दण्ड देकर सीधा कर देती थीं। इस प्रकार यम-नियम आदि का पूरा पालन करते हुए योगाभ्यास करते रहने से बाई के ध्यानमग्न रहने का समय बढ़ने लगा और वे लगातार दो-दो दिन तक समाधिस्थ रहने लगीं। साधना के इस कठिन समय में नई हवेली नाथद्वारा के एक सनाढ्य ब्राह्मण व उनकी धर्मपत्नी ने भगवत्प्रेरणा से बाई की सेवा की। वे योगाभ्यास से उठते तब तक पण्डितजी की पत्नी उन्हें अपने घर भोजन कराने की प्रतीक्षा करती रहती थीं। बाई ने इसके प्रतिकार के लिए उनकी गाय की सेवा व दुहने का काम अपने जिम्मे ले लिया था।

बाई की साधना का एक अंग इन दिनों यह भी रहा कि भगवत्प्राप्ति के लिए नित्य करीब दो घंटे चुपचाप रुदन करती थीं। इसका कारण बाई ने बाद में यह बताया था कि उन दिनों साधना की सफलता अर्थात् भगवत्प्राप्ति का कोई मार्ग स्पष्ट न होने का भयंकर दुःख था इसलिए अपने आप रोना आता था।

इसी समय बाई को मालूम हुआ कि उदयपुर राजपरिवार के महाराज साहब चतुरसिंहजी बहुत बड़े योगी हैं जिन्हें आत्म साक्षात्कार हो चुका है। उनका दर्शन और मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए बाई उदयपुर पधारीं। महाराज साहब ने बाई की योग में प्रगति का विवरण सुनकर फर्माया कि अभ्यास कर लिया है यह ठीक है लेकिन 'ज्ञान' की कमी है। बाई को यह टिप्पणी पहले तो अप्रिय लगी किन्तु महाराज साहब ने अपना संग्रहीत व लिखित कुछ साहित्य पढ़ने के लिए दिये तब उसके स्वाध्याय से

महाराज साहब के वचनों का मर्म समझ में आने लगा तथा महाराज साहब बहुत प्रसन्न हुए और अपनी अन्तिम बीमारी के दिनों शिवरती व करजाली महाराज साहब को जो उनके बड़े भाई थे व उनके सुपुत्रों को यह निर्देश दिया कि उनके देवलोक पधारने पर बाई को वैसे ही मानें जैसे कि महाराज साहब को मानते रहे थे। दोनों ठिकाने वालों ने महाराज साहब चतुरसिंहजी के इस उपदेश का पूरी तरह पालन किया और बाई के पास बराबर जाना व यथासंभव सेवा करना जारी रखा। करजाली महाराज साहब लक्ष्मणसिंहजी प्रति मास नाथद्वारा या सरदारगढ़ जहाँ भी बाई बिराजतीं पधार जाते और महात्मा-भाव से बर्ताव रखते थे। शिवरती महाराज साहब बाई की सेवा माता के भाव से करते थे और कई दिनों तक पास रह जाते थे। बाई के बिराजने के लिए नई हवेली वाले पुराने मकान में कुछ कष्ट होने से कुम्हारवाड़े में जमीन खरीद कर

नया मकान भी बनवा दिया था जिसका विशेष विवरण बाई के संस्मरणों में हैं। आत्मज्ञान (सन् 1928 के करीब) हो जाने के बाद बाई ने लोगों से मिलना-जुलना जो अब तक कठोरतापूर्वक नियन्त्रित कर रखा था उसमें धीरे-धीरे ढील देना प्रारम्भ कर दिया। इससे उनके ज्ञान और वैराग्य की ख्याति फैलने लगी और अनेक जिज्ञासु एवं सत्संगी लोग उनसे मिलने के लिए आने लगे। बाई ने अपने पति के जिस मकान में रहकर योग साधना की थी उसका वायुमण्डल ही इतना शान्तिप्रद हो गया था कि जो भी व्यक्ति उनसे मिलने जाता उसे उस शान्ति का अनुभव हुए बिना नहीं रहता था। व्यर्थ की बातचीत तो वहाँ हो ही नहीं पाती थी। बाई ने बैठने के स्थानों पर 'चुप' लिखवा रखा था। हरे रंग के कांच से बना कर दीवार में लगाए इन अक्षरों का प्रभाव और घर का वातावरण सभी आगन्तुकों को सहज ही प्रभावित कर देता था। बाई का अध्ययन

भी इस बीच काफी बढ़ गया था। कोई साधक प्रश्न करता तो बाई स्वयं उसका उत्तर न देकर उसको वह पुस्तक और उसका संबंधित अध्याय बताकर पढ़ने का निर्देश दे देती थीं कि जिससे उस प्रश्न का उत्तर उसे बिना बातचीत के मिल जावे। फिर भी कभी-कभी बाई स्वयं भी उसको स्पष्ट करने के लिए कुछ वाक्य फर्मा देती थीं। अपने को विद्वान मानने वाले महाशयों को बाई समर्थ गुरु रामदास का 'दासबोध' पढ़ने के लिए देती थीं जिसमें एक अध्याय 'पठित मूर्ख के लक्षण' नाम का है। इसको पढ़ने से विद्या का अभिमान अध्यात्म मार्ग में कितना हानिकारक है यह बात आसानी से स्पष्ट हो जाती है। सिद्धान्त रूप से बाई अद्वैत वेदान्त का ही प्रतिपादन करती थीं। उनके कतिपय वचनों का संग्रह श्री श्याम सुन्दर जोशी द्वारा 'अमृत वचन' नामक पुस्तिका में प्रकाशित कराया गया है और वकील कालीदासजी ने 'सुजाण बावनी' में कुछ दोहों की रचना कर बाई

के उपदेशों का सार प्रकट किया है। बाई के वाक्यों को समय-समय पर ठाकुर चैनसिंहजी लक्ष्मणपुरा वालों ने लिख लिये थे उन्हें भी इसी के साथ छपाये जा रहे हैं। चैनसिंहजी, महात्मा ठाकुर गुमान सिंहजी (महाराज साहब चतुरसिंह जी के गुरुवर) के पौत्र थे और मेवाड़ की संत परम्परा के सद्गुणों से सम्पन्न थे। इसके अतिरिक्त प्रो. भंवरलाल जी शर्मा, तत्कालीन प्रिंसिपल, बिनानी राजकीय महाविद्यालय, नाथद्वारा ने बाई के सम्पर्क में आकर जो-जो उपदेशप्रद घटनाएं और वचनामृत संग्रह किए उन्हें भी इसी पुस्तक में प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त देश में बहुमान्य होने पर भी जन साधारण के लिए उसको गहराई से समझना और तदनुसार आचरण करना कठिन होता है। बाई के सम्पर्क में विद्वान और ज्ञानमार्ग का अनुसरण करने वाले लोग तो समय-समय पर आते-जाते थे परन्तु धार्मिक प्रवृति के और बाई के

व्यक्तित्व एवं सदाचरण से प्रभावित स्त्री-पुरुष तो नित्य ही नियमित समय पर उपस्थित हो जाते थे। ऐसे लोगों के लिए बाई रामचरित मानस एवं श्रीमद् भगवद्गीता, महाभारत आदि ग्रन्थों का नियमित पाठ चलवाती रहती थीं और पाठ के बाद भजन और कीर्तन भी नित्य कराती थीं। उनके अन्त समय तक यह क्रम निरंतर चलता रहा था। बाई स्वयं भी रामचरित मानस का पाठ कई बार कर चुकी थी इसलिए उसका प्रत्येक स्थल और सैकड़ों चौपाइएं बाई की स्मृति में अंकित हो चुकी थीं। अधिक पढ़े-लिखे साधकों से बाई उपनिषद् और वेदान्त, सांख्य, योग आदि के हिन्दी ग्रन्थ, उनके भाष्य, संत साहित्य, महर्षि रमण, समर्थ गुरु रामदास, सन्त ज्ञानेश्वर, रामकृष्ण परमहंस के वचनामृत, अष्टावक्र गीता आदि पढ़वाकर सुनते रहते थे। अष्टावक्र गीता सुनना बाई को बहुत पसंद था। भजन-कीर्तन में पास-पडोस की स्त्रियां और पुरुष तो आते ही थे पर

कभी-कभी नाथद्वारा की दो मेहतरानियां भी आया करती थीं उनके गाए हुए निर्गुणी भजन बाई अन्य महिलाओं को याद करा देती थीं जो उनकी अनुपस्थिति में भी गाए जाते थे। जीवन के अन्तिम दिनों तक रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड का पाठ बाई स्वयं करती रहीं। सुबह और तीसरे पहर के समय बाई के दर्शन एवं भजन-कीर्तन के लिए आनेवालों को बाई के यहाँ चाय पीना अनिवार्य-सा था।

बाई की ख्याति बढ़ने के साथ-साथ उनके पास सत्संग की कामना से और सन्त के दर्शनमात्र से पुण्यलाभ करने की लालसा से लोगों का आना भी बढ़ता रहा । बाई को अतिथि सत्कार का बहुत शौक था। इसके पीछे उनकी आन्तरिक दया भावना भी थी। वे किसी का भूखा रहना सहन नहीं कर पाती थीं। खर्च अधिक होने की बाई को रत्ती भर भी चिंता नहीं रहती थी। सम्पन्न जागीरदार एवं सद्गृहस्थ बिना

मांगे बाई की सेवा करते रहते थे और कभी रुपया न होता तो कर्ज लेकर काम चलाने में उनको कोई झिझक नहीं होती थी। कर्जा उतारने की चिन्ता भगवान को करनी होती थी। कर्ज बढ़ने पर भगवद्-प्रेरणा से कोई एक-दो सज्जन ही ऐसे ही आकर इतनी राशि भेंट कर जाते थे कि सारा कर्ज साफ हो जाता था। ऐसे सज्जनों में सन् 1967 के पहले इंजीनियर मीठालालजी भेंट कर जाते थे। इसी में से बाई निर्धन एवं अनाथ महिलाओं व परिवारों की सहायता इतने गुप्त रूप से करती रहती थीं कि किसी को नीचा न देखना पड़े। अपनी सेवा करनेवाली महिलाओं में से भी जो आर्थिक सहायता की पात्र होती उनको भोजन, वस्त्र आदि प्रदान करती रहती थीं। साधु-संतों की सेवा और आतिथ्य तो उच्च कोटि का होता ही रहता था। बाई के सम्पर्क से अनेक स्त्री-पुरुषों के जीवन में वर्णनातीत सुधार होता रहा। सबसे पहले भाई नाथूलालजी जोशी बाई

के पास आने लगे। वे नाथद्वारा में श्रीकृष्ण भण्डार में लेखा विभाग में नौकरी करते थे और रहन-सहन एक छैले जैसा था। परंतु बाई ने उनमें भक्त बन जाने की संभावना को पहचान लिया और संभावित बदनामी की परवाह न कर उनको आते रहने की आज्ञा दे दी। धीरे-धीरे उनका जीवन-क्रम सर्वथा बदल गया और वे रात-दिन बाई की शरण में ही निवास करने लगे। परन्तु बाई उनका सम्पूर्ण वेतन उनके परिवार वालों को ही दिलवाती रहीं। नाथूलालजी भाई भजन-कीर्तन में कुशल थे और कीर्तन के दैनिक कार्यक्रम के मुखिया थे। उनका हृदय अत्यन्त पवित्र और व्यवहार अत्यन्त स्नेहपूर्ण था। सन् 1967 के प्रारंभ में जब बाई पुष्कर विराजते थे, उनका नाथद्वारा में हृदय की गति रुकने से स्वर्गवास हो गया। नाथूलालजी के सम्पर्क में आने के कुछ समय बाद ही बाई के साधनकाल में ही भाई घासीरामजी मिस्त्री, उदयुपर वाले भी बाई के

सम्पर्क में आ गए और आवागमन बढ़ते-बढ़ते बाई के मुख्य पुरुष सेवकों में परिगणित हो गए। अन्तिम समय तक उन्होंने बाई की सेवा रात-दिन अत्यन्त दत्तचित्त होकर की। अपनी जाति के होने के कारण बाई की हंसी-मजाक के लक्ष्य बनने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त होता रहा। इनका शुद्ध आचरण, सेवाभाव और सरल हृदय सभी को विदित है।

घासीरामजी के बाद भाई कालीदासजी भाटिया, नाथद्वारा वाले बाई के सम्पर्क में आए। वे वकालत कर रहे थे और अपनी प्रखर बुद्धि एवं निष्कपट व्यवहार के कारण वकालत में सफलता की ओर अग्रसर हो रहे थे। परंतु बाई के सम्पर्क में आने से अध्यात्म में रुचि हो गई और वकालत का काम शिथिल करते-करते छोड़ ही दिया। विवाहिता पत्नी का सर्वथा त्याग कर गृहस्थी से पूर्णरूप से मुख मोड़ लिया और पूरे समय बाई की सेवा में रहते हुए ध्यान

और जप आदि में समय व्यतीत करने लगे। आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन गहन रूप से करते रहे। बाई के पुस्तकालय का संग्रह, संरक्षण और सदुपयोग कालीदासजी का विशिष्ट कार्य रहता था क्योंकि बाई की रसोई और शारीरिक सेवा तो अधिकतर उनके संरक्षण में दिन-रात रहने वाली महिलाएं फूलांबाई और गोदावरी बाई व बाद में टमू बाई करती थी। बाई के उपदेशों और शास्त्रों का सार समझकर कालीदासजी ने 'सुजाण बावनी' नामक दोहों का संग्रह लिखा जिससे उनका गहन ज्ञान प्रकट होता है। इस संग्रह का भी इस पुस्तक में समावेश किया जा रहा है। कालीदासजी ने सन् 1975 में 6 महीने बीमार रहकर शरीर छोड़ दिया। इस बीमारी में उनकी सेवा बाई ने स्वयं रात-दिन एक करते हुए बहुत अच्छी की। उनके स्वभाव में उग्रता जल्दी आ जाती थी जिसे बाई धैर्यपूर्वक सहन कर लेते थे। प्रथम तो पास रहने वालों को

पुत्रवत् रखना उनका स्वभाव ही था और कालीदासजी पर विशेष कृपा इस कारण रखती थीं कि उन्होंने गृहस्थी का त्याग बड़ी वीरता और कठोरता के साथ निभाया था। बाई उनकी सेवा करते-करते इतने थक गयी थीं कि उनका स्वर्गवास होने पर स्वयं पांच माह तक बीमार रहीं।

इनके अतिरिक्त पूज्या बाई के पास समय-समय पर आने वालों में सन् 1937 से मेरा नाम, सन् 1955 के करीब भाई सवाईसिंहजी चूण्डावत व सन् 1955 से सरदारगढ़ कुंवर मानसिंहजी का व सन् 1960 के करीब से मीठालालजी माथुर, सहायक इंजीनियर सिंचाई का नाम आता है। सरदारगढ़ में कई वर्ष तक पिताजी की सेवा के लिए ठहरकर बाई सन् 1967 में वापस नाथद्वारा बिराजने लगीं तब महाराणा साहब भगवतसिंहजी भी पधारने लगे। जयपुर निवासी कल्याणमलजी दड्डा (माहेश्वरी) का ससुराल नाथद्वारा में था वे भजन गाने में

सिद्धहस्त थे। उनका सारा परिवार इसमें उनका साथ देता था। वे बाई के पास पधारकर कीर्तन सुनाया करते थे। छगनलालजी कुमावत भजनीक सन् 1976 से नित्य आकर भजन पार्टी के अगुआ बन गए जिसमें गीता बाई शर्मा, सायर बाई, भंवरी बाई आदि कई बहिनें उनका साथ देती रहीं व अब भी एकादशी, नवरात्रि और अधिक मास आदि अवसरों पर पूज्या बाई के चित्र के समुख भजन-कीर्तन करती हैं। इन सबको बाई का अगाध मातृ स्नेह प्राप्त हुआ। मानसिंहजी के जीवन में अपूर्व सात्विकता का आर्विभाव और मीठालालजी का मदिरापान त्यागकर सच्चाई के साथ जीवनयापन करना आरंभ कर देना, बाई के निकट आने के कारण ही हुआ। डॉक्टर हरिसिंहजी चूण्डावत और सत्यदेवजी शर्मा अन्तिम दो वर्षों में ही बाई के सम्पर्क में आए परन्तु इनको भी बाई के स्नेह ने अत्यन्त द्रवित कर दिया।

बाई की सेवा करने वाली महिलाओं में फूलां बाई जाट व गोदावरी बाई सनाढ्य का वर्णन पहले आ चुका है। सन् 1967 में नाथद्वारा वापस पधारने पर रामायण, महाभारत आदि सुनाने के लिए सरस्वती बाई सनाढ्य सदा आती थी। रसोई में व शारीरिक सेवा करने वालों में प्रथम स्थान बाई के जेठ की पौत्री टमू बाई का है जो सुबह तीन बजे से रात्रि नौ बजे तक अलख आश्रम में ही बनी रहती थी। बाई की भतीजी गोमती बाई अपने ससुराल का काम जल्दी निपटाकर दोनों समय बाई की रसोई में व शरीर संबंधी सेवा में जुट जाती थी और भतीजे नन्दलालजी की पत्नी बाई के अंतिम बीमारी के तीन वर्ष में बाई के पास ही रही। इन तीनों महिलाओं में बाई की सेवा के लिए जो लगन थी वह देखते ही बनती थी।

प्रसिद्ध सन्तों का समागम

महाराज साहब चतुरसिंहजी से मिलने या मार्गदर्शन प्राप्त करने का कुछ विवरण ऊपर दिया जा चुका है। दुर्भाग्यवश उनका सत्संग बाई को अधिक समय तक न मिल सका। वे सन् 1930 के प्रारंभ में ही ब्रह्मलीन हो गए. परंतु उनका साहित्य बाई के यहाँ सदा ही प्रेरणा का स्रोत बना रहा और उनके द्वारा रचित कई भजन जो चतुर चिन्तामणि में छपे हुए हैं, बाई की भजन मंडली द्वारा बराबर गाए जाते रहे और उनकी पुस्तकों का अध्ययन चलता रहा है। बाई को साधनकाल में ही आमेट के राजपूत सन्त स्वरूपदासजी के दर्शन हुए। बाई का ननिहाल आमेट में ही था जहाँ वे स्वरूपदासजी के गृहस्थ काल में उनके सामने खेलते थे। उनके बड़दढ़ की धूनी पर अच्छी तपस्या कर ख्याति प्राप्त कर लेने

पर बाई कभी-कभी पडोस की महिलाओं को साथ लेकर उनके दर्शन के लिए कुम्भलगढ़ के पहाडों में जाते थे।

महात्मा श्री भूरी बाई सहज रूप में ध्यानस्थ

स्वामीजी महाराज योगेश्वरानंदजी युवावस्था में ही बड़े फक्कड़ सन्त थे। उनका निर्लिप्त रहते हुए स्वच्छन्द विचरण करना और ज्ञान चर्चा के अतिरिक्त कोई व्यर्थ बात न करना बाई को बहुत पसंद आया। कालीदासजी तो उनके पास प्रतिदिन एक दो घंटा व्यतीत करने जाते थे। बाई का आतिथ्य ग्रहण करने स्वामीजी प्रायः नित्य पधार जाते थे। भाई कालीदासजी का शरीर न रहने पर उन्होंने नाथद्वारा आना कम कर दिया परन्तु बाई की अन्तिम बीमारी के दिनों में आ गए थे। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण छपने से दो वर्ष पूर्व ये महात्मा

भी ब्रह्मलीन हो चुके हैं।

चित्तौड़गढ़ के प्रसिद्ध सूफी चलफिर शाहजी और कपासन के प्रसिद्ध सन्त दीवानशाहजी से मिलने बाई पधारती थीं। दीवानशाहजी नाथद्वारा भी पधारे थे। दोनों संत बाई का और बाई उनका बहुत आदर करते थे।

प्रसिद्ध महात्मा नारायण स्वामीजी केवल टाट पट्टी धारण करते और 'नारायण-नारायण' कहने के अलावा कोई बात करना पसंद नहीं करते थे, कभी-कभी नाथद्वारा पधार जाते थे और कभी एक स्थान पर विशेष विराजना होता तो बाई को सूचना देकर बुला देते थे। बाई कालीदासजी और घासीरामजी को लेकर हरिद्वार और डाकोरजी पधार जाती थीं। उनके जाते ही नारायण स्वामी जी को ऐसा लगता था कि अब मेरा घर ही यहाँ आ गया है। वे

स्वच्छन्दतापूर्वक भोजन के लिए अपने परिचित साधु-सन्तों को निमंत्रण दिलाकर बाई के हाथ का भोजन कराते थे और बाई भी उनकी पसंद की सामग्री बनाकर खिलाती थीं। नारायण स्वामी अपने हाथों में ही भोजन लेकर खाते थे, कभी थाली नहीं लगाने देते थे। उन्होंने बाई को बहुत कहा कि आपको नारायण के दर्शन करा दूं परंतु बाई साफ इन्कार हो गए और निवेदन कर दिया कि मुझे दर्शन नहीं करना है। बाई की ऐसी दृढ आत्मनिष्ठा के कारण स्वामीजी उनको मीरा की संज्ञा व स्वयं को कबीर की संज्ञा देते थे। बाई को कभी वे 'अलख' भी कहते थे। इसी से बाई के लिए नवनिर्मित मकान का नाम भक्तों ने 'अलख आश्रम' रखा था। डाकोरजी में बाई की सेवा माता की तरह करते कालीदासजी और घासीरामजी को देखा तो वहाँ की स्त्रियों ने बाई से पूछा की ये आपके क्या लगते हैं? बाई ने उत्तर दिया कि मेरे बेटे हैं। स्त्रियों ने पूछा

आपकी बराबर की आयु के बेटे कैसे हैं? तो बाई ने गंभीरतापूर्वक कह दिया कि अगली बहू के हैं। स्त्रियों ने इसे मानकर विमाता की अच्छी सेवा करने के लिए दोनों की खूब प्रशंसा की।

भारत के विख्यात संत और उपदेशक तथा मानव सेवा संघ वृन्दावन के संस्थापक, स्वामीजी महाराज शरणानन्दजी का मैंने बाई से 1943 में परिचय करा दिया था। वे बाई का बहुत आदर करते थे और जब-जब उदयपुर पधारते बाई से मिलने के लिए नाथद्वारा ठहर जाते थे। बाई को भी वृंदावन बुलाने के लिए आग्रह करते रहते थे। बाई तीन बार वृन्दावन पधारे और एक बार पुष्कर में स्वामीजी महाराज और बाई एक समय में करीब एक महीना बिराजे। स्वामीजी के भक्त लोग उदयपुर नाथद्वारा में आते तो उनको स्वामीजी बाई के दर्शन अवश्य करने के लिए प्रेरित करते थे और ये बात भी समझाकर भेजते कि 'बाई के भोजन के लिए आग्रह

करें तो इन्कार मत करना। बाई के यहाँ भोजन करने का महात्म्य है।' स्वामीजी महाराज तो सन् 1974 में ब्रह्मलीन हो गए परन्तु उनके भक्त लोग बाई विद्यमान रहे तब तक आते ही रहे।

प्रसिद्ध जैन सन्त शान्ति विजयजी महाराज जिनकी स्मृति में आबू पर्वत पर धर्मशाला आदि स्थान बने हुए हैं बाई के सम्पर्क में आए थे और उन्हें आबू बुलाया था। वे अनुयायियों की सांसारिक कामनाओं की पूर्ति में सहयोग देने लगे थे, उसके बाद एक बार उदयपुर पधारे तब बाई ने उनसे मिलकर ऐसे चमत्कारपूर्ण कार्य न करने के लिए निवेदन करते हुए कहा था कि साथियों का तो आपकी दया करने से भला होता है परन्तु स्वयं की तपस्या क्षीण होती है। बाई स्वयं सांसारिक हित कामना से उनके पास आए हुए स्त्री-पुरुषों को हतोत्साह कर देते थे। एक बड़े जागीरदार की पत्नी ने पुत्र कामना की तो बाई ने सीधा उत्तर दे दिया कि

मेरे भी पुत्र नहीं है।

स्वामी माधवानंदजी महाराज नाथद्वारा आए तब महाराणा साहब की तरफ से उनके साथ भेजे हुए देवस्थान विभाग के हाकिम मथुरा नाथजी भी आए। वे बाई के पास आया करते थे। उस दिन आने पर बाई ने कहा आपके महाराज से मिलने मैं भी चलूं मथुरानाथजी बोले वे स्त्री मात्र से नहीं मिलते हैं। बाई ने फर्माया कि उनको पूछना कि आपको माता ने पैदा किया है या पिता ने ।

केलवा के तत्कालीन ठाकुर साहब दौलत सिंहजी के काका ठाकुर रामसिंहजी राठौड़ मेवाड़ के प्रसिद्ध सन्त थे। वे ठाकुर गुमान सिंहजी और महाराज साहब चतुरसिंहजी की परंपरा के भक्त सन्त थे। कभी बाई के पास नाथद्वारा पधार जाते और कभी बाई केलवा पधार कर कई दिन तक बिराजतीं।

दोनों ही संतों का अधिक बात करने का शौक

नहीं था। परन्तु दोनों को एक दूसरे के सान्निध्य से अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव होती थी।

बाई को औपचारिक धर्म और सम्प्रदाय विशेष का आग्रह नहीं था फिर भी स्वास्थ्य अच्छा रहा तब तक श्रीनाथजी के दर्शन करने जाती थीं तो उधर जैन साधु और रामस्नेही सन्त बाई के साथ वार्तालाप करने के लिए उत्सुक रहते थे। ख्यातिप्रिय न होने पर भी बाई के दर्शनार्थ गीता प्रेस गोरखपुर वाले हनुमान प्रसादजी पोद्दार एवं जयदयालजी गोयन्दका जैसे प्रसिद्ध धर्मसेवी उनके पास पहले से सूचना भेजकर नाथद्वारा आ जाते थे।

गीताप्रेस से चिरकाल तक सम्बद्ध प्रसिद्ध विद्वान सन्त स्वामी सनातनदेवजी का भी बाई से सम्पर्क था। वे कई बार नाथद्वारा और सरदारगढ़ पधारे थे।

आचार्य रजनीशजी अपने शिष्यों को बाई के पास जाने की प्रेरणा देते रहते थे। बाई भी उनके

प्रारम्भिक सत्संगों में सम्मिलित होने के लिए दो बार पधारी थीं।

बाई को भजन सुनाने के लिए मुसलमान कव्वाल और प्रसिद्ध गायिका अल्लाह रखी बाई व उनके उस्ताद हैदरबक्षजी उपस्थित होते रहते थे। बाई ऐसे सब लोगों को अच्छा सत्कार करते थे।

भगवान की दया

पति की बीमारी के दिनों बाई अपने खेत से गायों के लिये घास काट कर लाने गये तब उनके हाथ पर सांप ने काट खाया। शाम हो रही थी। बाई ने यह बात किसी से नहीं कही ताकि पति के पहिले ही शरीर छूट जावे तो छुट्टी हो। रात को मर जाने की प्रतीक्षा में भूमि पर सो गए परन्तु सुबह जागने पर न मरने का अचम्भा ही हाथ आया। सम्भवतः साँप

काला नहीं था। बाई जेठ ने हाथ और शरीर पर सोजिश देखकर इलाज व मन्त्र-जन्त्र कराए। कई दिनों तक तकलीफ देखकर ही बाई ठीक हो गए। योग साधन के दिनों बाई भाया भील के पिता की बनाई हुई झोपड़ी में गांव के बाहर ध्यान करने के लिए बैठती थीं। भाया के पिता व भाया की बाई के पारिवारिक खेतों की साझे पर काश्त करते थे। झोपड़ी के आस-पास एक काले साँप का बिल था। बाई के ध्यान के समय साँप उनके सामने फनकर बैठ जाता था। एक बार भाया के पिता ने यह हाल देख लिया । बाई ने साँप को किसी तरह की हानि न पहुंचने का आदेश दिया। परन्तु उसने बाई के घर जाने पर झोपड़ी को इस डर से गिरा कर हटा दी कि साँप बाई को काट खाएगा तो उसका नाम बदनाम हो जाएगा। बाई के ब्रह्मलीन होने के बाद भी भाया नित्य प्रातःकाल बाई के चित्र का दर्शन करने के लिए अलख आश्रम में जाता है और ठाकुरजी के

कमरे में कुछ देर तक बैठकर उनका ध्यान करता है।

पति के स्वर्गवास के बाद जाति के और अन्य लोग संवेदना प्रकट करने के रिवाज के अनुसार बाई के यहाँ आते रहे। ऐसे मेहमानों के भोजन का भी प्रबंध करना पड़ता था, परन्तु बाई के घर में एक दिन खिलाने को कुछ सामान नहीं था और न पैसा था और उस दिन दो मेहमान ऐसे आ गए जिन्हें भोजन कराना चाहिए था। बाई को इस असमर्थता से इतना दुख हुआ कि चित्र बनाने के लिए रखा हुआ एक जहरीला रंग पानी में घोलकर पी जाने व इस प्रकार जीवनलीला समाप्त करने का निश्चय कर लिया। इतने में बाई की छोटी बहिन तुलसी बाई (जिसे उन दिनों साथ रहने के लिए बुला रखी थी) गाय के लिए घास का भारा लेकर आ गई। तुलसीबाई को अन्य स्त्रियों के साथ घास लेकर रास्ते में एक चिथड़े में बंधे हुए दस रुपये मिल गए थे। स्त्रियों के कहने से

उसने वे रुपये रख लिए और घर लाकर बाई को दे दिये। पहले तो बाई को भरोसा नहीं हुआ कि रुपये इस प्रकार मिले है किसी के चुरा नहीं लिए हैं। परन्तु जब अन्य स्त्रियाँ जो तुलसीबाई के साथ गई थीं उनकी सत्यता की साक्षी दी तब बाई ने वे रुपये ईश्वर प्रदत्त मानकर रख लिया और आत्महत्या का विचार त्याग कर मेहमानों के लिए व स्वयं के लिए उन रुपयों से भोजन का सामान मंगा लिया। दस रुपयों का उन दिनों बहुत मूल्य था।

बाई ने चारों धाम की यात्रा की थी। बद्रीनारायण की यात्रा दूसरी बार पधारीं तब भाई कालीदासजी और भाई घासीरामजी के अतिरिक्त करीब पचास स्त्री पुरुष साथ हो गए थे। भाई सवाईसिंहजी चूंडावत आमेट वाले भी साथ थे। केदारनाथ से ऊपर चढ़कर तुंगनाथ के दर्शन करने के लिए जाने का कार्यक्रम बना था। परन्तु रवाना होने से कुछ मिनिट पूर्व बाई ने अपने निकटस्थ साथियों से जाने

के लिए मना कर दिया। कोई कारण नहीं बताया। संग के अन्य लोग पहाड़ पर करीब एक घण्टे तक चढ़े होंगे तब कोहरा छा गया। हाथ को हाथ नहीं दिखता था। काफी देर तक कोहरा साफ होने की प्रतीक्षा में बैठने पर भी जब कोहरा नहीं हटा तो सब लोग निराश होकर लौट आए। पहाड़ के नीचे के भाग में कोहरा नहीं था। उनके लौट आने पर खुद के जाने से बाई के मना करने का कारण निकटस्थ साथियों की समझ में आया।

इसी यात्रा का एक दूसरा अनुभव भाई सवाईसिंहजी ने बताया था। शाम को पैदल यात्रा से काफी थककर एक मुकाम पर बाई पहुँची थीं। अन्धेरा हो गया था। विश्राम के लिए बिराजी थीं तब थोड़ी ही देर में सवाईसिंहजी को फर्माया कि टॉर्च और लकड़ी लेकर मेरे साथ चलो कुछ घूम आवें। उन्होंने व अन्य साथियों ने कहा आप काफी थक

चुकी हो इस समय कैसा घूमना है परन्तु बाई नहीं मानीं। उनकी आज्ञा टाली नहीं जा सकती थी। सवाईसिंह जी टॉर्च लेकर साथ हो गए। करीब दो फर्लांग जाने पर खड्डे में किसी आदमी के कराहने की आवाज सुनाई दी। अन्य साथियों को लाकर उस आदमी को निकाला गया और ठहरने के स्थान पर लाकर उसका उपचार किया गया। ऐसी सूक्ष्म संवेदनशीलता महात्मा लोगों में भगवत् कृपा से होती ही है।

व्यक्तित्व

बाई का कद लम्बा और बदन इकहरा था। रंग गेहुंआ और गौर मिश्रित था परन्तु ब्रह्मचर्य और तपस्या के प्रभाव से दमकता था। आंखों में अदभुत तेज के साथ-साथ उनका दयालु स्वभाव स्पष्ट

प्रतीत होता था। भोजन पर योग साधन काल से ही नियंत्रण रखने की आदी हो गयी थीं। एक बार अधिक भोजन नहीं करती थीं। कभी पार्श्ववर्ती लोग अधिक आग्रह कर शाम को भी कुछ खिला देते थे तो बाई को तकलीफ हो जाती थी विशेष कर रात्रि को उनके माला फेरने बैठने के समय बाधा प्रतीत होती थी जिसको वे बहुत नापसन्द करते थे। आत्म साक्षात्कार हो जाने के बाद भी प्रतिदिन सुबह दो बजे उठकर करीब दो घन्टे नामजप में बैठ जाना शरीर स्वस्थ रहा तब तक बराबर जारी रहा। बीमारी के कारण अन्तिम चार बरसों में रात्रि को नौ बजे से करीब एक घन्टा बिराजते थे। हम लोग निवेदन करते कि आपको अब क्या प्राप्त करना है परन्तु बाई फर्माते कि दिन भर तो सांसारिक क्रियाकलाप ही होता रहता है फिर भगवान का नाम कब लेवें। शरीर में दर्द होता उसका कोई प्रभाव जप के समय मन पर पड़कर जप में बाधा नहीं पहुंचा सकता था। माला

फेरते समय उतने समय के

39

लिए उनको दर्द का अनुभव नहीं होता था ऐसा वे स्वयं फर्माते थे। भगवान राम के आदर्श के अनुसार बाई भी मर्यादा के मनुष्यावतार थे। स्त्री देह पाने के कारण उच्चकोटि की शारीरिक लज्जा बरतने का पूरा ध्यान रखते थे। अधिकतर माथे पर साड़ी इतनी आगे रखते थे कि आधा मुँह ढ़का रहता था। आधुनिक नारी का बहुत से अंग उघाड़े रखने का रिवाज बाई को बिल्कुल पसन्द नहीं था। स्त्रियों को आदर्श गृहिणी बनने और स्वन्त्रता का लोभ त्यागकर घर के पुरुषों-पिता, पति या पुत्र या भाई के नियन्त्रण में रहने की और परिश्रम करने की राय दिया करते थे। स्वयं भी बाई अनाज साफ करना, पीसना, मवेशी की संभाल करना और भोजन बनाना आदि कार्य करती रहती थीं। अपने बैठने के

लिए चटाई से अधिक कोई बिछौना नहीं बिछाने देती थीं। वस्त्र भी एक हिन्दू विधवा स्त्री सामाजिक रिवाज के अनुसार पहन सके वैसे ही पहनते थे जिसमें कोई फेरबदल आजीवन नहीं किया। अपने रहन-सहन या व्यवहार को ऐसा रखती थीं कि कोई उन्हें देखकर यह नहीं कह सके कि ये महात्मा हैं। गुरु बनने या दिखने भाव (गुरुदम) से वे कोसों दूर रहती थीं। बाई का स्वास्थ्य साधारण तौर से अच्छा ही रहा। परंतु योग और संयमित भोजन के अभ्यास के कारण थोड़ी सी भी गड़बड़ उनकी तकलीफ का कारण बन जाती थी। एक बार परिचित भक्त महिला के आग्रह से बाई सांभर पधार गए। वहाँ नमक बनाने की प्रक्रिया में जो पानी की सड़ांध रहती है। उसके कारण जल्दी ही लौट आने पर भी जो ज्वर आया वह बहुत दिन तक बना रहा।

बाई शारीरिक कष्ट इतना शान्तिपूर्वक सहन कर लेती थीं कि देखने वाले दंग रह जाते थे। जब जब

बीमारी में शरीर का कोई अंग दर्द करता था तो दर्द भयंकर होने पर भी कराहट भी बाई के मुँह से नहीं निकलती थी। कालीदासजीजी के स्वर्गवास के बाद खुद की बीमारी से स्वास्थ्य लाभ पूरा नहीं हुआ था कि एक दिन सुबह चार बजे चाय की पतीली चूल्हे पर से स्वयं उतारते समय हाथों से छिटक गई। उससे दोनों पैर टखनों तक बुरी तरह जल गए। परन्तु इतनी भी चीख नहीं निकली की रसोई के बाहर सोए हुए व्यक्ति जग जावे। बाद में भी डाक्टर के नित्य पट्टी बांधते समय बहुत दर्द होता था व दिन-रात जलन रहती थी परन्तु अत्यन्त धैर्यपूर्वक चुपचाप सहन कर लेती थीं। वाल्मीकि मुनि ने भगवान राम के लिए लिखा है कि वे धैर्य में हिमालय के समान, दान देने में कुबेर के समान, गंभीरता में समुद्र के समान और सत्य में धर्मराज के समान थे। ये सभी गुण बाई में भी वैसे ही विद्यमान थे। पार्श्ववर्ती और रिश्तेदार लोगों के सभी अवगुण और अप्रिय वचन

उनके गंभीर स्वभाव में डूब जाते थे। उनको पाप से तो घृणा थी परन्तु पापी को छाती से लगाने के लिए सदा तैयार रहती थीं। कभी किसी से कोई अपराध हो जाता जिसके कारण वह व्यक्ति लज्जा और भय के कारण बाई के पास आने में रूक जाता तो बाई उसे बुलवा लेती थीं। अपनी दया और मधुर स्वभाव के कारण बाई सभी निकट आने वाले मनुष्यों को माता के समान ही लगती थीं। मुझ जैसे संसार में लिप्त मनुष्य के लिए तो उनका मातृत्व ही ऐसा प्रखर आकर्षण था जिससे अन्य कार्यों से जल्दी छुट्टी लेकर उनसे सान्निध्य का आनन्द प्राप्त करने के लिए मन लालायित रहता था। बाई के स्नेह का अनुमान इस बात से लग जावेगा कि एक दिन किसी सज्जन को मेरे लिए यह फर्माया कि इसे सिर्फ नौ महीने पेट में नहीं रखा है अर्थात् बाकी सब तरह से मेरा पुत्र है। ऐसा ही स्नेह निकटवर्ती अन्य स्त्री-पुरुषों को भी प्राप्त होता था, बल्कि ऐसे स्नेह से वे इतने

मस्त रहते थे कि बाई से ज्ञान और साधन सीखने का भी कोई जिक्र नहीं करते थे। ज्ञान मार्ग का अनुसरण केवल भाई कालीदास के ही हिस्से में आया था। उनकी अन्तिम बीमारी में भी बाई उनको इस दृष्टि पूछताछ कर लेतीं और उनकी सावधानी से सन्तोष प्राप्त करती थीं।

स्वावलम्बन को बाई इतना अच्छा समझती थीं कि पैर जल जाने पर थोड़े ठीक होकर चलना शुरू करते ही चक्कर आने से गिर पड़े और कुल्हे की हड्डी कुछ टूट जाने से स्वयं उठने में असमर्थ हो गए तो दूसरों का हाथ पकड़कर रसोई में पधारते थे और पूर्ववत दो घण्टे नित्य भोजन बनाने का कार्य करते रहे। हम लोग निवेदन भी करते कि अब यह कार्य आपकी भतीजी गोमतीबाई और भतीजे की बहू रूक्मणी पर छोड़ दीजिये, आपने इनको भोजन बनाने में काफी होशियार कर दिया है, परन्तु बाई नहीं मानती थीं और फर्माती थीं कि मनुष्य को

जितना हो सके उतना काम अपने आप करना चाहिए। बाई का शरीर स्वस्थ था तब फूलां बाई जाट और गोदावरी बाई सनाढ्य उनके पास रात-दिन रहती और सेवा करती थी फिर भी बाई स्वयं भी काम में जुटे रहते थे। गायों और भैंसों की अच्छी संभाल कर उन्हें भी बाई इतना स्नेह प्रदान करते थे कि सरदारगढ़ से नाथद्वारा पधार जाने पर वे बहुत दुखी होती थी। नाथद्वारा में दूसरों की गाय-बछड़ी को ही इतना खिलाते-पिलाते थे कि वह अलख आश्रम छोड़कर अपने घर जाना पसन्द नहीं करती थी। इसी तरह पक्षियों को नियमित रूप से सुबह दाना चुगाया जाता था और जब बाई दोपहर के समय भोजन करतीं तब तीन-चार तरह की चिड़ियाएं आ जातीं व उनकी चुगने की वस्तु लाने वालों को दो-चार मिनिट की भी देर हो जाती तो बाई के पावन शरीर पर आ बैठती व तरह-तरह से उनका ध्यान आकर्षित करती थी। बाई के पास एक

साधारण-सा कुत्ता भी कुछ वर्ष अपने आप आकर रहने लगा। उसके भी लक्षण अद्भुत बन गए थे। किसी को नहीं भौंकना, अपने ही बर्तन में रखने पर चाय, पानी और भोजन ग्रहण करना, घर में गन्दगी न करना और आदर व प्रेमपूर्वक खिलाने पर ही खाना अन्यथा रूठ कर सो जाना या चले जाना उसकी आदत में थे। बाई ने उसका नाम रमेश रखा था।

बाई सदा प्रसन्नचित रहती थीं और विनोदप्रिय भी थीं। रामायण पाठ और भजन-कीर्तन में देर से आने पर महिलाओं की तरह-तरह की चुटकियां लेती थीं और कथा के बीच-बीच में भी स्त्रियों के स्वभाव, पुरुषों को दास बनाकर रखने की शक्ति, लोभ, मोह आदि के प्रसंग आने पर हंसी करती रहती थीं। स्त्री को माया का साक्षत् रूप मानती थीं और उनके मायाजाल का वर्णन करती रहती थीं। स्वयं का शरीर स्त्री का होने से उनके फर्माये हुए

वृतान्त अधिक बुद्धिगम्य होते थे परन्तु उनसे कोई स्त्री बुरा नहीं मानती थी। पुरुषों की भी स्त्री-दास होने की मजाक होती रहती थी। एक दुकानदार से समान बिना मिलावट का होने का यकीन दिलाने के लिए बाई ने विनोद में उसको यह कहा कि अपनी पत्नी की सौगन्ध खाकर बताओ, तो वह बिगड़ कर बोला कि आपको लेना हो तो लो नहीं तो जाओ।

इतना स्नेह और दयापूर्ण व्यवहार रखने पर भी पास रहने वालों को बाई से डर लगता था। उनकी प्रखर बुद्धि के कारण उनके सामने झूठ बोलने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी और उनकी स्वेच्छा के विरुद्ध उनसे कोई काम या बात कराई जा सकती थी। उनमें दृढ़ता इतनी थी कि कोई भी उनसे अत्यधिक आग्रह नहीं कर सकता था। हाथ में सोजिश हुई तब गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा अपने हाथ की पीड़ा मिटाने के लिए रचा हुआ 'हनुमान बाहुक' नित्य सुनना स्वीकार कर लिया।

सोजिश भी काफी ठीक उतर गयी परन्तु वही सोजिश पैरों पर होने पर हनुमान बाहुक सुनने से इन्कार कर दिया।

इससे हम लोगों को यह आशंका हो गयी थी कि यह सोजिश नहीं मिटने वाली दिखती है और वास्तव में हुआ भी वही। वह सोजिश पैरों से पेट तक फैल गयी और उसी से शरीर गया। यह घटना 3 मई, 1979 तदनुसार वैशाख शुक्ल 7 संवत् 2036 के दिन घटी। बात करते-करते एकदम पूज्याबाई ने शरीर छोड़ दिया।

बाई की आन्तरिक शान्ति के मुकाबले में शरीर के दर्द की या किसी भी प्रकार के अन्य कष्ट की उनकी दृष्टि में कोई सत्ता है- ऐसा हम लोगों को कभी नहीं लगा। ऐसे कष्ट के समय भी वे भगवान की दयालुता का ही बखान करती रहती थीं।

यद्यपि बाई मुँह से बहुत कम फर्माती थीं। उनका सारा जीवन ही उपदेशस्वरूप था। वे ब्रह्मलीन होने

से विभु अर्थात् व्यापक हो गयी हैं। और उनका आशीर्वाद और प्रेम भी उतना ही व्यापक हो गया है। वह सदा ही हम सभी का कल्याण करे, यही प्रार्थना है।

ठाकुर चैनसिंह लक्ष्मणपुरा लिखित पूज्या बाई के कपितय वचनामृत

भूमिका

श्रीमती पूज्या भूरीबाई के दर्शन करने जब-जब मैं सरदारगढ़ और नाथद्वारा गया और कुछ दिन ठहरने का अवसर मिला तब बाई ने कृपा दृष्टि कर कुछ शब्द फर्माए उनको मैंने याद रखने के लिए लिख लिए। वे प्रस्तुत करता हूँ। मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ इसलिए गलतियाँ होना स्वाभाविक ही हैं। पाठक सज्जन गलतियों को सुधार लेवें और मुझे क्षमा करें।

संस्मरण

(1)

खास बात यह है कि किसी को समझाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। नहीं तो समझने वाले के लिए समझ का एक भूत खड़ा हो जायेगा। कोई किसी को क्या समझा सकता है; सब अपने-अपने संस्कारों के अनुसार समझते हैं।

किसी के दोष-गुण नहीं देखना चाहिए। सबमें सर्वत्र एक ही चैतन्य देव बिराजते हैं। अपने ही व्यक्तिगत अहं का निरीक्षण करते रहना चाहिए। **किया हुआ कोई भी काम, चाहे वह धर्म-ध्यान हो चाहे खराब काम हो, अपने निज स्वरूप में कोई भी विशेषता या न्यूनता नहीं ला सकेगा अर्थात् वह है**

ज्यों का त्यों रहेगा। कोई कमी-बेशी नहीं होगी, ऐसा जानना चाहिए।

(2)

स्त्री से व्यवहार बहुत सावधान होकर करना चाहिए, क्योंकि स्त्री माया का मूर्तिमान स्वरूप हैं। अपने अंहकार की परीक्षा करते रहना चाहिए। अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु को अन्य रूप से उपयोग में लावे तो भी उस वस्तु में ममता नहीं आनी चाहिए। मोह की मात्रा कितनी है, यह ध्यानपूर्वक देखते रहना चाहिए। अपनी संतान या निकट संबंधी के सुधार या बिगाड़ से अपने को हर्ष या शोक हो तो सोचना चाहिए कि संसार में बहुत मनुष्य हैं, उनके सुधार या बिगाड़ से अपने को हर्ष-शोक क्यों नहीं होता? इस अन्तर का कारण मोह ही है।

इनका सुधार-बिगाड़ तो इनके साथ आए

संस्कारों के अनुसार ही होता रहेगा। हजार प्रयत्न करो तो भी जो नहीं सुधरने का है वह नहीं सुधरेगा और नहीं बिगड़ने का है वह नहीं बिगड़ेगा। इसलिए इस खटपट में अपने को नहीं पड़ना चाहिए। अंहकार को सिर पर उठाकर कर्म के बंधन में आकर पच मरने की आवश्यकता नहीं हैं।

अपने अंतर में दृढ़ रहना । संसार का बाहरी व्यवहार समयानुसार करते रहना। परन्तु अंतर में निरंतर निरीक्षण करते रहना कि मैं कितना तटस्थ हो रहा हूँ। वास्तव में कोई कभी भी अपना नहीं हैं। यों व्यवहार में सभी अपने हैं।

जो कुछ भी कार्य हो उसे इस प्रकार करते रहना चाहिए जैसे मजदूर मजदूरी पर जाकर करता है। निठल्ला नहीं बैठना चाहिए। शरीर निर्वाहयोग्य काम तो करते ही रहना चाहिए।

परन्तु यदि अन्तर में यह भाव भर जावे कि यह मेरा घर है या मेरा कुछ बिगड़-सुधार रहा है तो

समझना चाहिए कि मेरा कोई भी सुधार नहीं हुआ। वेद से लेकर अन्य सभी शास्त्र अपने निज स्वरूप की बात नहीं कह सके हैं और न ही कह सकेंगे। वर्णन प्रकृति के अतिरिक्त और किसी का नहीं मिलेगा। सभी वर्णन प्रकृति का ही है। निज का वर्णन करने में कोई समर्थ नहीं हैं क्योंकि वह कोई दृश्य पदार्थ न तो है न होगा।

(3)

संसार से निराश हो जाओगे, तभी प्रभु की दया होगी। जब तक तुमको संसार का सहारा है तब तक प्रभु क्यों हाथ डालने लगे?

(4)

मैंने बात चलाई कि "यह शरीर नहीं रहेगा तब"

बाई ने इस बात को बीच में ही काटकर कहा कि किसी बेसमझ आदमी के बहकावे में नहीं आना चाहिए। सारांश यह है कि बाई जन्म-जन्मातर की बात को कल्पित मानते थे, आगे ही नहीं बढ़ने देते थे।

(5)

बाई के स्वयं के बनाए हुए श्रीनाथ के चित्र के नीचे निम्नलिखित शब्द लिखे थे, 'भूरकी की दया के खजाने की चाबी कोई ले गया।' (भूरी बाई को बचपन मैं माता-पिता 'भूरकी' कह कर सम्बोधन करते थे।) भगवान दया निधान है पर उनकी कृपा गुरु से ही प्राप्त होती हैं। जब चित्र बनाते थे उन दिनों तक बाई को ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था।

(6)

मैंने बाई के सामने प्रश्न किया, “परमात्मा का साक्षात्कार कब होवेगा?”

बाई ने उत्तर दिया “जब यह बात मन में से निकल जावेगी।”

(7)

चैत्र की नवरात्रि में रामायण के 108 पारायण करने का प्रसंग चल रहा था। तब बाई ने कहा “यहाँ भी मनुष्य है जो कीर्तन और रामधुन करते है पर वह बिना प्रेम के निष्प्राण होती है। कोई बीच में सो भी जाते हैं। नाथूलालजी भाई आलस्य ही करते है। लोग आलस्य का ही पक्ष लेते है। ऐसा जमाना आ गया है कि लोग सोते-सोते (बिना काम किए) खाना चाहते हैं। मतलब यह है कि बिना भजन किए कुछ होना नहीं हैं। बिना पूंजी के कोई व्यापार होता देखा

नहीं है। आलस्य को दूर करके जो भजन करेगा वहीं पावेगा। पहले ऋषि-मुनि कितनी कितनी कठिन तपस्याएँ करते थे। आज कितना आराम है तो भी नहीं करे तो किस प्रकार भला होगा। बिना भजन के सफलता की आशा करना तो मन मोदक से भूख बुझाने की तरह ही हैं। ब्रह्माजी का साक्षात् सत्संग मिल जावे और मिलता ही रहे तो भी अपना किया हुआ ही काम आवेगा। सारांश यह कि अपने चित्त से संसार का चिन्तन मिट जाना चाहिए।

(8)

मेरा कहना मानों तो मनुष्य मात्र का संग मत करना। मैं मर जाँऊ तो भी यह बात याद रखना। भाव यह था कि सांसारिक भावना वाले मनुष्य की संगति नहीं करनी चाहिए। महात्माओं के संग का या सत्संग का निषेध नहीं किया।

इसके बाद बाई ने यह भी कहा कि मुझे नारायण स्वामी ने संन्यास ले लेने की लिए कहा था और यह भी कहा था कि मेरा कहना नहीं मानोगी तो पछताओगी। महापुरुषों की वाणी सच्ची होती हैं। तभी मेरे इतने जंजाल हो गये है सो देखो। मेरे लिए तो एक महीने में दस सेर आटा ही काफी है । परन्तु इस जंजाल में कई माणी (करीब 5 क्विन्टल) आटे की आवश्यकता हो जाती है।

इसलिए घर में जैसी रोटी का टुकड़ा मिल जाए वैसे ही चुपचाप खाकर भगवतस्मरण करना चाहिए। किए बिना कुछ नहीं होगा। **वेदान्त में संसार को स्वप्न बताया है परन्तु यह तो स्वप्न में भी स्वप्न होता जा रहा है। जहाँ संसार को रंचमात्र भी सत्य माना जाता है वहाँ सारा संसार सत्यरूप है।** राजा जनक कैसे थे। परन्तु उनको भी संसार की सत्यता चित्त में से पूर्णतया निकालनी पड़ी। ऐसा ही विचार करना और अपने अहं का ठीक तरह निरीक्षण

करना चाहिए कि अपने चित में चिन्तन संसार का चलता है या ईश्वर का, यह अच्छी तरह ध्यान से देखो तो मालूम होगा कि अधिक समय तो संसार के चिन्तन में ही बीतता है। इससे यह साबित होता है कि **बिना संसार की सत्यता को स्वीकार किए संसार का चिन्तन नहीं चल सकता।** इसलिए बहुत सावधानी से अहं का निरीक्षण करो। दूसरे के चित्त की हालत तो कोई पूरी तरह नहीं जान सकता परन्तु अपने अन्तर में स्थित परमेश्वर तो सब जानता है। इसलिए बहुत सावधानी के साथ आत्म निरीक्षण करना चाहिए। सच्चा तो उसके सामने होना है। तब पार लगेगा। उसको धोखा कौन दे सकता हैं? आलस्य करें, क्या वह नहीं जानता? अनीति, चोरी-जारी आदि सब बुराइयाँ उसके सामने हैं। जब वह दृष्टा प्रत्यक्ष देख रहा है फिर सच्चे किसके सामने होंगे। सच्चा है उसकी तो परवाह ही नहीं करते हैं।

(9)

रमण महर्षि की वाणी पढ़ने की आज्ञा दी। उसमें आत्म साक्षात्कार का प्रसंग आया । बाई ने कहा कि मिट्टी के घड़े को ओंधा रख कर उस पर कोई चीज रखोगे तो नहीं ठहरेगी। मतलब यह हैं कि हैं तो सब आत्मा ही परन्तु अपनी भावना विपरीत हो गई है इसलिए सब बातें उल्टी ही सोचने में आ रही हैं।

(10)

दो बातें याद रखने की है। पहली बात यह कि जो यह प्रकृति (माया आदि किसी भी नाम से कहो) दिखाई देती है उसकी गहराई में (पेंदे तक) जाकर देख लो कि यह सच्ची है या झूठी है? इसको ठीक तरह से देखना ही देखना है और कुछ नहीं देखना है

दूसरी बात यह है कि जो देखने वाला (आत्मा) है वही है। इसमें कुछ करना पड़ता है-ऐसी बुद्धि नहीं लगाना। करने से कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है। मतलब यह है कि यह (चैतन्य) तो सदैव प्राप्त ही है। इसको क्या प्राप्त करना? इसलिए कुछ करने की बात दिमाग से निकाल देनी चाहिए।

जैसे रामचन्द्रजी जनकपुरी में थे और जनकजी के दूत अयोध्या बारात लेकर आने का संदेश लेकर आये तथा दशरथजी ने दूतों से पूछा कि राम को जनकपुरी में कैसे पहचाना गया। तब दूतों ने उत्तर दिया कि उनको पहचानने की जरूरत ही नहीं थी। मतलब यह था कि सूर्य से सब वस्तुएँ दिखती हैं। सूर्य को दीपक लेकर देखने की जरूरत नहीं होती है।

(11)

अपने किये बिना ब्रह्माजी भी कुछ नहीं कर सकेंगे। वे कुछ नहीं दे सकेंगे। तात्पर्य यह है कि आलस्य छोड़कर भजन करना चाहिए।

उसका भजन स्वाभाविक होना चाहिए। प्राप्त तो वह सदैव ही है परन्तु उसकी प्रियता के बिना हम नहीं रह सकें, यही भजन है। यह भजन करना आपको ही पड़ेगा। जैसे कोई भैंस कमजोर होकर जमीन पर बैठ जाती है तभी उसे उठाकर खड़ी करने के लिए दस आदमी भी जोर लगावें परन्तु जब तक वह स्वयं जोर लगाकर खड़ी नहीं होगी तब तक दस आदमी जोर लगाकर क्या कर लेंगे। वह खुद ताकत लगाकर अपने पैरों पर खड़ी नहीं होगी तब तक उसे कोई उठाए रह नहीं सकेंगे।

(12)

अपन सुमिरण साधन करते हैं इस कारण से यह

मन में नहीं लाना चाहिए कि दूसरे क्यों नहीं करते हैं। अपने तो खूब स्मरण करते रहो। दूसरे की बात चित्त में लाना अंहकार है। यह हर जगह आ जाता है। सचेत रहना चाहिए। इसको माया कहते हैं। इसको देख लेना ही माया को पेंदे तक देखा लेना है। इसी तरह की दृष्टि हर जगह रखनी चाहिए। यह अंहकार का जिक्र तो एक नमूने के रूप में किया गया है।

(13)

वनवास के समय राम, लक्ष्मण और सीता को देखने के लिए गाँव की स्त्रियाँ इकट्ठी हुई। उन्होंने सीताजी से दोनों भाइयों का उनका क्या सम्बंध है, पूछा, सीताजी ने कहा कि ये गोरे हैं जो तो मेरे देवर है। परन्तु राम को अपना पति होना संकेत से बताया क्योंकि अपने को क्यों कर स्पष्ट बतायें। प्रकृति तो

संकेत से ही बता सकती है। इस तरह रामायण में कई जगह संकेत है जिनको समझना चाहिए। केवल बाँच नहीं लेना चाहिए।

(14)

केवल ईश्वर है। उनके सिवाय कुछ भी नहीं है। अपन जिसको माया कहते हैं। वह क्या हैं? इसे तो केवल देख लेना है कि वह कुछ नहीं है। 'कुछ नहीं' का क्या विचार करना । तुलसीदासजी महाराज ने स्पष्ट कहा कि 'जड़ चेतन की ग्रंथि परि गई । यद्यपि मृषा छूटत कठिनाई' । इसका भाव समझो। महाराज साफ कह रहे हैं कि यह झूठी है। गांठ तो एक डोरी की दूसरी डोरी के साथ लग सकती है। दूसरी डोरी ही नहीं है तो गांठ किसके साथ लगे और गांठ लगी हो तो खुले। झूठ से क्या लगे और क्या खुले। इसलिए इसको छोड़ने का प्रयत्न करना ही नहीं।

बंधी हो तो खुले। बंधना सत्य हो तो खुलने का बात आवें।

(15)

एक आदमी समझाने वाला बनता है और दूसरा अज्ञानी। इसका क्या अर्थ हैं? अज्ञानी क्या कहीं खो जायेगा या मिट जायेगा, ऐसा कुछ भी नहीं होगा। मतलब यह है कि कभी गले या जले नहीं उसमें घटना-बढ़ना क्या होगा। केवल अज्ञान का मिटना कहा जाता है। पर इसको तो कोई अज्ञान भी नहीं। यों ही अपना अहंभाव तो सदा है जैसा ही है। इसमें कुछ भी घटत- बढ़त नहीं है। इसलिए निज बोध की तरफ दृष्टि करो और इसको (माया को देख लो। यह है नहीं। इसको गहराई से (पेन्दे तक) देख लो उसके बाद क्या रहा? अविचल अवस्था अपनी समझो।

(16)

यह मेरा है ऐसी ममता मन में से समूल निकाल देनी चाहिये। अपनी वस्तु, बल्कि स्त्री भी और जगह चली जाय तो, अपने मन में यह नहीं आना चाहिए कि मेरी इज्जत बिगाड़ डाली, मेरा नाम डुबो दिया। बाहरी व्यवहार में तो जो जैसा कहा या किया जाता है, वैसे ही कर लेना चाहिए परन्तु अंदर से ममता को निर्मूल कर देनी हैं। इसी तरह घर की ममता रखकर दूसरों पर छोटी-छोटी बात पर चिढ़ना नहीं चाहिए। यह बात मन से निकाल देनी कि सब लोग मेरे अनुकूल ही बर्ताव करें। खूब भजन करना चाहिए।

(17)

ईश्वर ने अपने को मनुष्य शरीर भजन के लिए ही

दिया है। पशु-पक्षी अनगिनती के हैं, ये सब भोगयोनि के हैं। मनुष्य शरीर विषय भोग के लिए नहीं मिला है। परन्तु ईश्वर भजन भी उसकी कृपा के बिना कहाँ होता है। कई विघ्न आ खड़े होते हैं। बड़ी कठिनाई से भजन के लिए समय मिलता है। फिर कमजोरी में तो भजन होना ही मुश्किल है। रोग आदि तो शरीरों के साथ लगे ही हुए हैं और वृद्धावस्था भी साथ ही लगी है। तब क्या करे? भजन भी भगवान करावे तभी होता है। फिर कहा कि फिर भी विचार तो हर समय किया जा सकता हैं। इसमें तो कोई अड़चन नहीं है। विचार तो सभी स्थितियों में लेटे-लेटे भी किया जा सकता है चाहे मनुष्य स्वस्थ हो या अस्वस्थ । **सच्चा स्मरण तो विचार ही है। यदि विचार जागृत है तो उसके बाद सब ठीक हुआ ही समझो।**

(18)

नीमड़ी वाली बाई साहब का उदाहरण बाई ने कहा। वे एक हजार माला नित्य फेरती थीं। पहले वे कहती थीं कि उनके मन में संकल्प बहुत उठते हैं। जिससे वे चिन्तित रहती थीं कि इन संकल्पों के मारे क्या होगा। फिर धीरे-धीरे वे संकल्प मिट गए। बाई ने उनसे पूछा कि पहले वे संकल्प क्यों उठते थे और अब क्यों नहीं उठते हैं तो बाईजी ने कहा कि ये मेरी मूर्खता और भूल से ही उठते थे जिससे दुखी थी। ऐसा भी विचार आता था कि पानी में कूदकर डूब मरूँ। दुखी होने की कोई बात ही नहीं थी। अब वैसे विचार ही नहीं उठते हैं और कोई वैसे विचारों का ध्यान दिलाता है तो भी ऐसा लगता है कि यह मूर्खता थी।

अन्तःकरण की ऐसी शुद्धता स्मरण से ही हुई। बाईजी भजन में आलस्य नहीं करते थे। चटाई बिछाकर रात को भी भजन करने के लिए निद्रा को

त्याग कर बैठ जाते थे। अधिक नींद आती तो चटाई पर ही सो लेते थे। अपने तो खूब भजन करना। देखो! भजन किया नहीं जाता है, होता है। जिसमें प्रियता हो जाती है उसे याद रखना नहीं पड़ता, वह याद ही रहता है। वही सच्चा स्मरण है, परन्तु जो बिल्कुल स्मरण नहीं करते उनसे तो जैसे भी हो स्मरण करने वाला ही ठीक है।

(19)

एक बड़े घराने की करीब पैंतीस बरस की महिला बाई से मिलने आई। उसके पति का स्वर्गवास हो गया था। उसने अपने पति वियोग के दुःख की बात बाई के सामने रखी। बाई ने फर्माया कि मनुष्य तो अनेक मर रहे हैं परन्तु उनके मरने का आपको कोई दुःख नहीं हो रहा हैं। पति के मरने का तो दुःख इसलिए हो रहा है कि आपका ममतारूपी पति नहीं

मरा है। पति की याद उतना दुःख नहीं देती है जितना काम-वासना की याद दुःख देती है। इसकी पूर्ति तो दूसरा पति कर लेने से भी हो सकती है। वरना पति तो नकली मरा है। सच्चे पति की याद दिलाने के लिए भगवान ने उसे उठा लिया है। इस घटना से यह सोचो कि अब मेरा प्रेम सच्चे पति से अटूट हो जाना चाहिए। इस वियोग को प्रभु की अपार कृपा का दिग्दर्शन समझो। जन्म-जन्मान्तर में अनेक नकली पति कर करके थक गई हो। अब तो असली पति की तरफ मुँह कर लो। उसी समय एक दूसरी महिला भी कहीं दूर से आई हुई बैठी थी। उसकी तरफ दृष्टि करते हुए बाई ने कहा कि अधिक सन्तान होना अधिक पापों का फल है। अब इससे छुटकारा पाना हो तो बड़ी होशियारी के साथ मोहरूपी शत्रु को मारना होगा तभी बेड़ा पार लगेगा। वरना चार बेटे हैं। उनके चार बहुएं और इन सबका कितना विस्तार होगा जिसका कोई पार ही नहीं। कोई बेटे-बहू क्या

कहेंगे तो कोई क्या ताना मारेगा। तुम दुखी-सुखी होते रहोगे। इसलिए पहले ही मोहरूपी लगाव को निकाल बाहर करना और मन लगाकर भगवान का भजन करना।

घर में जैसे कुत्ता दिया हुआ रोटी का टुकड़ा खाता है उस तरह खाकर बहुएं जो काम बतावे वह कर देना। घर के काम की जिम्मेवारी अपने सिर पर नहीं लेनी । जिनका है वे करते रहेंगे। अपने तो दो रोटी खावें व उसके एवज में अपनी तरफ से जितनी मजदूरी हो सके उतनी कर देना और अपना पेट भरने का काम कर लेना । काम नहीं करोगे तो चारपाई पर पड़े-पड़े कराहने के अलावा क्या करोगे? पूरी तरह मन लगाकर भजन करोगे तो मन इन बातों से अलग हो जावेगा।

(20)

ईश्वर में से संसार निकलता है जैसे दीपक में से प्रकाश। मतलब यह है कि संसार अपन ही बनाते हैं। यह अपनी ही कल्पना है । इसी को संसार कहते हैं और कोई दूसरा संसार को नहीं बनाता है। यही कल्पना माया है। अहंकार कोई वस्तु नहीं है और है तो कहाँ है सो बताओ? मतलब यह है कि जो है सो तो ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है। मकान में बैठे हैं तो मकान की सब वस्तुएँ दिखती हैं। ऐसे ही मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ सब दिखती हैं। है तो जो एक वही है। जैसे एक घड़ी है। उसके सब पुर्जे अलग-अलग दिखते हैं। परन्तु सबों में एकमात्र लोहा है। ऐसे ही प्रकृति ही। योग, भक्ति, ज्ञान सब प्रकृति ही है। कुछ भी चाह होना ही बंधन है। इसकी जरूरत से मेरे कुछ (लाभ) होगा। कुछ करने का भाव ही बंधन है। इसकी जरूरत किसको हैं? जिसको जरूरत है। वह तो स्वयं ही है। बाकी सब बात अन्यथा है।

(21)

यह जानने वाला सर्वज्ञ है, इसको छोड़कर अन्य को ढूँढोगे तो भटकते ही रहोगे और कुछ मिलने वाला नहीं है। अपन कहीं भी जाते हैं तो अपने आप को छोड़कर नहीं जाते है। कहीं भी जावे, कुछ भी करें, वहाँ अपन (आत्मा) तो सदैव मौजूद ही रहते हैं। इसमें कुछ करना नहीं है। यह तो सदैव है ही। इसको पाना क्या? पाए हुए ही है। इस अंह को देखो कि 'मैंने किया, मैं करता हूँ मैंने जाना, मैंने जनाया' यह सब गलत है। जो अपन जानते हैं सब प्रकृति है, माया है तुमको यदि ऐसा लगे कि मैं अपने को जानता हूँ तो यह सब गलत है। जो अपन जानते है वह सब प्रकृति है, माया है। तुमको यदि ऐसा लगे कि मैं अपने को जानता हूँ तो यह भी प्रकृति है। वह तो केवल 'जाण' (ज्ञान) हैं। जिसमें कभी कुछ बना-बिगड़ा नहीं सब पोथी-पन्ने माथा फोड़ हैं। फिर बाई

ने एक छोटी सी पुस्तक बताई जिसमें कुछ बिल्कुल काले पन्ने थे और ऊपर एक सफेद पन्ना था जिस पर 'राम' लिखा हुआ था। अन्दर काले कागजों के सिवाय कुछ नहीं था। मुझे कहा कि इसे बांचो। यह पुस्तक तो मौन सिखाती है। एक भी अक्षर इसके अन्दर नहीं है। पोथियाँ बाँच-बाँच कर उसको खोओगे या पाओगे वह तो पाया हुआ ही है। फिर कहा कि अपन जितना जान रहे है वही बहुत है कुछ भी जानना शेष नहीं है।

बाई को पुस्तक लिखने का आग्रह करने पर बाई ने यह पुस्तक बनवा कर रख दी थी। पुस्तकों की बहुत बातें करने वालों को यह पुस्तक दिखा देते थे ।

(22)

अब फिर जानकर क्या करोगे? जो करोगे वह

सब माया ही होगी। क्योंकि जो 'जाण' है उसने तो अपने से भिन्न का ज्ञान करा दिया। अब क्या जानना है और किसी को कोई बात कहने की है तो यह विचार मन में से निकाल दो। **पुरुष को स्त्री का संग नहीं करना चाहिए और स्त्री को पुरुष का संग नहीं करना चाहिए।** पूर्ण वैराग्य के बिना इन्द्रियाँ नहीं जीती जा सकतीं। वैराग्य कहाँ है? वैराग्यवान कहाँ है? जहाँ देखो वहाँ धोखाधड़ी ही मिलती है। यदि यह चाहें कि सबको एक सरीखे कर दें ताकि ये भजन करने लग जावें पर ऐसे तो कोई-कोई ही कहीं मिलते हैं, इसलिए ऐसी इच्छा भी मन से निकाल देनी चाहिए।

(23)

करना क्या है? कुछ भी नहीं करना है। है जो सदैव है ही। पाना ही खोना है। जो सदैव प्राप्त है उसे क्या

पाओगे? यह औंधी (उल्टी) बात मन से ही निकाल दो।

सुधार किसका करोगे? जो नहीं है उसका क्या सुधार करोगे? एक सूरज और दूसरा प्रकाश, या दीपक है और उसका प्रकाश। क्या प्रकाश को मुट्ठी में भर कर रोक लोगे? या इसको पकड़ोगे तो यह हाथ आवेगा? इसी तरह यह प्रकृति है। सो है यह कुछ नहीं। आप बार-बार कहते हो कि यह दिखाई देता है यह क्या है। यह केवल कल्पना है। आकाश के बादल अनेक होते हैं। उनमें हाथी-घोड़े आदि हैं ऐसी कल्पना कर लो तो वे क्या हो जाते है? सो कुछ नहीं । इसी प्रकार यह प्रकाश इसके (सूर्य या दीपक के साथ है जो केवल कथन मात्र के लिए है। इसका अलग अस्तित्व नहीं फिर इसको बार-बार कहें कि यह प्रकृ ति है 'यह माया' है तो किस तरह से बन सकती है। समझने की बात है। अलग कुछ नहीं है। फिर भ्रांति क्यों होती हैं? यही गलती है। मतलब यह

है कि आप है जिससे यह (माया) भी है। आपका अर्थ चैतन्य है। आप देखते हो इसलिए यह दिखती है। वरना कुछ है नहीं।

(24)

मोक्ष किस तरह होगा। कुछ बना हो तो उससे छुटकारा (मोक्ष) कराओ। जब बना ही कुछ नहीं है तो बन्धन और मोक्ष के फन्दे को बोझ की तरह सिर में क्यों भर रखा हैं? संसार कुछ बना नहीं। न शरीर बना है। ये तो अनहोनी बातें अपने दिमाग में भर रखी हैं। अपन ने ही सबको मान-मान कर याद कर लिए है। मरने को और जन्म लेने को अपन ने देखा है क्या? यह भी मान-मान कर समझ भर लिए है। दृश्य पदार्थ मात्र ने कभी अपना नाम आपको नहीं दिया। नाम देने वाले भी केवल हम ही है अर्थात् चैतन्य देव (आत्मा) ही हैं। फिर इनकी स्वतंत्र सत्ता

मानकर इनसे भयभीत हो या प्रसन्न हो, यह कितनी भूल है? फिर अहंकारवश कहते हैं मुझे सुख हुआ, मुझे दुःख हुआ। देखो! अपना व्यवहार कितना भूल भरा है। जो वस्तुएँ अपना रत्तीभर भी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रख सकती वे सुख-दुःख कैसे दे सकती हैं। परन्तु भूल का यह तमाशा देखो। आपके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक प्रकृति मान ली है। उसको भी पकड़ने जाओ तो हाथ कुछ नहीं आवेगा। तो भी बहम को देखो और यह प्रकृति डराती है और डराती भी किसके आधार पर? अपने ही आधार पर। अपने ही तो आसरे पर यह प्रकृति है और अपने को डराती हैं। फिर उसका उपचार भी उसी (माया) से ही करना चाहते हैं? जो इस (आत्मा) की हिलाई हुई हिलती है, देखने से दिखती है. मानने से मानी जाती हैं। तो इस भूल का क्या अन्त हैं? फिर भी यह (आत्मा) कहीं खो नहीं जाता हैं। यह तो है जैसा ही रहता है।

(25)

सुधार करने वाले किसका सुधार करेंगे? क्या ये दृष्टा को बढ़ा देंगे या उसमें कोई कमी है उसे पूरी कर देंगे?

जो कुछ है सो अपन ही है। फिर इसमें 'मैं मैं' करते हैं सो गलत (अहं) हैं। 'मैं' की बात नहीं मानना चाहिए। क्योंकि यह जिस-जिस दृश्य से मिलता जाता है वैसे ही वैसे अहं का अभिमानी बनकर आपको छोटे-छोटे अहं भाव में बाँध देता है। इतना ही समझना है कि एक तो अपन है ही और कोई भी नहीं है यदि प्रकृति (माया) को मानों तो वह आपके साथ है, आपकी ही छाया है। यह आपको किस तरह बाँध सकती है? जरा विचार करो और यह भय मन से निकाल दो। न कोई जन्म-मरण है न मोक्ष है। सदैव आनन्दस्वरूप हो सो आप ही हो।

(26)

किसी ने बाई से पूछा कि आप सदा प्रसन्न रहते हो इसका क्या कारण है? बाई ने जवाब दिया कि आप ही बताओ कि अप्रसन्नता क्या है, कैसी है और कहाँ है? सो मैं भी देखूँ। कैसे सीधे आदमी हो? सुख-दुःख दूसरों से खरीदते रहते हो फिर कहते हो कि 'मैं प्रसन्न' या 'मैं अप्रसन्न'। तुमको कौन प्रसन्न या अप्रसन्न कर सकता है? दूसरा कौन है इस पर सही विचार करो। सब रोग-शोक निवारण हुए ही पड़े हैं।

(27)

शरीर संबंधी सब कार्य-कमाई करना, खाना-पीना आदि जो आवश्यक हो करते रहो। नया काम

उठाना या पहले को छोड़ देना इसमें बिल्कुल रुचि मत रखो। छोड़ने-ग्रहण करने के काम आकाशी खिलौनों के समान हैं। इनसे कुछ मिलना या छूटना नहीं है।

जैसा काम सामने आवे उसे मजदूरी समझ कर करो। न त्याग की भावना रखो और न ग्रहण की। न तो नई गृहस्थी जमाना और न गृहस्थी हो तो उसे त्यागना व साधु बन कर बैठना है। है जैसा चलने दो। इससे न तो बन्धन होता है और न छूटता है। इसमें बाँधने-छोड़ने की कोई शक्ति नहीं है। यह तो अपनी भूल है जिसे समझो भूल भी कभी हुई ही नहीं। है जैसा का जैसा है।

किसी को शिक्षा देने का प्रयत्न करने से पहले यह देखो कि बर्तन (घड़ा) पहले से सीधा रखा होगा तो उस पर दूसरा बर्तन भी सीधा रखा जा सकेगा। परन्तु यदि पहला घड़ा ही उल्टा रखा है तो उस पर सीधा घड़ा एक भी नहीं टिक सकेगा। उस पर तो

उल्टे घड़े ही टिकेंगे। मतलब यह है कि यदि मनुष्य एक बात सच्ची सीधी मान लेवे तो आगे भी सही और हित की बात मान लेगा। वरना उल्टी ही बात मानता रहेगा।

यह कुछ नहीं कहा जा सकता कि क्या हुआ, क्या हूँ या क्या होऊँगा। आप तो हो जैसे के तैसे हो। अपना नाम अपन किस तरह (अन्य को) देंगे? देंगे तो उसी समय वह नाम अपने से अलग हो जावेगा।

(28)

प्रश्न- विचारों का प्रवाह अपने आप चलता रहता है। बिना किसी विशेष प्रकार के चिन्तन किए भी प्रवाह चलता रहता है, सो ऐसा क्यों हैं?

उत्तर- चैतन्य के होने से ऐसा प्रवाह दिखता है। सूर्य और उसका प्रकाश, मनुष्य और उसकी छाया

। इसमें कुछ हुआ गया नहीं। स्वाभाविक रूप से दिखता है।

प्रश्न- प्रारब्ध कर्म के जब फल भुगतने पड़ते है तब सन्तुलन बिगड़ जाता है। इसका क्या करें?

उत्तर- प्रारब्ध कर्म या जो भी पूर्व कर्म आवे (फलोन्मुख हों) उनको स्वीकार करना तो आपके ही हाथ की बात है। जब शरीर का ही अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता तो प्रारब्ध कर्म का अस्तित्व कहाँ ठहराओगे अर्थात् शरीर को मानना ही अज्ञान हैं। त्रिकाल में भी शरीर का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता है। जब कर्म की मूल वस्तु शरीर ही सिद्ध नहीं हो तो फिर आगे की बात ही क्या?

एक चैतन्य ही अपने आपमें स्थित हैं। तो फिर यह शरीर से बना हुआ प्रारब्ध कहाँ से आया? बनने और बिगड़ने वाला (आने और जाने वाला) कभी सत्य नहीं हो सकता। अपने निज स्वरूप का ख्याल न रखने से यह मान लिया है। अपने निज स्वरूप के

विषय में भ्रांति उत्पन्न मत करो। सब कुछ एक आप ही है। अन्य कोई हुआ नहीं, होगा नही।

(29)

यह शरीर जब तक अपने से अलग प्रतीत न हो तब तक यदि यह मानते हो कि हम कुछ समझे हैं तो यह मान्यता कोरी कपोलकल्पना है। इसको अलग कर देख लो केवल कहने मात्र से नहीं, अनुभव करके देख लो। अपने को अपने सिवाय और कौन समझेगा। जगना अपने को ही पड़ेगा। दूसरे का अनुभव किया हुआ अपने कुछ काम नहीं आवेगा। परन्तु ठीक जग कर देखो। 'संसार' 'संसार' कह-कह कर कोरा हल्ला मचा रखा हैं, संसार कहाँ है? यह बात तो बेमतलब की हैं। एक बार एक मिनट के लिए भी अपने को अलग अनुभव कर लें तो काम बना बनाया ही हैं। करना

कुछ नहीं है। अपना अपने पास ही है। कुछ खोया नहीं हैं। फिर तलाश किसकी करें। है जैसा का तैसा स्थित है परन्तु बात इतनी ही है कि एक बार भी अपनी ‘जाण’ (ज्ञान) में इसका निश्चित अनुभव हो जावे तब है।

(30)

एक बार भींडर की तरफ रहने वाला एक क्षत्रिय अपने बेटे-बहू और बेटी को लेकर बाई के पास आया और बाई को निवेदन किया कि मेरी यह लड़की विवाह करने से इन्कार करती है इसलिए क्या करूँ, आप कुछ कहो। बाई ने कहा मैं क्या कहूँ मैं तो नहीं जानती। जानती होती तो कहती।

बाद में कहा कि यह तो प्रकृति है जो अपना खेल करती रहती है। एक मन तो है नहीं। अन्दर कई प्रकार के मन हैं। कई तरह की खलबली चलती

रहती है किस समय कैसा मन आपसे क्या करा देगा यह कैसे खबर पड़ सकती है। इस मस्तक में हलचल मची रहती है। यह तो प्रकृति का स्वभाव है। अपन किसी व्यक्ति को अच्छी तरह नहीं पहचानें तब तक किसी को कोई बात कैसे कहें, उससे कैसे सुनें? स्वयं जागृत हों तब कुछ खबर पड़े। यह काम और कोई कर देवे ऐसा नहीं है। खुद का काम करने की जिम्मेदारी खुद की ही है।

श्रीमती रतन कुंवरि (सर्वेश्वर की माता) का पूज्या भूरी बाई के साथ प्रश्नोत्तर

प्रश्न- बाई, यदि मैं माला बिना नियम से फेरूँ तो बैठी रह जाऊँ और मालूम भी नहीं पड़ता है।

उत्तर- नहीं, हर एक को तीन सौ माला तो नियम से जिस समय रात को कोई भी न उठे और बोले नहीं, उसके पहले फेर लेनी चाहिए। ज्यादा से ज्यादा घण्टे दो घण्टे में फिर जाती हैं और जल्दी-जल्दी नाम लेने से मन संकल्प-विकल्प नहीं करता।

महात्मा श्री भूरी बाई सहज रूप में ध्यानस्थ

साधु संतों को गृहस्थ के घर में जब तक पक्का न हो जावे, तब तक नहीं रहना चाहिए। इधर-उधर के विषयी लोगों के साथ रहने से अचार न भी खाय तब भी उसका स्वाद तो याद आता ही हैं। अब रही तेरे गृहस्थ की बात, सो रामजी की इच्छा।

अपने को इस शरीर पर ममता हो गयी है, जिससे ऐसा लगता है कि अपने इस शरीर के साथ-साथ फिर रहे हैं। इसका धर्म अपना हो वैसा लगता है।

भजन आदि जितने भी कर्म करने हों, सब करें, पर यह समझ कर करें कि इससे मेरा भला होगा तो वह गलत है। अपने क्या अच्छा होता है? जैसे चूल्हे पर रोटी-साग करके कहते हैं कि हे बापजी चूल्हा मुझे रोटी दे दो तो क्या वह अपने को रोटी दे देगा?

अपने ही द्वारा बनी हुई जब उसे उठा कर खायेंगे तो पेट भरेगा और भूख मिटेगी याने अपने से ही अपनी भूख मिटेगी।

महात्मा श्री भूरी बाई सहजावस्था में

और सुनो- हाथ में पंखी लेकर यह समझे कि यह पत्थर है। अब आप उससे पूछें कि अमुक जगह रखूँ। यह तेरे लिए ठीक रहेगा क्या? अब वह तो बोलती नहीं है। अब आप अपने आप ही देख कर कहते हैं-यह जगह तेरे लिए ठीक है- यह जगह तेरे लिए ठीक नहीं हैं। इस बात को वह तो समझती नहीं है। पंखी या पत्थर तो समझता नहीं है। अब आप ही जो स्थान बुरा या अच्छा लगता है, कहते हो। ऐसे ही **परमात्मा एक है। दूसरा है ही नहीं। तो उसको कौन जानता है? यह जो कलकलाहट है, यह उसका स्वभाव है। बिना इसके उसका पता नहीं लगता।**

जैसे काँच के मकान में खड़े रहें और अपने शरीर को देखें तो अपने कितने ही शरीर दिखते हैं। लेकिन कई दिखते हैं, यह अपन जानते हैं कि ये इतने नहीं हैं। अपन यह भी जानते हैं कि यह मैं हूँ। यह कांच का मकान है, यह भी अपन जानते हैं। जब यह बात समझ में आ गयी, तो स्पष्ट हो गया। यह कलकलाहट तो तब मिटेगी कि जब यह शरीर गिर ही जायेगा। कलकलाहट ही शरीर है। यही संसार है और असल में कुछ नहीं हैं। केवल परमात्मा है।

भगवान बहुत दयालु है। उन्होंने पैदा किया है तो तो रोटी-कपड़ा तो देगा ही। उसने किसी के मत्थे पैदा नहीं किया है कि इसका पालन वह करें। अन्न तो गायों को काटने वाले जो कसाई हैं, उनको भी देता है वह ।

तेरे शरीर का खून सूख गया, ऐसे ही संसार का सार सूख जाय तो बस । शरीर तो एक दिन मिटेगा

ही।

जब रामचन्द्रजी को घोर वैराग्य हुआ, तब वशिष्टजी महाराज ने योग वाशिष्ट कहा। कितने भी सावधान रहो, यह माया तो किधर से आ ही जाती है। मालूम नहीं पड़ता। कितनी ही माला फेरो, कितना ही ध्यान धरो, कितना ही माथा फोड़ो, बालकों वाला खेल कहाँ तक खेलें?

जन्म और मरण की ये लोग बात करें-यह ठीक नहीं है। पैदा ही नहीं हुआ तो मरेगा ही कैसे?

'तत्व विचार' में आया कि शेर को देखकर हाथी चमकता है। इस पर बाई ने कहा कि अपने तो कुत्ते को देखकर भी भयभीत हो जाते हैं। प्रारब्ध पंखी की तरह से है। जैसे पंखी को हाथ में ले तो हवा करें तब तक हवा लगेगी और फिर नीचे रख दें तो आपो-आप बन्द हो जाती है। ऐसे ही फिर फिर प्रारब्ध के भोग करें, इस तरह से प्रारब्ध चलता

रहता हैं।

कृपा किस पर करें? जैसे इस घर के कपड़ा, पंखी और कई चीजें पड़ी हैं और मैं अकेली बैठी हुई हूँ। अब कृपा किस पर करूँ और कौन जाने। तो प्रश्न उठता है कि आप किसी को तो सामने देखते हों और उसको ठीक ढंग से रख देते हो, साफ कर देते हो और किसी को देखते ही नहीं हो। ऐसा प्रश्न कालीदासजी ने किया । तो उत्तर दिया कि यह भी मैं ही जानती हूँ। जैसे चूल्हे के पास बैठती हूँ और मैं कहती हूँ कि रोटी जल गयी या अच्छी हुई और चूल्हा जल गया या खराब हो गया। चूल्हा तो बोलता नहीं है। राख बन गयी, यह बस मैं जानती हूँ। यह तो कोई समझता नहीं। ऐसे ईश्वर एक है। पदार्थ ज्ञाता नहीं। है, आत्मा ज्ञाता है दूसरा कोई भी नहीं।

अब कोई कहे कि हमको आत्मसाक्षात्कार करना है, तो बोलो किस तरह करे। एक परमात्मा

है, दूसरा कोई नहीं। अब अपने को अपने आप किस तरह देखें ऐसा कोई कहे तो वह बात ठीक नहीं अपने को अपने आप देख नहीं सकता।

प्रश्न- बाई, तपस्या किसको कहते हैं?

उत्तर- सहन करना। जैसे कोई क्या अनुचित या अप्रिय बात कह रहा है तो यह मन में न आवे कि यह समझता ही नहीं, यह मूर्ख हैं, यह ऐसा क्यों करता हैं, यह तपस्या हैं। भूखो मरना ही तपस्या नहीं हैं।

राम नीति वाले हैं। वे अपने भक्तों को खूब तपाते हैं। मर्यादा फैलाते है। भरतजी को कितना तपाया? कितना-कितना कहा। कोई राज्य देने लगा, कोई (चित्रकूट में लक्ष्मणजी) मारने लगा। गुरुजी के तो राज और वन सब एक समान है, पर उस वक्त गुरुजी की भी बात नहीं मानी। माँ की भी बात नहीं मानी अर्थात् भक्ति में बाधक हो, वह बात नहीं माननी चाहिए। हनुमानजी के (भरतजी का) बाण लग गया

अब अपने सरीखा कोई हो तो जहर खाले या मर जाय, पर उन्होंने सब सहन कर लिया।

भगवान राम तो सब जानते थे कि यह माया का हिरण है। तो भी वे माया-मृग के साथ दौड़े और उसको मारा। कल्पना नहीं होती तो अपने को अपने आपका पता नहीं लगता। थोड़े से थोड़े में समझने की बात यह है कि भगवान के सिवाय दूसरा कोई नहीं है। अपने को कल्पना विचार कुछ नहीं करना है। बस यही करना कि अपन भगवान के और भगवान अपना । आप उसके बच्चे हैं और कुछ नहीं। **एक परमात्मा ही है। मनुष्य को मनुष्य का संग करना ही नहीं चाहिये। संग से उसके दोष देखने में आ जाते हैं। कम से कम बारह वर्ष तक एकान्त सेवन करें। पीछे भले ही मनुष्यों में आ जावें ।**

भजन के बिना चित्त शुद्ध नहीं होता है। एक की कमाई दूसरे के हाथ नहीं आती। भले ही भागकर

कहीं चले जाओ भजन करो। दूसरी माथा फोड़ बेकार है। चक्की आटा पीसने के लिए हैं, न कि कंकड़ पीसने के लिये। मनुजी आदि ने कहा कि संगति अच्छे आदमियों की करनी चाहिये, नीचों की संगति नहीं करनी हैं।

प्रश्न- वृत्तियां उठती हैं, वे अच्छी नहीं लगती हैं?

उत्तर- यदि वृत्ति न उठे तो शरीर ही नहीं रह सकेगा। श्रीसीता माता ने कहा कि जैसे चन्द्रमा से चांदनी दूर नहीं रह सकती है। यही माया है। यहीं संसार और शरीर है और यह माया का दीखना ही अज्ञान है। अपने को इससे कुछ भी लेना-देना नहीं है। अपने को इससे अलग रहना चाहिए। देखो, यह प्रतीति सबको नहीं है। अगर यह बात समझ में नहीं आती है तो खूब भजन करना चाहिए। वैसे भगवान भला करेंगे ही। भला क्या होता है। जो बुरा हुआ हो तो भला हो। यह कल्पना मात्र है।

रामकृष्ण कहते है, जब तक शरीर हैं, तब तक

अहं भाव का समूल नाश नहीं होता। उसी पर कहते है। कालीदासजी ने कहा- आप भी खूब भजन करो "क्योंकि पायेहू ज्ञान भक्ति नहीं तजहीं।"

उत्तर- भगवानमय जीवन कर देना है। फिर चाहे कुछ भी हो।

प्रश्न- भगवानमय जीवन किस तरह?

उत्तर- अपने यह मुहावरा बहुत अच्छा हैं। कहते हैं कि जीव भूल गया है, दृश्य की प्रतीति न होना ही जीव भूलना है। जीव पलट करके ईश्वरमय हो जाए।

प्रश्न- बाई, मन किस तरह ठहरे?

उत्तर- मन-वन कुछ नहीं। जैसे कमरे के किवाड़ बन्द कर दो और बाहर की तरफ से देखो तो ऐसा लगता है कि इसमें न मालूम क्या है? खोल कर देखने को मन करेगा और जब उस किवाड़ को खोल कर देखते है तो उसमें छींका, डलिया, चटाई वगैरह हैं। जब खोल लें तो फिर विचार नहीं होगा

कि इसमें क्या है। ऐसे ही संसार को जान लेने के बाद कोई कल्पना नहीं बनेगी। देखो भगवान को मानना नहीं, जानना है। देखो, सात-आठ बरस की छोकरी गुड़िया खेलती है। गुड़िया से कहती है, तू यों कर, यों कर, ऐसा न कर, वह मत कर। वह गुड़िया थोड़े ही कुछ बोलती है। स्वयं ही प्रश्न करती है। और स्वयं ही उत्तर देती है। ऐसे परमात्मा एक है और यह जो बाहर दीखता है, यह सब कपड़े की गुड़िया है। परमात्मा ही है। एक अकेला वही प्रश्न करता, वही उत्तर देता है, यह माया की कलकलाहट है और इसी से यह शरीर है। यह न हो तो उसी वक्त शरीर पड़ जायेगा। जैसे मिट्टी का घड़ा होता हैं? वह घड़ा कहे कि मैं मिट्टी बन जाऊँ तो किस तरह बनेगा। ऐसा करने से बनता है क्या? वह तो मिट्टी का ही है। इसी तरह करके अपने को भगवान किस तरह प्राप्त हो। क्या अपन भगवान नहीं है।

देखो एक परमात्मा और उसकी आदत प्रकृति

है। जैसे सूर्य है और उसकी धूप तो हैं, दीखती है और इसमें चीज डाल दो तो सूख जाती है। अब इसको पकड़ो तो मुट्ठी आती नहीं? गांठ में बाँधों तो बँधती नहीं। कहीं ले जाओ तो जाती नहीं परन्तु दीखती है। ऐसे ही धूप की तरह संसार है और सूर्य की तरह परमात्मा ।

यह शरीर कुछ करता ही नहीं है। मुर्दा ही है। इसको क्यों दुःख दिया जाये। इसके भीतर मायारूपी साँप बैठा हुआ है। शरीर तो बेचारा कुछ नहीं जानता। यह मायारूपी साँप अन्दर बैठा हुआ मैं, मैं करता है।

एक बार हम चारों बहिनें और बाई घूमने गये। एक बबूल की छाया थी, वहीं बैठ गए। बाई ने कहा- यह बाहर जो इतना बड़ा दिखता हैं, यह सच्चा है तो छोटी सी आँख में इतना बड़ा-सा (चित्र) कैसे समा जाता है। मुझे पूछा, यह सच्ची है क्या? मैं हँस पड़ी। बाई भी हँस पड़ी। घर में जाकर कहा- देखो,

अपने पीछे भंगी भैंसे पर हड्डियाँ भर रहा था। ऐसे ही अपनी भी हड्डियाँ हैं। यों ही ममता कर रखी है। संसार कभी नहीं कहता कि मैं संसार हूँ। बहुत सारी किताबें नहीं खरीदनी। बहुत कपड़ा भी नहीं रखना। इसी तरह संचय से ममता बढ़ती हैं।

परमात्मा सबमें है। इसका यह अर्थ नहीं कि टुकड़े-टुकड़े होकर सबमें हैं। 'पारसमणि' नामक पुस्तक पढ़ी जा रही थी, बाई ने फर्माया कि इसमें अपने सब अवगुण सामने आ जाते है, नहीं तो आप मेरे अवगुण नहीं जानते हो, मैं आपके नहीं जानती हूँ। बाहर से (दूसरे के सामने) कितना ही अच्छा हो, लेकिन भीतर से कैसे हैं, इस अपनी बात को आप ही जानते हैं। पर यह (सृष्टि) प्रपंच) सब झूठ है। एक परमात्मा है। केवल घर में रहकर कोई अपना भला करना चाहे तो वह नहीं कर सकता हैं। पूछने से फिर कहा-घर में से अपनी आसक्ति निकाल दो।

जब भरतजी महाराज ने खूब कल्पना की कि मैं

तो ऐसा हूँ और मेरी माँ ऐसी है। ऐसा जब कह रहे थे तब भगवान कुछ देर चुप रहे और फिर कहा। भाई अपने को तो अपना जो कर्तव्य सामने है, वह निभाना है। तुमको राज्य दिया और मुझको वनवास दिया। तो दोनों भाई अपने-अपने काम को कर लें। तब भरतजी इस बात को जल्दी समझ गए।

भगवान ने शबरी को अनेक कहानियाँ सुनाई और फिर कहा कि मेरे दर्शन का फल यही है कि जीव अपने सहज स्वरूप को पा लेता है। यह कल्पना भगवान के अन्दर से निकलती है। जैसे आग के अन्दर गर्मी होती है। इस गर्मी के बिना आग का पता नहीं लगता। अपन माला फेरने बैठते है, तब बहुत से विचार मन में आते है। यो करें, यों न करें, यह काम किया, यह नहीं किया, यह सब विचार प्रकृति में से निकलने हैं इस प्रकृति के पीछे अर्थात् उसे बल या अस्तित्व देने वाले अपन हैं।

मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि बाहर की

दुनिया के कामकाज करते रहो और हृदय में भगवान को मत भूलो। मेरे अनुभव की बात कहती हूँ। एक आह ही भगवान के लिए पूरी जिन्दगी में निकल जावे तो बस काफी है ।

मुझको भगवान वह भुलावा देते हैं और कभी-कभी कहते हैं कि मैं तेरी सब विपत्ति मिटा दूँ। पर मैं कहती हूँ कि महाराज, मैं ऐसी भोली नहीं हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मेरे प्रारब्ध में यही है, जो है। जो आपको भूला हो, उसको आप दीजिए। इस तरह से तो मैं बहुत पक्की हूँ।

माँ जैसे बालक के मुँह में चूसनी देती है और बच्चे उसे चूसा करते हैं। रोते नहीं, पर उसमें दूध तो आता नहीं और उसमें कुछ होता नहीं। पर यह तो बालक पर एक तरह से अन्याय है। ऐसे ही भगवान अपने को भुलाते हैं। इन दृश्य पदार्थों में क्या है। जो भगवान को जान लेता है, उससे भी अधिक हैं जो उसमें विश्वास रखकर भजन करता है।

अभी एक सिनेमा घर हो और उसमें तो सिनेमा की तस्वीर दिखाते हैं उसमें घास तो भरा नहीं जाता है। ऐसे ही जब तक यह शरीर है तब तक कल्पना आवेगी। और कोई बन्धन का कारण नहीं है, यह मैं हूँ और यह मेरा है, यही बन्धन है। योग वाशिष्ठ का सार यही है किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं होना चाहिए।

देखो दिमाग को ठण्डा रखो। जो होगा वह तो होगा ही। यह करें या यह न करें, किसी समय क्या कल्पना आवे और किसी समय कुछ और कल्पना आवे यही चौरासी योनि का मूल है। मैं भी अपने आदमी के (अपने पति की बीमारी में) पलंग के पास बैठी रहती, न खाती न पीती, आदमी को कुछ हो जाये तो मैं क्या करूँ। जमीन पर माथा रखकर कभी नहीं सोती और हजारों रुपयों का धुंआ उड़ा दिया, आदमी अच्छा हो जाए, इसके वास्ते, लेकिन वह अच्छा हुआ नहीं। पहाड़ खोदा कि उसमें से सिंह

निकलेगा, पर चूहा भी नहीं निकला। कोई कहता कि ऐसा करने से ऐसा हो जाएगा। ऐसा कर ले तो ऐसा हो जाएगा तब हाँ-हाँ कर लेती। भीतर से मर जाना चाहिए। भजन भले मत हो, पर मन का गला दबा कर उसको नीचे करके उसके ऊपर बैठ जाओ।

मन-वन कुछ भी नहीं होता, सब गप्प हैं। मैं तुमको सीधी सी बात बताऊँ और समझाऊँ। जैसे अग्नि होती है और उसकी गरमी के कारण भगोना व पानी गर्म हो जाता है। ऐसे ही परमात्मा तो एक ही है, लेकिन यह सब किसको मालूम होता है कि वे क्या-क्या है। लेकिन उसके प्रकाश से मालूम होता है? वह तो एक ही है। उसको तो अज्ञान होता नहीं और दूसरा कोई है ही नहीं। वहाँ तो श्वास लेने को भी जगह नहीं है। ऐसा कह करके वे कुछ देर चुप बैठ गयीं और फिर कहा कि अपने दिमाग में यही विचार लाया करो कि यही प्रकृति है। पर यह है नहीं,

ऐसे ही लगती है। मैंने सोचा कि 'यह' है। यह सोचना ही अज्ञान है। मैंने कहा कि व्यवहार में ऐसा क्यों लगता है? तो बाई ने कहा कि अपने को (आत्मा को) नहीं लगता है। जो दूसरा (अहंभाव) है उसको लगता है। यह तो भ्रम है। कुछ है नहीं लेकिन लगता है कि कुछ है, यही भ्रम है।

भूरामलजी (बाई के कृपापात्र) के यहाँ से एक लड़का आया। उसने कहा कि मुझको योग सिखाओ। मैंने पूछा- योग सीखकर क्या करोगे? उसने कहा- मैं साधु बनूँगा। तो साधु होकर क्या करेगा? क्योंकि सांडेश्वर महादेवजी के स्थान पर मुझे एक साधु ने कहा है कि भगवान मिलेगा, तब शांति मिलेगी। तो मैंने उससे कहा कि तू जवान है, कमाई कर। तुम्हें जब भगवान का दर्शन करना हो तो मेरे पास आना, मैं करा दूंगी। अब बताओ जब वह आयेगा तो मैं दर्शन कहाँ से कराऊँगी। जोशीजी (लक्ष्मीलाल) ने कहा कि ऐसा तो नहीं है कि आप

करा नहीं सकते हो। आप समर्थ हो। स्वामी रामकृष्ण ने विवेकानन्द के सिर पर हाथ रखा, उनकी समाधि लग गयी। किन्तु आप किसी को भटकाना नहीं चाहते हो । बाई 'समाधि' यह कह कर खूब हँसने लगीं और कहा कि सब पत्थर का खिलौना है, पत्थर का खिलौना ।

सिनेमा में फिल्म बताते हैं, उसमें तस्वीरें आती हैं, वे सब अलग-अलग दिखती हैं। उन सबको बिगाड़ करके एक ही तस्वीर रख दी जाये और वही दीखे तो फिर उसी एक को ही देखने कौन जावेगा? वह तो फिर नयी-नयी दीखती हैं, इसलिये देखने का मन करता हैं कालीदासजी ने कहा कि एक ही वृत्ति सामने रखे तो वह भी मिट जाती है।

काँच के घर में जैसे कुत्ता घुस गया हो और वह अपनी परछाई के बहुत कुत्ते देख-देखकर भौंकता ही रहे तो कालीदासजी ने कहा- हाँ, मैं एक बना हूँ। जिससे बहुत से बने है।

बाई बोली, कालीदासजी बहुत से लोग तो ऐसा करते है कि मन तो ठहरता नहीं है। माला को रख देते हैं- मन कहता है कि जरा ठहरो तो सही।

बाई बोली- ब्रह्मज्ञान करने से नहीं होगा। यह सब मिट जाय तो क्षण में ही सब मिट जाय। भजन करना, इस तरह करना, यों करना, यह कूड़ा-करकट क्यों इकट्ठा करते हो? यह सब बेकार हैं। क्यों न भगवान से यह प्रार्थना की जाये कि हे भगवान! अज्ञान किसी को मत दिखाना। **दूसरों में जितना अज्ञान दिखता हैं, उतना ही अपने में अज्ञान है। दूसरों में अच्छापन दिखाई दे, उतना ही अपने में उल्लास बढ़े। और दूसरे में दोष दीखे तो उतना ही अपना हृदय जले।**

जब पार्वतीजी ने कहा कि राम वही हैं कि दूसरे तब महादेवजी नाराज हुए कि दूसरे राम को क्यों पूछा। अपन रात-दिन छाती कूटा करते हैं कि भगवान अलग-अलग है।

बाई गीताजी का ग्यारहवाँ अध्याय पढ़ रही थीं। उसी में भगवान के विराट रूप का वर्णन आया, तब बाई की बहन तुलसी ने पूछा- उस समय अर्जुन कहाँ पर खड़ा था। वह बात मुझे अभी तक याद है।

प्रश्न- सोचो, मैं को रहने की गुंजाइश कहाँ है, सब जगह पर ही भगवान है।

उत्तर- समुद्र का पानी ऊपर से तो हिलता है, लेकिन नीचे तो वैसा ही रहता है।

प्रश्न- बाई, बारह महीना मैं आपके पास रहना चाहती हूँ?

उत्तर- मैं तेरे पास ही हूँ, मैं तुझे भूली नहीं हूँ। यह अहेतुकी कृपा है। हाय! आज वह बात कहाँ चली गयी?

बाई - महापुरुष तो जानते हैं कि यह सब गप्प है। यह तो दूसरों के प्रश्न का उत्तर है। ज्ञानी-अज्ञानी की समझ अलग-अलग होती हैं। छोटा बच्चा शीशे में मुँह देखता, तो वह उसको फोड़ने को तैयार हो जाता

है कि मेरी नकल क्यों बता रहा है। उसमें से निकले दूसरा कोई हो तो, उसी काँच में जब बड़ा आदमी मुँह देखता है तो वह जानता है कि यह तो उसका ही मुँह है।

कालीदासजी ने कहा कि अहा! कितना सुन्दर उदाहरण है। ज्ञान तो कुछ है, सब जानता है और जो अज्ञान है, वह जानता नहीं।

पंखी मांगी तो मैंने नहीं दी। बाई ने कहा- ऐसा क्यों करती हो? मैंने कहा उसने भी नहीं दी सो मैं भी नहीं देती। बाई ने कहा कि उनके जैसा ही होने में अपने को क्या फायदा? समझे और बिना समझे में क्या फर्क है। ऐसा नहीं करना, सबकी सुन लेना।

प्रश्न- यह हमको अनुभव नहीं होता कि जो आकार दिखता है, वह सब ईश्वर है।

उत्तर- ये जो आकार दिखते हैं सब भगवान नहीं है। जैसे बेल का हरा पत्ता, डाल, जड़-ये भगवान नहीं है। इनको हिलाने की जो शक्ति हैं, चालन की

शक्ति है, उसमें और अपने वह एक ही है।

प्रश्न- बाई, अपने अवगुण अपने को दिखते हैं पर वे मिटते क्यों नहीं? आपके पास जब तक रहे तब तक तो ठीक रहता है।

उत्तर- ये चार योनियाँ होती है- पत्थर, वृक्ष, जानवर और मनुष्य । इसमें मनुष्य ही अपना अवगुण निकाल सकता है। इसमें पुरुष तो फिर भी ठीक है, पर औरतें ऐसी होती हैं कि चाहे आप उनको मार डालों, पर अपने अवगुण नहीं बतायेंगी और दूसरों में अवगुण निकालती रहेंगी। मैं तेरे ही पास हूँ। तुमसे अलग या दूर नहीं हूँ।

हाय! इतना आश्वासन मिलने पर भी क्या हुआ?

तीर्थ, जप, तप, ज्ञान, ध्यान, पूजा, वेद, पुराण ये सब यूँ ही हैं, जैसे अपन छोटे थे तब गुड़िया खेलते थे। गुड़िया से बात करते। वह कुछ बोलती थोड़े ही थीं। सारे दिन बैठे माला फेरते रहने से भजन थोड़े ही होता है। मैं एक अच्छी बात बताऊँ, स्मरण इस

प्रकार करे कि पोथी बाँच रही हूँ, पंखी हिला रही हूँ, मुँह से बोल रही हूँ और मैं कल्पना भी कर रही हूँ स्मरण अपना और अपने में है। यही अच्छी बात हैं।

प्रश्न- मैं माला फेरती हूँ राम-राम करती हूँ, लेकिन राम याद नहीं रहते। उत्तर- चाहे जो हो, माला फेरना। अगर मैं माला फेरना छोड़ दूँ तो सबको यह हो जायेगा कि माला फेरने में क्या रखा हैं? ये भी नहीं फेरती हैं। इसका फेरना है और कुछ नहीं । माला फेरना रामजी को याद करना कि रामजी ऐसे हैं हाथ में धनुष-बाण! राक्षसों को मार रहे हैं आदि-आदि कथाएँ याद करता जाय ।

प्रश्न- आपका दर्शन नहीं होता तो क्या होता?

उत्तर- आप और हम अलग थोड़े है।

प्रश्न- किसी को ऐसा ख्याल होता है कि आप जूठा खाते हो तो हम भी ऐसा ही करें।

उत्तर- जब तक मन में घृणा रहे और उसको रूप

अलग मनुष्य रूप समझे तब तक नहीं खाना। जब ग्लानि हो और ऐसा प्रतीत हो कि जूठा कोई देखेगा तो क्या कहेगा तो नहीं खाना। मुझको चौराहे के बीच में बिठाकर गाय, कुत्ता, भंगी, कौआ, वैश्य, ब्राह्मण किसी का भी जूठा खिला दो, खा लूँगी। जब सबको कृष्ण रूप समझों तो प्रसाद रूप खाओ। ऐसा करो कि दो आदमी रख लो। औरत के हाथ का नहीं खाना दाल, रोटी, दूध ऐसा खाना। ज्यादा खटपट नहीं करना । एकान्त में खूब भजन करो।

प्रश्न- इनको माला फेरना ही अच्छा लगता है।

उत्तर- सारा दिन माला फेरने से माला फेरने में दिल नहीं लगता। **यह मन कहे वैसा मत करो। उस वक्त तो करना ही नहीं। इसके अनुसार करने से यह भटका देगा।**

भगवान् को कोई भी समझ सकता है यह समझ जायें तो संसार ही नहीं रह सकता। उसकी ऐसी ही

नीति है। जीव में कुछ है नहीं। यह तो कुछ करता नहीं, जैसा सामने वाले में, खुद में है, दीखता है। देखो, इसकी आँखें कितनी सुन्दर हैं, इधर आकर देखो। उधर जाकर देखने पर अखिल कोटि का नाथ अनेक रूपों में फैल रहा है।

एक चिड़िया पानी पी रही है। देखो, यह समझाती है कि यहाँ पानी है। यह देखो, परमात्मा सामने है। फिर भी मनुष्य परमेश्वर को ढूँढ रहा है। भगवान का शरीरों पर कितना मोह हुआ देखा, अपने को कुछ ऐसा विचार नहीं करना है। अपना मन-प्राण एक ही है।

प्रश्न- सिनेमा के प्रसंग में आपने बतलाया था कि एक ही प्रकार की तस्वीर हो जाये तो देखने में अच्छा नहीं लगता।

उत्तर- हाँ, सच है। ऐसा ही होता है। यह सब एक इसी प्रकृति के खिलौने हैं। बस, यह प्रकृति ही है। इसमे आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है। इसी एक के

अनेक रूप हैं।

प्रश्न- यह कल्पना माला फेरते वक्त ही ज्यादा क्यों दिखती है?

उत्तर- कल्पना ही शरीर है।

प्रश्न- जब जान गये कि संसार नहीं है, फिर क्यों देखते हैं, इसको ?

बाई - नहीं दीखता है, क्या दीखता है?

कालीदासजी- यह भी स्वभाव है।

बाई - नींद आ जाये जो अच्छा रहे। संसार न दीखे। तुमको नींद आवे तो अच्छा रहता है क्या?

उत्तर- सारी रात नींद में ही तो बीतती है।

बाई- अभी सोवे तो पंखी कौन करे?

कालीदासजी- बालक जैसा स्वभाव है। बाई के दर्शन करो और पास रहो।

बाई- बाई-बाई कौन कहता है और क्यों कहता है, इस पर विचार करो।

कालीदासजी कविता सुना रहे थे। जिस पर बाई

ने कहा- अपने को तो इधर, उधर कहीं भी नहीं देखना। चुप रहना हैं। स्त्री वाले, धन वाले, बाल-बच्चे वाले, इनकी संगत नहीं करनी है, जिनके विचारों से अपने में खराबी आती है। उदाहरण हेतु यह कथा कही-

शुक्राचार्य ने प्रह्लादजी से कहा कि- "तू भगवान-भगवान करता है। भगवान ने तेरे बाप को मार दिया तो उसका बदला लेना चाहिए।"

प्रहलादजी फौज सजा कर लड़ने चल पड़े। भगवान को सब जगह ढूँढने लगे। पर भगवान कहीं पर भी नहीं मिले। जब वे बहुत थक गये तो भगवान को दया आ गयी। बूढ़े ब्राह्मण का रूप धारण करके फौज के बीच में होकर निकले। तब प्रहलादजी ने कहा कि महाराजजी, किधर जा रहे हो? तब उस ब्राह्मण ने उल्टे पूछा कि आप किधर जा रहे हो? तब प्रह्लादजी ने कहा कि मेरे बाप को विष्णु भगवान ने मार दिया, अतः उसका बदला लेने जा रहा हूँ।

तब भगवान ने कहा कि मेरे तो सबको उसने मार दिया, किसी को भी नहीं रखा। इसलिए मैं भी उनसे बदला लेने जा रहा हूँ; तो प्रह्लादजी ने कहा कि अच्छा चलो, मेरे साथ हो जाओ। भगवान चलते-चलते गिर पड़े और उनकी लाठी भी गिर पड़ी। तब भगवान ने प्रह्लादजी को कहा कि यह लकड़ी उठाकर मुझे दे दो। लकड़ी उनसे उठी नहीं। तब उनकी समझ में आया कि अपने गुरु का वचन मान करके उनसे लड़ने चले हैं। अतः दुष्टों का वचन नहीं मानना, केवल सुन लेना।

बाई- मैं किसकी किताब पढ़ रही हूँ। ऐसे ही मिट्टी का मिट्टी ही रहेगा। मिट्टी की लकड़ी, मिट्टी का घी, बर्तन वगैरा बनाने के बाद खाने बैठें तो क्या भूख मिटेगी और उससे क्या पेट भर जायेगा। ऐसा ही यह धंधा है। ऐसा करने से करना मुझे प्राप्त होगा, पीछे मैं यह करूँ, इसको जान लेना चाहिये। जानना क्या कि 'यह' इस तरह से है। प्रश्न- आप ही बनाओ और

आप ही नहीं समझो, क्या?

उत्तर- अपनी कल्पना के साथ लग गये जैसे भगवान सीताजी के साथ लगकर मायामृग के साथ दौड़े। गरुड़जी भी क्या कम महापुरुष थे। वे भी कभी-कभी धोखा खा जाते । अपन तो कितनी बार धोखा खाते हैं। तीर्थ जाना, व्रत करना, धन इकट्ठा करना, लड़ाइयाँ करना, तेरा-मेरा करना, ऐसा है, जैसे-मक्खी मिठाई पर बैठकर फिर खराब पर बैठे। अगर उसको मीठे का ज्ञान है तो मीठे पर बैठना छोड़कर खराब चीज़ पर नहीं बैठे। जैसे शहद की मक्खी को शहद का ज्ञान होता है तो वह खराब चीज पर नहीं बैठती है। कोई मनुष्य उस मक्खी की तरह से होता है और कोई इस मक्खी की तरह से। पर अपने को किसी की बात नहीं करनी है। अपने को जो करना है वही करें।

कुटुम्ब वाले बोलते तो बहुत अच्छा मीठा-मीठा है। अपने कुँआ और बावड़ी बनाना, इससे धर्म

होता है। घर में आँख मींचकर बैठ जाना और किवाड बन्द कर लेना और जब किवाड़ खोला तो फिर वहीं संसार अपने को ऐसा नहीं करना है। यह मानी हुई कल्पना है।

प्रश्न- इस दफा तो मैंने पैसा इकट्ठा किया है।

उत्तर- किसी गरीब को खिलाओ। उसकी आत्मा तृप्त होगी। इकट्ठा करने से कुछ नहीं होगा। अपने को भगवान पर भरोसा नहीं हो तो फिर चाहे जितना भी इकट्ठा करके छोड़ जाओ कोई यह नहीं कहेगा कि छोड़ गये, बल्कि अपने हाथ से बनाया हुआ कहेंगे। अपने हाथ से न करें तो पीछे कौन करेगा? श्राद्ध, पिण्डदान ये अपने महर्षियों को मान्य हैं जिसके लिए संसार हैं, उसके लिए तो यह करना ही है।

प्रश्न- इससे क्या होता है?

उत्तर- होता तो कुछ नहीं है पर जैसे इतने कर्म हैं, वैसे यह भी एक कर्म है। मैंने तो अपने घर को ऐसा साफ कर दिया है कि कोई जगह नहीं रखी। अपने

वास्ते तो कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। श्वास लेने की जरूरत नहीं है। आकाश में से भी क्या कचरा निकाला जाता है। महापुरुषों ने शास्त्र लिखा है। यह तो भगवान ने कहा है। कुछ न कुछ वृत्ति तो उठती है। ये वृत्तियाँ है। शरीर वृत्तियों का पुंज है।

कालीदासजी-जो 'जाण' है, उसी के द्वारा सब जाना जाता है और अपनी भी खबर जाण से ही पड़ती है।

उत्तर- नहीं। केवल जाण ही है, वह अपने आपको किस तरह से जाने जानना सिर्फ एक ही है। देखो, **चौदह ही लोक बाँझ ही है, कुछ हुआ ही नहीं है।**

कालीदासजी- मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि जैसे काँच में मुँह देखता हूँ तो काँच में मुँह है क्या? उस काँच को आगे से हटा दें तो क्या मुँह नहीं रहा? काँच है तो मुँह दीखता है।

उत्तर- मान लो अपने तो घोर अन्धकार में बैठे

हैं। उस मकान के खिड़की, दरवाजे और शरीर कुछ भी नहीं दीखता। लेकिन वहाँ 'मैं हूँ' यह तुरन्त मालूम पड़ जाता है।

एक साधु ने बाई पर कविता बनाई तो बाई ने कहा कि बावजी, यह काम आपका नहीं है। यह तो चारण भाटों का काम है।

कालीदासजी- हाँ, इससे वृत्ति जो है, वह बहिर्मुखी हो जाती है और उसे वापस अन्तर्मुखी करने में बहुत कठिनाई होती है।

प्रश्न- आत्मा क्या है? मैं आत्मा को कैसे प्राप्त करूँ?

उत्तर- आत्मा तो सबको मिला हुआ ही है। यदि आत्मा अप्राप्त हो तो तुम किस तरह से जी सकते हो और **देखो भाई! मैं तुमको साफ बतलाती हूँ। महापुरुष अपना अनुभव किसी को बतलाते नहीं है। क्योंकि अनुभव कहा नहीं जा सकता। जिसको अनुभव होता है, वही जानता है ऐसा सबको नहीं**

होता है किन्तु आपके ऊर्ध्व पुण्य हैं जो आपको यह जिज्ञासा जगी।

भगवान् बहुत दयालु है। हम उनकी ओर चार कदम जायें तो वे आठ कदम हमारी ओर आते हैं। यह मैं अपना अनुभव बतलाती हूँ कि कुटुम्ब तो स्वार्थ का ही साथी है। भजन करने की यही उम्र है। बुढ़ापे में भजन नहीं होता। पीछे बुढ़ापे में इधर से कुटुम्ब साथ छोड़ देता हैं, उधर से शरीर थक जाता हैं। शरीर में खून नहीं रहता। कुटुम्ब भजन में बाधक हो तो उसे छोड़ दो। बाधक न हो तो उसका साथ देने में कोई दोष नहीं हैं। एकान्त में बैठकर भगवान का भजन करो। भूखा तो वह किसी को रखता नहीं हैं । यदि तीन दिन भी खाना न मिले तो भी बहुत अच्छा। वह तो सब कर देगा। 'धर्म जिस समय घटने लगता है और अधर्म बढ़ने लगता, तब मैं अवतार लेता हूँ।' इस श्लोक का अर्थ है कि धर्म घटना यानी कल्पना जब ज्यादा बढ़े और धर्म का बढ़ना यानी

कल्पना का घटना है। जब कल्पना बहुत बढ़ती है, तो भगवान कुछ बन जाते है। यह शरीर और भी क्या-क्या बना हैं, वह बिगड़ना मुश्किल हो गया है। अब कहीं फिर बनना मत।

अरे देखो! राम, राम, अपने आपको भूलकर स्वयं ही किस तरह ढूँढते फिरते हैं। मैं भी अपने आपको बहुत ढूँढती फिरी, राम-राम । मन और बुद्धि कुछ नहीं है, कोरी कल्पना है। शरीर को जला दो तो कोरी राख और चीरों तो खून और मांस दीखेगा। ये मन और बुद्धि कहीं भी इकट्ठे किए हुए दीखते नहीं। पैसे वालों से भजन थोड़े ही होता है। वे तो अपना छाती-कूटा करते रहते हैं। **भगवान का भजन करो तो दो घण्टा सुबह और दो घण्टा शाम- सब ठीक हो जायेगा।** नाम पर बड़े-बड़े महापुरुषों ने जोर दिया है। बीच में जब भी समय मिले तभी 'हे राम, हे राम' उच्चारो। कृष्ण को लड़ाई में बुलाने के लिये दुर्योधन और अर्जुन गये। तब भगवान ने

दुर्योधन से पूछा- तुम मुझे लोगे या मेरी फौज लोगे। उसने सोचा कि इन्होंने सारी उम्र तो गायें चरायी, यह लड़ाई क्या समझे, सो उसने फौज माँग ली। अर्जुन से पूछा कि तुम क्या लोगे? उसने कहा कि महाराज, मैं तो आपको चाहता हूँ। तो अर्जुन की तरफ देखकर भगवान हँसने लगे। तब संकल्प किया कि फौज तो त्रिगुणमयी माया है। जो माया का शरीर बना है, वह मरेगा ही। अर्जुन - युधिष्ठिर तो अपना निजी स्वरूप चाहते हैं तो उनका जन्म-मरण मिट गया।

प्रश्न- चुपचाप रहकर अपना ध्यान करना चाहिए या नाम लेना ? उत्तर- चुपचाप आँख मींचकर ध्यान करें तो आँख खुलते ही ध्यान मिट जाता है। सो अपने को खुली आँख से विचार से जान लेना, और नाम लेना जब तक अहं है।

प्रश्न- रामायण सुनने का बहुत मन होता है।

उत्तर- सुनकर क्या करोगी? जिस किसी से पूछो

वही यह कहेगा कि रतन कंवर हिम्मतसिंहजी की बेटी है मुझे तो कुछ नहीं करना है। पीछे कुछ भी हो, इसकी भी चिन्ता नहीं। स्मरण करना तो उसे कहते हैं कि भगवान को भूले हुए हैं, उसको याद करें। पर यह नहीं कि ऐसा हाथ, ऐसा पैर, ऐसा कान, ऐसा गहना उनका सारा स्वरूप सामने आ जायें, इसको स्मरण कहते हैं।

प्रश्न- भूत किस तरह होता है?

उत्तर- भूत किस तरह होते हैं, मुझे बतलाओ। शरीर तो जलकर राख हो जाता हैं आत्मा रहती है, उसे भूत कहो तो भले ही। पर आत्मा होती नहीं है। महाराज साहब (शिवदानसिंहजी) भी कहते थे कि पहले मेरे भी ऐसा-ऐसा बहुत था। लेकिन आपके पास आने के पश्चात् मेरे दिमाग से यह बात निकल गयी।

शरीर मेरा-मेरा क्या हैं? मैं शरीर, ऐसा अंहकार में ही यह संसार मूढ़ हो रहा है। पहले अपन तस्वीर

बनावें और यह आँख, यह नाक, माथा, हाथ है फिर उसके लिए कहें कि यह ऐसा करता है। ऐसे ही यह संसार का धन्धा है।

प्रश्न- मुस्लिम महात्मा की पुस्तक पढ़ूँ?

उत्तर- पढ़ो पर डरो नहीं। स्थान से मत डिगना। डिगता तो कोई नहीं हैं, पर वृत्तियाँ ऐसी है कि झटका खा जाये तो उनको ठिकाने लाने में कठिनाई हो जायेगी।

प्रश्न- ऐसा होता है कि आपमें ही डूब जाऊँ। 'मैं' कभी न आवे।

उत्तर- हाँ, फिर ठहर कर कहा-इसमें डूबे हुए ही है। अमृत धीरे-धीरे असर करता है। जहर जल्दी असर करता है। कुटुम्ब का चुभता हुआ वचन झट असर करता है। इनसे तो जहाँ तक हो, दूर ही रहना।

प्रश्न- ऐसा ही वे कहते थे कि कोई न कोई कल्पना अन्दर उठ ही जाती है। कान नहीं सुनते तो उनको सुना देता है।

उत्तर- घोर वैराग्य ठहर सके तब पूर्ण रूप से कोई वैरागी हो सकता है। कुटुम्ब के ऊपर से दुर्वचन सुनने को मिलते रहे?

प्रश्न- थोड़े दिन आपके पास रुककर रहूँ?

उत्तर- मैं तेरे पास हूँ। दूर कभी नहीं हुई। तू मेरे पास ही है। मैं दो-तीन जनों को तो कभी भूलती नहीं हूँ। जैसे अपना कल्याण इसी में है। बाहर से कितना भी छाती-कूटा करते थपेड़े खाते तो भी वे उसको सहते रहते, पर भीतर से भूलते नहीं। ध्येय पर मजबूत रहना और भगवान को भूलाना नहीं।

एक जगह ईसामसीह कहते हैं- हे भगवान् (प्रभु) तू अभी ऐसा क्यों है? अभी तक भगवान पर पूरा विश्वास नहीं हुआ, नहीं तो दुःख की यह पुकार क्यों? दुःख नहीं होना चाहिए।

मुस्लिम महात्मा- मैं तुम्हारे ऊपर भरोसा करता हूँ, वैसे ही भगवान तुम मेरे ऊपर प्रेम करते हो क्या? तो भगवान ने कहा कि कि इतना विश्वास रखते,

करते तो मेरी तरफ से कोई भी तुमको सन्देह नहीं होना चाहिये था।

वृत्तियों से अपने को कुछ लेना-देना नहीं। वृत्तियाँ अनन्त उठती हैं ये मुझे क्यों आयी, ऐसा रोते रहो तो रोते रहो। करना तो यह है कि सात जन्म में भी अपने को इनसे कुछ लेना-देना नहीं है।

त्रिकाल में भी अपने को अज्ञान नहीं हुआ। फिर व्यर्थ ही कहते हैं कि हमें अज्ञान हो गया। इसलिए ज्ञान प्राप्त करें। जैसे बनिया हिसाब में दो पैसे का फर्क आने पर रात में विचार करता है तो नींद आती। लेकिन अगला लिखा हुआ हिसाब देख ले तो समझ में आवे।

चैतन्य एक हैं दूसरा कोई भी है ही नहीं और दूसरे कुछ-कुछ लगते हैं, यह परमात्मा का स्वभाव हैं। सूर्य की धूप, मिर्च के अन्दर चरकापन ये इस तरह के हैं कि इनकी गाँठ बाँधना चाहें तो बँधेगी नहीं। मुट्ठी लेकर घर में लाना चाहे तो लायी नहीं जायेगी।

परन्तु दिखती प्रत्यक्ष की तरह है।

संसार क्या है? मिट्टी, पत्थर का सोना या कागज का नोट-इसमें क्या है? इनसे हमारा क्या? मनुष्य को घर का, कुटुम्ब का, धन का नशा चढ़ा रहता है, वह उतर जाये तो वह तो जैसा है, वैसा ही है। राजाओं के राज्य चले गये। उन्होंने वह राज्य हमारा है, इस प्रकार की कल्पना की थी। हाथी-घोड़ों ने नहीं की जो दुःखी नहीं हुए। मनुष्यों ने उन्हें अपना बनाया। करना क्या चाहिए और करता क्या है। ये वृत्तियाँ अनेक दिखती हैं, पर है एक प्रकृति ही है।

एक का विचार दूसरों के काम नहीं आता। अपना आपा आप ही सम्भाले, तब हो। भैंस कमजोर होकर बैठ गयी। बीस आदमी उठावें तो भी वह जब तक उसके पैरों पर ठहरती नहीं तब तक ठहरा नहीं सकते। अज्ञानी कोई है नहीं। अज्ञान और पाप दीखता है, तो उतना ही अपने में है। बहुत लम्बी-चौड़ी बात समझनी नहीं है। पर पूरी तरह समझे

बिना समझ में नहीं आता है। इस शरीर को तकलीफ देना तो वैसा ही है कि साँप तो बिल में बैठा रहे और ऊपर से बिल को कूटते रहें। प्रकृति जो दीखती हैं, इसको देखने वाले अपन ही हैं। इसीलिए दिखती है।

सबमें ज्ञान है। यह ईश्वर ही सबमें विराजमान है। ऐसी बुद्धि रखकर सबकी सेवा करनी। अपने हाथ-पैर चले तब तक, कोई अपने साथ कैसा व्यवहार करे, यह स्वार्थ नहीं रखना कि इनके साथ ऐसा अच्छा व्यवहार करने पर अच्छा होगा, यह फायदा होगा, इस प्रकार फल की इच्छा नहीं रखनी।

संसार को सच्चा जानने से संकल्प उठते हैं। फिर जड भरत और नाभाजी की बात बतलायी। इतने-इतने ऊँचे महात्मा हुए, उनको भी शरीर धारण करना पड़ा। देखो, शरीर धारण के दोष से ही भगवान् राम को भी सब जानते हुए भी कितनी-कितनी तकलीफें देखनी पड़ी। सिनेमा, खेल-तमाशा नहीं देखना है। यह कहकर अंजलि छोड़

देनी । माला तीन सौ हमेशा फेरना और उसमें फल की इच्छा नहीं रखना। स्त्रियों के साथ कम बैठना। काम हो जाने पर अकेले बैठकर माला फेरनी ।

राजा बलि यज्ञ करते थे। उसने हजारों यज्ञ किए। शुक्राचार्यजी ने कहा - "तू इनको भगवान को अर्पण कर दे।" वह कहता कि मैंने किया है तो भगवान को अर्पण क्यों करूँ। भगवान तो बहुत दयालु है। उन्होंने सोचा कि यह इतना शुभ कार्य कब तक भोगेगा। वे स्वयं छोटे बालक, 'बामन' बनकर पधारे और कहा- मुझे तीन कदम पृथ्वी दो। मैं चार महीना चौमासे में रहूँगा। शुक्राचार्यजी ने कहा कि मत दे, यह भगवान है। राजा ने रानी से पूछा। उसने कहा कि दे दो। भगवान अपने दरवाजे पर पधार कर मांग रहे है। राजा ने कहा कि भगवान का दर्शन न करावें, ऐसे गुरु को मैं क्या करूँ। यह तो भगवान है। बलि ने सब दे दिया। भगवान ने उनको पाताल में भेज दिया। तब बलि ने कहा- महाराज आप चार महीना

चौमासे में मेरे यहाँ आकर रहो। इसीलिए अपने शास्त्रों में चार महीने भगवान के शयन की बात लिखी है।

बाई- बाईसा, मैं तो जी-जी कर थक गयी। यह बहुत लम्बी फिल्म है। बारह वर्ष की थी, तभी से यह दीखने लगी। अभी तक भी पूरी नहीं हुई। कर्मों का फल बड़ा कठोर है। बाहर का दुःख हो तो झेल लिया जाये। परन्तु जीवन से अरुचि होने से जो आन्तरिक घबराहट होती है, वह बहुत बुरी है।

प्रश्न- बाई! आपको दुःख हो कैसे सकता है?

उत्तर- पर दुःख-सुख को जानते तो अपन हैं, नहीं तो खबर ही कैसे पड़े। मैं सत्संग की बात करती हूँ या फिर चुप हो जाती हूँ तब संसार दीखता है और जब काम करती रहती हूँ तो नहीं दीखता। अब मुझको कुछ भी अच्छा नहीं लगता है और ऐसा मन करता है कि जहाँ कोई मुझको पहचाने नहीं और न कोई मुझे बुलावे वहाँ चुप-चाप बैठी रहूँ। भले ही

भूखी रहकर मरूँ या कोई आकर जैसे कुत्ते को रोटी देते है, उसी तरह रोटी दे जाये।

प्रश्न- बाई! चुपचाप रहने पर भी संसार दीखेगा तो?

उत्तर- मुझे डराते क्यों हों?

प्रश्न- बिल्कुल चैतन्य महाप्रभु की तरह से लगती हो।

बाई - ओह ! इन राक्षसों को राक्षस कौन कहता है। कुम्भकर्ण को रावण ने जगाया तो वह मरने के लिए प्रसन्न होकर गया। वह जानता था कि मैं शरीर नहीं हूँ और शरीर ही मरेगा। खर-दूषण को भगवान मारने लगे तो खर-दूषण को और उनके राक्षसों को प्रत्येक राक्षस राम ही दीखने लगा। पार्वतीजी ने महादेवजी से पूछा कि अमृत तो दोनों सेनाओं पर बरसा था, तब बन्दर जीवित हो गये और राक्षस जीवित क्यों नहीं हुए? तब शिवजी ने कहा कि हे पार्वती! वे तो राममय हो चुके थे।

प्रश्न- हाँ बाई, रावण ने इतना-इतना काम किया, पर वह कभी अपने को नहीं भूला।

उत्तर- देखो! सीता माता को इतने महीने घर पर रखा, उनके रोज दर्शन करता, पर वह जानता था। वह जो जानता था, वह कभी नहीं भूला। विभीषण ने समझाया तो उसे लात मार दी और वे भगवान की शरण चले गये। भगवान ने विभीषणजी को पास बिठाया, राज दे दिया। परन्तु देखो, रावण को तो उन्होंने अपने में ही मिला लिया।

नन्दजी जब भगवान को मथुरा में पहुँचा कर आये, तब यशोदाजी ने कहा कि मेरे लाल को वहाँ छोड़कर किस तरह जीवित लौट आये? दशरथजी ने तो राम को वन भेजते ही अपना शरीर छोड़ दिया था।

नन्दजी ने कहा-महरी! मैं प्राण तो छोड़ देता पर मेरे लाला को दुःख होता। दशरथ ने प्राण छोड़ दिया, यह रामजी ने सुना तो उनको दुःख हुआ।

गोपियाँ दही बेचने के लिए जाती, तब 'दही ले लो, दही ले लो' यह कहना भूल जाती है और कहती, 'कृष्ण ले लो, कृष्ण ले लो'। ठिठोली करने वाले भी बहुत मिल जाते हैं। किसी एक ने कहा कि लाओ अपने कृष्ण को मुझे दे दो। उसने डलिया नीचे उतार दी तो उसमें भीतर कृष्ण भगवान सोये हुए। उनकी प्रेम तदाकारता देखो। सब घर वाली थीं उनके घर थे। कृष्णमय होकर घर के काम करती, कृष्ण तत्व से राधा तत्व अलग नहीं है। शुकदेवजी ने कहीं भी राधिकाजी की बात अलग से नहीं कही।

मनुष्य को छोड़कर बाकी सब जीव परोपकारी भगवान हैं। किसी में भी बुराई नहीं देखनी चाहिए। बुराई तो वह देखे जिसको गुणों का घमण्ड हो। पाप वह देखता है जिसको पुण्य का घमंड होता है। यह घमण्ड होते ही वह बुराई उसमें प्रवेश कर जाती है। इसी तरह सब बुराइयों का समझना।

अपने को तो इस तरह से देखना है कि प्रकृति

माता के बहुत से रूप हैं, वे खेल रहे हैं, इस तरह से देखते रहना। जब तक यह समझ में नहीं आता और कृष्णमय होकर संकल्प पर नियंत्रण नहीं होता। आत्मिक प्रेरणा करने वाले वे भगवान जब तक उसको रोके नहीं, तब तक यह रुकता नहीं। जीव भले ही भगवान की कृपा अनुभव न करे, पर वह तो कृपा करता ही रहता है। रुकता नहीं। कृपा करना उनका स्वभाव है।

समस्त भक्ति स्वरूपों का समागम-महात्मा श्री भूरी बाई (प्रो. भंवरलाल जी शर्मा चित्रित)

पहले मेरा विश्वास भगवान पर नहीं था। जब मैं विधवा हो गई, बीस दिन हो गये तो घर में जो था वह सब खा-पी लिया। जो कुछ बाकी बचा था, वह सब ले गये थे। परमात्मा कभी इन देवर-जेठों के सहारे न रखें और पास-पड़ोस में कह दिया कि इसको कुछ भी मत देना।

घर में नमक की पुड़िया और एकाध सेर गेहूँ था। मेरी नौ वर्ष की बहिन मेरे पास ही थी। जिसके साथ खेलने जाती। उसी के घर रोटी खा आती। एक गाय, एक भैंस दूध देती थी, उनका दूध उसे पिला देती थी। उन बीस दिनों में उदयपुर के तीन मेहमान आये बैठने के लिए। मैंने सोचा कि मेरे तो कुछ है नहीं। वे बैलगाड़ी में बैठकर आये थे और श्रीनाथजी के दर्शन करने गये। सेलू नामक चित्रकारी का रंग होता है, उसे खा लिया जाये तो पाँच मिनिट में मनुष्य मर जाय। मैंने उसे कटोरी में घोलकर रख लिया और यह सोच रही थी कि बहिन को सरदारगढ़ भेज दूँ। वह चारा लेने गई थी। जब वापिस आई तो हरी मिर्च भी तोड़कर लायी । उसको मैंने कहा कि जा और सवा बाबा बुला ला। वह गयी पर वह भील मिला नहीं। उसने पूछा कि भील को क्या कहना हैं? मैंने कहा कि तुमको सरदारगढ़ भेजना है। उसने पूछा-यह गठरियाँ किसकी पड़ी है। मैंने कहा कि उदयपुर

से मेहमान आये है। वह समझ गयी और कहा कि देख बाई, इस तरह का विचार न करना, परमात्मा दुःख दे तो उसे सह लेना। मुझे भेज देने पर तेरा काम कौन करेगा? यह आठ रुपया आम के पेड़ के नीचे छोटी ढेरी में पड़ा हुआ मिला है। मैंने कहा किसी का ले तो नहीं आयी? उसने कहा- मैं किसी के घर नहीं गयी और वहाँ कोई नहीं था। फिर उसका आटा, घी लेकर रोटी बनाकर मेहमानों को खिलाई। **उसी दिन से मुझे विश्वास हो गया कि दुखियों की मदद करने वाला कोई परमात्मा है। मैं तो कभी खाती, कभी भूखी रहती।**

रतन - भगवान भूखा भले ही रखे, पर सत्संग के बिना न रखे। स्त्री का शरीर होने के कारण पुरुषों के साथ कैसे बैठे ? मैं महाराज साहब श्री चतुरसिंहजी के पास जाती। वहीं दिन भर रहती और रात में दूसरी जगह रहती।

बाई- मुझे नारायण महाराज ने कहा कि साधु हो

जा। मैंने निवेदन किया कि बावजी, मेरे स्त्री का शरीर हैं, मैं डरती हूँ। महाराज ने कहा- "नारायण, नारायण, निर्भय-नारायण"। मैंने कहा "यह बस माया" बावजी क्या कहते हैं?

एक दिन महाराज साहब ने मुझको गांठ बांधकर रुपये दिये, मैंने कहा कि मैं नहीं लेती, तो बोले-यों कह दे कि राजा पापी होते हैं। अब मैं यह किस तरह से कहूँ।

एक समय महाराज साहब लक्ष्मणसिंहजी ने कहा कि मेरे लिए एक सौ रुपये महीना बाँध दे और मैं न रहूँ तो भी मेरे पीछे से आता रहे- ऐसी लिखा-पढ़ी कर जाऊँ। वे वृद्ध हैं इसलिए मैंने उनको कुछ नहीं कहा। मैं उनको क्या कहूँ। फिर उन्होंने परमानन्दजी के साथ दो-तीन बार कहलाया। तब मैंने यह कहा कि मेरे लिए ऐसा नहीं सोचना चाहिये। आपके यहाँ मेरा घर है। मुझे जब जरूरत होगी, ले लूँगी।

अलख आश्रम आंगन में गिलहरियों को श्री बाई द्वारा भोजन रूपी प्रेम प्रसाद

बाई- यह बुद्धि जहाँ रहती है, वहाँ आगे की आगे रहती है।

काकाजी-व्यवहार में तो इसके बिना काम नहीं चलता है और परमार्थ में इसकी गुंजाइश नहीं है।

बाई- यदि यह व्यवहार परमार्थ नहीं है तो क्या हैं?

काकाजी- हाँ, है तो परमार्थ।

बाई- यह नाक तो जहाँ जावे वहीं आगे की आगे।

काकाजी- यह कभी कहीं कट जायेगा।

बाई- नाक कटी कुम्भकर्ण की जिसकी ग्लानि आयी और उससे वह मर गया।

रतन- सोचो, कितना सुन्दर उपदेश है।

बाई- बुद्धि चली जाने के बाद अहं रहता नहीं,

मर जाता है। यह कल्पना साफ दिखती है। इससे जी में बहुत क्लेश होता है। दिन बीत जाता है तो रात नहीं बीतती है और रात बीत जाती है, तो दिन नहीं बीतता। जिसको यह (कल्पना) सच्ची दिखती है। वह तो समझता है कि यह शरीर ही 'मैं' हूँ। ऐसे मनुष्य दौड़ते फिरते हैं, यों करें, यों करें, ज्यादा से ज्यादा उत्साह से करते हैं। जो बेचारा इसको कल्पना जानकर हार मान गया, उसका जीवन कठिन हो गया। (शरीर ढोते है) हारकर बैठे है। वास्ताविकता तो वैसी है, जैसी पहले थी। इस कल्पना को देखने वाले तो अपन ही है।

कालीदासजी- भले ही आत्मा राम का आकार धारण करे, चाहे कुत्ते की तरह कोई निकृष्ट प्राणी का परन्तु यदि शरीर धारण करेगी तो कुछ न कुछ बन कर ही दिखना होगा।

रतन- बाई, चाल किस तरह से चूक जाता है, जैसे कि आप बताती हो कि भुशुण्डजी, नारदजी,

परशुरामजी, विभीषणजी, पार्वतीजी, आदि की।

उत्तर- भुशुण्डजी राम के लिए कहते हैं कि "नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी"। जो बालक होते हैं वे नाचते हैं। बड़े थोड़े ही नाचते हैं। अपनी कल्पना को देखते-देखते उसके साथ लग जाते हैं। कल्पना का तो पेंदा झाड़ कर पूरी तरह समझ लेनी है। ये महान पुरुष तो एक-एक बार ही चूके, अपन तो दिन में सात बार चूकते हैं।

यह शरीर कुछ करता नहीं है। यह तो रेल के डिब्बे जैसा है। ईंजन का ड्राइवर जब चलाता है तब चलता है। कल्पना अपने करने से होती है। यह शरीर तो कुछ समझता भी नहीं है। कल्पना ही संसार-प्रकृति- शरीर है। पर यह कल्पना हमको कभी भी नहीं कहती कि मैं कल्पना हूँ। अपन ही जानते हैं। इस तरह कल्पना को नीचे (उसके पेंदे) तक देखना।

स्टेशन मास्टर - तो क्या कल्पना अपन कर रहे

हैं। जैसे लोहा और चुम्बक, वह कोई लोहे को खींचता नहीं है। वह तो उसके सामने अपने आप खिंचता है ।

बाई- शास्त्र और गुरु बताते हैं, पर आगे तो अपना अनुभव ही काम देता है।

नाथूलाल जी- स्टेशन मास्टर साहब, आप क्या करते हो?

मास्टर- जो जानने योग्य बात है, उसको जानने की कोशिश करता हूँ।

बाई- मास्टर साहब, ज्यादा-ज्यादा पागल होते जा रहे हैं।

मास्टर- सभी शास्त्रों में कहा गया कि ज्ञानी पुरुषों का जन्म नहीं होता है, हमारे जैसों का होता है।

बाई- कहीं आगे-पीछे होने की तो कोई जगह नहीं है और पुनर्जन्म होने की बात कहते हो। यह बालकों वाली कहानियाँ कहाँ तक कहें।

मास्टर- यहाँ तो उठते ही जड़मूल से कट गई।

अब पनपने की जगह कहाँ रह गई?

बाई- किसी का कुछ नहीं होता है। हाड़ और माँस यहीं दिखते हैं। इनको जला दें। अपन तो जहाँ के तहाँ रह जाते हैं।

काकाजी- कल्पना को मेट दें तो काठ के उल्लू हो जायें।

नाथूलालजी - भक्ति और मुक्ति की कल्पना जहाँ उठती हैं, वह स्थान ढूँढों, शब्द छोड़ दो।

बाई- ये वृत्तियाँ उठती हैं, इससे ही अपना पता लगता है।

मास्टर- नींद में और जागते में?

बाई- आप नींद में सोते नहीं, जागते में जागते नहीं हैं, हमेशा जागते ही रहते हैं। अपने अन्दर में दिखता कुछ नहीं। अपने यह 'जागृत' कहा जाता है वह बहुत खराब है। यह लम्बा सपना पूरा कभी नहीं होता।

रतन- बाई, मुझे हनुमान जी की बात बहुत

अच्छी लगती हैं।

उत्तर- हनुमान जी बात का तो कहना ही क्या?

प्रश्न- आपने कहा था कि मैं तो रामजी की फौज में बन्दर थीं।

उत्तर- मुझे तो ऐसा ही लगता है।

प्रश्न- बाई, मुझे ऐसा लगता है कि आप हनुमानजी थे।

उत्तर- (हँसती हैं) बेकार की बात नहीं करनी है। जो सब है, जो सबमें है। उसको एक रूप में बाँधना कितनी मूर्खता है। ऐसा साक्षी होकर रहना कठिन है, बात चाहे जैसी करो।

प्रश्न- अपने तो कुएं पर जाकर नहाते हैं ग्रहण में और पशुओं को इतना धान वगैरह देते हैं और इसके यों करो, इसके यों, यह ऐसे ही है क्या?

उत्तर-अपने शास्त्र कहते हैं कि सामूहिक में इतना दोष नहीं है। एक ही चीज में दोष मानते हैं। जैसे

कुत्ता तालाब में पानी पी लेता है और लोग वहाँ पानी हिला करके पी लेते हैं और लौटे में मुँह डाल देता है तो उसको मांजते हैं क्योंकि उससे बीमारी लग जाती है। जिस घर में मनुष्य मरा हो, इस घर में नहीं खाना। नहाना व कपड़े धोना चाहिए। क्योंकि उस वक्त के विचार बहुत कलुषित होते हैं। घोर तमोगुणी होते हैं।

प्रश्न- ज्ञान बताओ?

बाई- अपना अज्ञान बताओ।

प्रश्न- पीछे ज्ञान कैसे बताओगे?

काकाजी- अपन इन सबको जानते हैं, और ये अपने को कोई नहीं जानते हैं ।

बाई- अपने को ये किस तरह जानते हैं अपन ही तो इनकी सत्ता सिद्ध करते हैं।

प्रश्न- बाई यह कलकलाहट दिखती है, यह आपको भी यों ही दिखती है?

उत्तर- मुझे दिखती है, पर मेरे जानने में दीखती

है। मैं जानती हूँ कि थोड़ी देर रहेगी, मिट जाएगी। यह कलकलाहट अपने में ही दिखती है। यह अपने अन्दर नहीं हैं। यह हौवे जैसे दिखती है । यह देखता है इसलिये यह हौवे जैसी मालूम होती है। अपने को तो इतना ही करना है कि भगवान है, उसकी जो मर्जी है, वह करेगा, अपने को कुछ नहीं करना। इन बड़ी बाई सा ने ऐसा-ऐसा त्याग किया कि जैसा बड़े-बड़े साधु नहीं कर सकते। अपन कोई बात करें तो कहते हैं कि इससे अपने को क्या करना है, इनकी बात करने से भी घबराहट होती है।

प्रश्न- देखें किस तरह?

उत्तर- परमात्मा के सिवाय कुछ है ही नहीं। देखना क्या ?

योगवाशिष्ठ में रामजी ने पूछा कि संसार किस तरह बनता है? तो वशिष्ठजी ने कहा कि इस तरह मत पूछो। इस तरह पूछो कि संसार मिटे किस तरह? यह संसार किस तरह बनता है, यह कहते ही बनने

लग जाता है। तुम्हारे तो बने ही, फिर मेरे भी बनने लगे। यह कल्पना ही संसार है ।

एक बार सनकादि को संसार का अंकुर उत्पन्न हुआ। उन्होंने विष्णु भगवान से पूछा कि महाराज यह जो आडम्बर दिखते हैं, ये क्या है? उन्होंने संसार के उदाहरण दिये। उन्होंने कहा कि हम इस तरह नहीं मानते। फिर वे कैलाश पर गये। वहाँ महादेवजी एक महीने का बालक बनकर रास्ते में लेटे हुए थे। वे सारा कैलाश पर्वत देख आये, पर कहीं भी उनको महादेवजी नहीं मिले। फिर बालक के पास आकर उसकी स्तुति की। तो भी वह बालक चुप रहा। तब उन्होंने सोचा कि यह भगवान का भक्त है, सो ऐसा तो हो सकता नहीं कि यह बोल नहीं सकता। वे तुरन्त समझ गये और चुप होकर वहाँ से भाग गये।

भगवान तो पीछे रह जाते हैं और लोग अकल को आगे करते हैं। तब किस तरह से हो? उसके लिये कुछ करना थोड़े ही पड़ता है। अगर समझने के लिए

जायें तो अपने में से ही संसार निकलता है। ये शास्त्र पुराण प्रकृति में ही लिखे गये हैं। इन किताबों के ज्ञान से कुछ काम नहीं चलता। इनको अपने जीवन में उतारना पड़ता। वह है नहीं इसलिये इसको मिटना पड़ता है। कठिन काम हो तो धक्का (सहारा) देना पड़े। न हो तो धक्का देने की क्या जरूरत। इन बड़ी बाई साब से कितनी बार कहती हूँ। इस तरह

की बात पर ये कहती हैं कि बाई यों मत कहो। मेरे को कुछ चाहिये नहीं। रोटी तो भगवान देगा ही।

बाई- बाईसा, यहाँ आओ। कोठरी में बैठो। रामायण बाँचो जिस समय जनकपुर से अयोध्याजी को दूत आये, तब दशरथजी ने पूछा कि तुमने मेरे बेटों को किस तरह पहचाना। तब उसने कहा कि- सूर्य को देखने के लिए कोई दीपक लेकर जाना पड़ता है? आपके बेटों को जो देखले उसकी आँख में यह संसार आता ही नहीं। अब देखो, मनुष्य उनको देखने और पाने के क्या-क्या उपाय करता है।

केवल रामयाण ही ऐसा ग्रन्थ है कि उसको पढ़ने के पश्चात् कुछ भी पढ़ने को बाकी नहीं रह जाता है।

ब्रह्माजी ने इधर देखकर कहा कि मैं चार मुँह का हूँ और इस तरह से हूँ कि ‘यह ब्रह्मा हूँ’ यह कहकर के उन्होंने चार मुँह से चार वेद कहे और इधर-उधर करके सारा संसार बना लिया। जैसे हम बनाते हैं। फिर बाद में उन्होंने सोचा कि मैं कहाँ से पैदा हुआ हूँ। उन्होंने चारों तरफ देखा तो सारा स्वयं का बनाया हुआ है, ऐसा उनको दिखा। फिर उन्होंने कमल की तरफ देखा। उसके अन्दर एक छेद देखा। उसमें वे घुस गये । उनको अपनी उत्पत्ति का पता भी नहीं लगा और लगता कहाँ से वे तो उसी में मिल गये। अलग तो कोई रहे नहीं। महादेवजी मन बनाकर पीछे लीला कहने लगे। पार्वतीजी को समझाया कि कहीं जाना नहीं और बाहर भगवान को न देखने लग जाना। यह सब मेरे भगवान की लीला है। ऐसा समझ कर प्रसन्न होना चाहिये और जो इसे मेरी

करके इसमें लगता है, वह इसमें उलझ जाता है।

पोली में लेटी हुई बाई बातें कर रही थीं, "मनुष्य कहता है कि काशी जाऊँ, वहाँ गये अच्छा होगा।" यह खोटी बात है।

प्रश्न- घर-कुटुम्ब में रहने से उनके बातें करने से इतनी खराबी नहीं होती है, जितनी की अपने भीतर की इस कलकलाहट से खराबी लगती है।

उत्तर- इस कुटुम्ब में रहना तो बहुत खराब है। जिनके संतान नहीं है उनके लिए तो लोग ऐसा ख्याल करते हैं कि वे तो भले ही हवा खाकर जिओ या नंगे फिरो और वे भी बाहर से बड़े त्यागी बनते हैं मगर एक बुलबुला उठा और लहरों पर लहरें आने लगीं। परिवारवालों के शामिल रहने से उनके जैसे ही बन जाते हैं। इसीलिये महापुरुषों ने इतना लिखा है संसार कहीं भी नहीं है। भ्रम है। यह शरीर है, यह संसार है। कल्पना से कहीं घर भरा हुआ देखा है? बिल्ली को रोटी न डालो, तब तक वह म्याऊँ

म्याऊँ करती रहती है। शरीर से कैसे मोह हुआ? परमात्मा से तो नहीं हुआ। वह तो इस शरीर से अटका ही नहीं। चित्तोपाख्यान में आया है, ज्यों मिथ्या पुरुष ।

प्रश्न- मैं-मैं करके माथा-फोड़ की और पीछे ध्यान बना कि माया तो यों ही है।

उत्तर- ऐसा कभी भूलना नहीं। ये दोनों प्रकृति में ही है। अपने में नहीं है। सुदामाजी रात-दिन कृष्ण-कृष्ण रटते, पर दरिद्र के दरिद्र रहे। उनकी औरत ने बहुत कह करके उनको भगवान के पास भेजा। भगवान के पास गये, तब दारिद्र्य दूर हुआ। अपन जानते हैं कि संसार झूठा है। तो भी शरीर के आस-पास ही फिरते रहते हैं। मैं और मेरा भगवान-यही दो याद रखना। सुई की नोंक जितना भी इस संसार में किसी चीज में प्रसन्नता नहीं रखना। जो भीतर कलकलाहट है, उस पर ध्यान नहीं देना।

प्रश्न- यह जो कलकलाह है अपन यों है और

संसार यों है, यह तो अपने को जानती नहीं, लेकिन अपन इसको देखते ही, यह सब मिट जाती हैं।

उत्तर- यह क्या है? जैसे घर में बिजली का पंखा हो और उसका स्विच दबा दें और वह चलकर भर्ण भर्ण करने लगे। वैसी ही भगवान की शक्ति है। भगवान अपने हैं और अपन भगवान के हैं। जैसा बाप होगा, वैसा ही बेटा होगा।

प्रश्न- अपन देखनेवाले हैं, इसलिए ऐसा लगता है।

उत्तर- देखनेवाले क्यों, अपन जाननेवाले हैं। देखनेवालों में तो फिर वही बाल- बच्चे और पत्थर का बच्चा लेकर उससे बात करने जैसी बात हो जाएगी और फिर हो जायेगा कि यह क्या है, यह कैसे, यह क्या बात। यह तो सब पत्थर ही है। यह प्रकृति ही तो यों कहती है कि यों करों, यों मत करो। यह ऐसा किसलिए कहती है कि अपन इसे देखते हैं इसलिए ।

एक घुड़सवार कुएं पर चलते रहट पर घोड़े को पानी पिलाने ले गया। रहट से जो कट-कट शब्द होता है, उसे घोड़े ने यों समझा कि मुझको कह रहे हैं कि पानी मत पियो। तो उसके सवार ने कहा कि पानी पीना है तो अभी पी लो कट-कट शब्द तो रहट चलना बंद होने पर ही बन्द होगा और तब तो पानी आना भी बन्द हो जाएगा। इसी तरह इस शरीर में यह हलचल है, हांडी में दही है, तब तक ही उसे मथ कर घी निकाल लो। समझना क्या कि यह संसार जो दिखता है वह क्या है? अब रहे अपन और भगवान तो एक जैसे ही हैं। जैसे वे चक्की वाले खट-खट करके आटा पीसते हैं लेकिन पीसने वाला हाथ खींच ले तो यह चलेगी क्या? इसी तरह अपन देखें नहीं तो यह दिखेगा क्या? बस । हुई बात समाप्त। अब तो करना यही है कि जहाँ बैठे हो वहीं निश्चिंत हो जावें और जहाँ खड़े हैं वहीं खड़े रह जायें।

प्रश्न- पर पढ़ने से भी ज्यादा मनन करना है।

उत्तर- मुझको तो थोड़ा सा सुनने में भी यह संसार खड़ा हो जाता है।

प्रश्न- आपको यह दीपक नहीं दीखता है क्या?

उत्तर- दीखता है पर और कचरे की तरह से यह भी कचरा।

प्रश्न-हाँ, इस तरह से नहीं होता है कि यह दिया है और इसका यह अर्थ है ऐसे नहीं दिखता। **शरणानन्दजी महाराज यह कहते हैं कि अर्थ की तरफ दृष्टि मत करो। शान्ति विजयजी महाराज यही कहते थे- कचरा बहुत है, जितनी जगह चाहिए उतना साफ करके बैठ जाओ।**

बाई ने कहा- अंगीठी के पास बैठो और देखो। कचरा दिमाग में रखकर समझने की कोशिश मत करो। राजा होकर फटे हुए चिथड़े पहनकर फिरे तो ये क्या उसे शोभा देते हैं? दरबार के पास राजपूत राबड़ी (छाछ में उबाला हुआ दलिया) लेकर गया

तो वह ढुल गया। कालीदास जी ने कहा कि आपको कहीं कचरा दिखे तो कहिये ।

उत्तर- ये तो तुम्हारा तुमको ही दिख सकता है।

कालीदासजी- नहीं, यह नहीं होगा, दूसरे को तो नहीं दिखता है, पर आपको तो सब खबर पड़ती है, भगवन्नाम है, यह बाँचे, पर दूसरे काम तो सब अपने हाथ से ही किए हुए हैं। फिर सारे दिन क्या गिनें। भगवान रथ में बैठे थे और अर्जुन ने कहा कि मैं इनको नहीं मारूँगा। तो भगवान ने समझाया। वे समझ गये। सबको मार दिया। अब गीताजी बाँचे, इसका क्या मतलब?

प्रश्न- जब यह शरीर छूटे तो वृत्ति के आकार जैसा हो जावे तब आगे की वृत्तियों को देखने को तैयार रहता है।

उत्तर- पहले निश्चय कर लो, पीछे भले ही ऐसा हो तो उसमें कोई हर्ज नहीं । वृत्तियों को जानने वाले अपन हैं नहीं। वृत्तियों को किस तरह जानें? क्या

जानें। यह बताओ। तुम सब मेरे सामने ही ठीक तरह से समझ जावो। फिर भले ही मैं नरक में पड़ी हूँ। उसकी कुछ भी परवाह नहीं। मेरे चित्त को शांति मिल जावेगी।

प्रश्न- पुस्तक में लिखा है कि कम उम्र वालों के पास नहीं बैठना चाहिए।

उत्तर- अपने को तो बाल-बच्चे, स्त्रियों, जवान मनुष्यों के सामने भी नहीं देखना चाहिए। औरतों से बात नहीं करनी। एक बात करें तो फिर बहुत सी बात चल जाती हैं और फिर ये बातें सिर में घूमती हैं। बड़े बाई जी के माथे में तो पति व स्त्री कुछ है ही नहीं। तुमको चुपचाप एकान्त में बैठना चाहिये और कोई पूछे तो जवाब दे देना चाहिये। भीतर से तो बिल्कुल निराश हो जाना चाहिये किसी भी चीज पर बिल्कुल प्रसन्न नहीं रहना चाहिये और इन वृत्तियों के ऊपर ध्यान नहीं देना चाहिये। और कुछ समझना नहीं है। संसार को समझ गये, बस साधन

की हालत में मन को रोकने को शास्त्र कहता है। नहीं तो मन और कल्पना का अस्तित्व कुछ है नहीं । एक परमात्मा है। भगवान का नाम लेना व चुपचाप बैठे रहना है। देखो! मुझे विवाह के बारह महीने बाद घोर वैराग्य आया। कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। ऐसा का ऐसा वैराग्य सोलह बरस तक रहा। फिर वह कहीं चला गया। अब मैं उसको ढूँढ़ू तो नहीं मिलता। मैंने महाराज साहब चतुरसिंह जी से कहा तो उन्होंने कहा कि यह ऐसे ही हो जाया करता है।

रतन- योगवाशिष्ठ में आया है कि एक दफे अपना निश्चय अपने आपको हो जाये तो फिर भूला नहीं जा सकता ।

उत्तर- (हंसते हुए) बोलों, अब यह गलती किसकी? यह तो नीम के पत्ते उड़ते फिरते हैं, अब ये क्या काम करें? क्या ये समझते हैं कि हम उड़ रहे हैं। यों ही सब संसार है।

प्रश्न- यह औरत बहुत चिल्लाती है।

उत्तर- **<u>अच्छा और बुरा कुछ नहीं है। जो बात जैसे जँच जाती है, वैसे ही लगने लगती है, यह बात ऐसी है।</u>** ऐसा करते-करते वह वैसे ही लगने लग जाती है। शुरू से ही उसने ऐसा कहा सुनने वाले ने दूसरे को वैसा ही कहा, तो वह वैसा ही लगने लग जाता है। मन और बुद्धि कुछ नहीं है। इनका मनन करना ही इनको बनाना है। ये तो परम्परा से अपन स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए लगते हैं। अब फिर मन और संसार की बात करनी है क्या?

प्रश्न- है तो नहीं, पर ऐसा लगता है।

उत्तर- लगता है तो क्या हुआ? जैसे घोर अंधकार में अपन जानते हैं कि वहाँ कुछ दिखता और गरम-गरम लगता है तो अपन ऐसा ध्यान करते हैं कि यहाँ अग्नि है। गर्मी का कोई आकार तो होता नहीं। इसी तरह यह भी है। अपने ही विचारों का भान अपने को होता है। अपने सामने यदि कोई कुछ करे तो अपने को ऐसे देखना चाहिये जैसे आधी नींद में हों

और आँख आधी खुली हुई हो। पहले मैं अकेली बैठी रहती थी। बाहर से ताला बन्द करके चाबी अपने पास ले लेती। क्योंकि मनुष्य ने यह किया, उसने यह किया, आप अच्छे बनकर ममता-द्वेष की बातें करते हैं।

मैं एक बार हरिद्वार गयी। नील धारा के पास शिवानन्दजी महाराज का छोटा सा एकान्त में घर है। उसके पास घास और पेड़ उगे हुए थे। उनके जो बड़ा मकान और जगह थी वह सब गुरु भाई को सौंप दिये। उसका नाम चैतन्याश्रम ऐसा ही कुछ है। वे उस जंगल में रहते थे। मैंने कहा कल आपके लिए भोजन मैं ले आऊँ? तो उन्होंने कहा कि देखो बाई मेरे मन में रहेगा कि वह रोटी लावेगी। तुम्हारे मन में रहेगा कि मुझे रोटी ले जाना है। क्यों ऐसा करते हो। होता है, वैसा होने दो। देखो, कैसी बढ़िया बात कही है। वह कहीं पर भी रोटी लेने नहीं जाते। कोई ले आवे तो खा लेते, नहीं तो तीन- चार बजे के बाद

बहुत से साधु उनके पास सत्संग करने आते। उस समय वे बात करते । वृत्ति उठे तो उसको वहीं पर रोक देना चाहिये।

काकभुशुण्डिजी का उपाख्यान बहुत अच्छा है। वशिष्ठजी ने पूछा कि आप इक्कीस भाई थे, अकेले ही रह गये, दूसरे कहाँ गये। उस पर भुशुण्डिजी ने कहा कि समय पाकर वे सब मर गये। मैं ही अकेला रह गया। सुनी-सुनाई शास्त्रों की बातों की खिचड़ी हो गई है, वह सब अपना पता लगते ही मिट जावेगी। ये जितनी वृत्तियाँ हैं, वे सब हजारों का कोठा है। जब अपने को यह मालूम हो जावे कि इस आदमी से अपने विचार बिगड़ते हैं तो उसका संग छोड़ देना चाहिये। असल में तो यही भजन और बाकी सब छिलके कूटना है।

प्रश्न- जो अनेक वृत्तियां उठती हैं, वे किस तरह से बन्द हों?

उत्तर-जहाँ अग्नि है, वहाँ धुआँ तो होगा ही। ऐसा

कहना कि अग्नि भले ही हो, लेकिन धुआँ नहीं होना चाहिए। जैसे अपन है, वैसे ही वृत्तियाँ भी हैं। इनसे क्या लेना-देना । जैसे काक भुशुण्डिजी को अनेक दृष्टियाँ दीखीं।

प्रश्न- सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये वृत्तियों में तो होंगे ही।

उत्तर- इनके गुणों के फेर में अपने को नहीं पड़ना। पर भजन जरूर करना। भला तो तभी हो सकता है कि जब कुछ बुरा हुआ हो।

प्रश्न- यह तो मालूम होता है कि सब भगवानमय ही है।

उत्तर-किसको कहें और कौन सुने? एक परमात्मा के सिवाय कुछ है ही नहीं। भगवान की ही कृपा हो तब उनके सम्मुख हुआ जाता है, नहीं तो संसार ही माथे में फिरता रहता है।

प्रश्न- अब तो आप काम करती हुई थक जाती हो?

उत्तर- अब मेरी अक्ल चली गयी जो कोई ध्यान नहीं रहता। इसलिए काम में बहुत थकावट होती है। तुमको भी फिर याद किया तो संसार दिखा। इस कुटुम्ब को तो काँटे लगा देना चाहिये। मैं बार-बार यहीं, कहती हूँ, ताकि खूब दृढ़ हो जावे। यह कल्पना नहीं होती तो परमात्मा का पता नहीं लगता। इसी से लगता है। जैसे गर्मी से अग्नि का पता लगता है। **योगवाशिष्ठ में कहा है कि कोई दूसरा दृष्टा हो तो दृष्टा को जान सकता है।** जानने वाला एक है, उसको कौन जाने। देखो, मैं तुमको यही कहती थी। समझी। अपने को तो सार का पेंदा देखना है। आकाश बाँहों की पकड़ में कैसे आयेगा। केवल भगवान हैं विचार में कभी कोई सार तत्व नहीं दिखना चाहिये। कुटुम्ब का तो थोड़ा भी कोई कहना नहीं माने या उनको अच्छा नहीं लगे जैसा करो तो ऐसे बदलते हैं कि जैसे कोई जान-पहचान ही न हो। ये तो अपना जैसा ही आपको भी करना

चाहते हैं। अपना अनुभव तो किसी ने कहा ही नहीं है, कहें तो किस तरह? दूसरे आप जैसे कोई हो तो कहे वह अकेला ही है। अनाज के छिलको को कूटना है।

प्रश्न- यह संसार कब बना?

उत्तर- तुम पैदा हुई, तभी बना।

प्रश्न- भगवान क्या हर धर्म के अलग-अलग है?

उत्तर- उबलते हुए बांटे में बुलबुले उठ रहे हैं। देखो, यही संसार बन रहा है। वह मोटा बुलबुला ब्रह्माजी है। ये तो मिटते बनते हैं। ठण्डे दिमाग से सुनो और शान्ति से बैठ जाओ। कुटुम्ब अच्छा और बुरा कहे उस पर ध्यान मत देना। भीतर में जो यह कलकलाहट है, प्रश्न उठते हैं, उत्तर बनते हैं। यह ऐसा है, यह ऐसा नहीं है। यह सब कल्पना में ही है और कुछ नहीं। महाराज साहब एवं कालीदासजी बहुत अच्छी तरह से समझे हुए हैं।

बाई-अब कहीं नहीं जावे तो ठीक। जैसे- एक घड़ी हो, उसको कोई ले जावे और कहे कि इसे बिगाड़ना मत। (कितनी अनुपम कृपा है) ।

प्रश्न- ठीक करते हैं, तो ये उल्टे सिर पर पड़ते है।

उत्तर- इसी तरह अर्जुन ने भगवान से प्रार्थना की कि हम पाँचों भाई इतने धर्म पर चलने वाले हैं, तो भी इतनी तकलीफ देख रहे हैं और ये जो एक सौ भाई अधर्म करते है तो भी इतना मजा उड़ा रहे है। तब भगवान ने कहा कि वे तो उनके अधर्म पर दृढ़ है। उनको तो ऐसा और हमको ऐसा यह क्या घिचर-पिचर है।

श्री बाई रामायण सुन रही थी और नर्मदा बाई बाँच रही थी। विभीषणजी भगवान की शरण में जा रहे थे, कल्पना करते हैं। अब कल्पना शुरू हुई। महापुरुष ऐसी ही कल्पना करते हैं। यह कल्पना ही माया का मृग है। भगवान जानते थे फिर भी उसके साथ में दौड़े। फिर रावण की निर्भयता तो देखो कि

(विभीषण को) राज्य दे दिया, पर परवाह नहीं की। सीता माता को इष्टदेव करके लाया था। माता आपके हाथ से ही मरूँगा। यह तो वह जानता था कि मैं मरूँगा नहीं, शरीर मरेगा। कैसी दृढ़ता है। वह कहीं भी चूका नहीं। उसे बाहर तो किसी को दिखना नहीं था। एक जगह कहा है- मोह की महिमा देखो। वह जानता था कि मैं मरूँगा नहीं। वह सोने की लंका को तिनके के समान समझता था। भानुप्रताप का अवतार था।

अपने को तुरंत विचार कर लेना चाहिये और अपने ध्येय से डिगना नहीं चाहिये। अपना कोई है ही नहीं। एक परमात्मा ही अपना है। रामायण में, समुद्र को पंचभूत जड़ कहा है। अपन परमात्मा के हैं और परमात्मा अपने हैं। ज्ञानी में और भक्त में यही भेद है। ज्ञानी जानता है और भक्त सबमें भगवान को ही देखता है। सब शरीर तो यों ही जाना है जैसे बना है, वैसे ही बिगड़ेगा। पर अपने ध्येय पर पर्वत के

समान दृढ़ होकर ठहर जाना और करना हो तो चटपट कर लेना। चटपट नहीं करता है तो पीछे होता नहीं। यही याद रखना कि मन में यह बात कभी न आवे कि मैं पुण्यात्मा हूँ, यह पापी है, मैं धर्मात्मा हूँ यह अधर्मी है। इन विचारों का ही संसार है। जैसा विचार करोगे, वैसे ही बनोगे, क्योंकि दूसरा कोई है ही नहीं। **तुम अकेले ही हो और कुछ बनते हो तो तुम्हीं बनते हो।** मनुष्य मर जावे उसका तो अफसोस नहीं करता है और स्वार्थ बिगड़ने का करता है। पढ़ा-लिखा, अपने कुटुम्ब का पालन किया, बुद्धि इधर को लगायी, आज अपने को जाने बिना यों ही खाली हाथ जा रहा है। शरीर को तो कुछ खबर पड़ती नहीं। प्रतीति परमात्मा को होती है। शरीर को तो कोई गिराता नहीं यह तो धीरे-धीरे अपने आप ही पड़ जाता है। "माया मृग पाछे सो धावा"। भगवान जानते थे कि यह माया का मृग है, तो भी सीता के कहने पर भगवान ने उसका पीछा किया।

यह प्राकृतिक इशारा ही है। इसी को जो जानता है वह पार हो जाता है।

अपने को कोई रोक सकता नहीं क्योंकि सब जड़ है। अपन ही अपने आप रुकें तो भले ही रुक जावें। अपन ही अपन को जानते हैं। "अंधा बांटे रेवड़ी फिर-फिर अपने को देय" । आप ही अपने ऊपर कृपा करें। दूसरे पर किस पर करें? दूसरा होवे तो करे। भगवान से यह प्रार्थना करनी है कि जब तक शरीर है तब तक सत्संग बिना न रखें चाहे भगवान की शरण में जाओ। पृथ्वी पर तो हैं ही पृथ्वी की शरण में होकर अपने मुँह को देखना चाहिये। लेकिन पर्वत जैसे दृढ़ विचार रखे तब देखो पानी और हवाओं के कितने झौंके आते हैं, लेकिन पर्वत हिलता नहीं । कल्पना को उठते ही रोक देना चाहिये।

प्रश्न- रोक देना?

उत्तर- हाँ रोक देना। जैसे आदमी नशे में खूब चूर

हो जाता है और उसको कुछ ध्यान नहीं रहता, वैसे रहना।

प्रश्न- मुझको नींद बहुत आती है।

उत्तर- तुमको नहीं आती, शरीर को आती है। रोटी खाना आदि तो कर्म है। अभी 'मैं-पन' मिटा नहीं, उसको मिटाना है। एकान्त में रहना चाहिये और सब भाड़ में जाओ। मनुष्य का संग नहीं करना। एकान्त में रहना। 'काली पुस्तक' तो तब देखना जब कि अपन अपने को भूल जायें। इसमें अक्ल की जरूरत नहीं है। पढ़ा, बिना पढ़ा, अंधा सूझता सब पढ़ सकते हैं। लिखना पढ़ना सब बाहर का ही कर्म है। (काली पुस्तक बाई ने बनाई जिमसें ऊपर 'राम' लिखा और अन्दर दो तीन पृष्ठ काले कागज के हैं)

रतन- हे भगवान मैंने ठीक से समझा नहीं था। नाथ, यह कृपा करें कि कहीं मैं बहक न जाऊँ।

बाई- क्रोध नहीं करना। जब शरीर में अभिमान

पैदा होता है तब क्रोध आता है, शरीर के अन्दर 'मैं' पन भी आ जाता है। अपन कुछ भी नहीं हैं, न अपना कोई है। इस क्रोध के अंकुर रह जाते हैं। खाने में स्वाद नहीं लेना चाहिये। सबको मिलाकर इस (पेट रूपी) गड्ढे को भर देना चाहिये। अपनी तरकीब नहीं लगाना कि ऐसा करेंगे तो ऐसा होगा। अपने हाथ से और शरीर से काम कर लेना है। मुँह से भी एक अक्षर बाहर नहीं निकालना चाहिये। अन्दर से सावधान होकर रहें, उदासीन रहें।

बाई- जैसी वस्तुस्थिति है, उसको वैसा ही समझ लेना। कुछ अलग नहीं करना । वस्तुस्थिति यह है कि अपन त्रिकाल में भी शरीर नहीं हैं। जानने वाले हैं, यह दृढ़ विचार कर लेना । जैसे कोई आदमी माथे पर बोझ लेकर चल रहा है, उसे कोई उतार ले, तो वह बैठकर विश्राम कर लेता है, वैसा बैठ जाना। भगवान ने रक्षा की। योग से- कितने ही चमत्कार दिखाए जा सकते थे। परन्तु मैंने ऐसा कुछ नहीं

किया। मनुष्य को करना कुछ चाहिये और करने क्या लग जाता है। जैसे लोभी धन की रक्षा करता है, जैसे मनुष्य बाल-बच्चों के लिये चीजें इकट्ठी करता है, इसी तरह से मैं भी तेरे लिए इकट्ठा कर रही हूँ। ब्रह्माजी ने स्तुति की- "अनवद्य, अखंड, न गो गोचर, स्वरूप, सदा सब "होई न"

ऊपर जो आकार है उसके लिये नहीं कहता हूँ। (वशिष्ठजी ने) रामजी को कहा कि इन आँखों से जो दीखे केवल वही नहीं, सब आप ही हो। ये वेद कोरी कल्पना नहीं है कि जैसा सुना वह एकत्र कर दिया। जैसे सूरज की धूप है, धूप क्या वस्तु है पर दीखती है। चीज रखो उसमें तो सूख जाती है, गर्म हो जाती है। गाँठ में बांधों तो बांधने में आती नहीं। भीतर रखो तो रखी जाएगी नहीं। ऐसे ही सूर्य की तरह से भगवान हैं और धूप की तरह से कल्पना है। सीधी बात है। सब मैं जाण है, वह अपन है। यह सब जान लें पर तब तक भला नहीं होगा जब तक मनुष्य को

मनुष्य का संग है। केवल ऊपर-ऊपर से समझे और आदत न बदले तो किस काम की। रामायण का कीर्तन हुआ जिसे सुनकर बाई ने कहा- ऐसे में मर जावे तो कैसा अच्छा रहे । वृत्तियाँ वैसी ही रह जायेंगी।

जिसने स्वरूप को जान लिया हो, उससे अविद्या भाग जाती है। मोक्ष सुख के लिए तीनों लोक की सम्पत्ति तिनके के समान है, वह भी भला नहीं कर सकती।

ऊपरी आसक्ति को आसक्ति नहीं कहा जा सकता। बर्तन के ऊपर से मिट्टी लगे तो वह खेरने से खिर जाती है और सोने में तांबा मिलाया जाता है तो वह खोट कहलाता है। **सब दुखों का शिरच्छेदन (समूल नाश) आत्मावलोकन से होता है।** मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। अपने द्वारा ही अपना विचार करना चाहिये। अभी हाल चार-पाँच वर्षों तक तो खूब एकान्त में रहना चाहिये। फिर कुछ भी परवाह नहीं।

कुछ भी दीखता नहीं। चाहे हाथ कुछ भी न हो। तत्वज्ञ को आश्चर्य बुद्धि नहीं होती है।

यह गाय, यह घोड़ा- नानात्व को देखने से तुमको क्या मिला? तुम भी साक्षी की तरह सद्रूप को देखो। जिससे कोई सम्बन्ध न हो तो भी सम्बन्ध जैसा लगे, इसमें अज्ञान ही हेतु है। जितना दिखता है, उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। बड़े आश्चर्य की बात है कि जड़ एवं क्षणों में नष्ट होने वाले मन से समस्त जन समूह डरकर ठगा गये।

"यह परमात्मा है, वह परमात्मा है" इस प्रकार नहीं। "एक परमात्मा ही है।" "यह है, यह नहीं है" इस तरह करना परमार्थरूपता को भ्रांतियों से घटा देना है। **दृश्य पदार्थों का मनन करना ही मूढ़ता है। खोटी संगत नहीं करनी चाहिये। जिनको ऐसी कल्पना होती है उनसे सावधान रहना चाहिये। ताकि कोई भी अपने को बहका न सके। अपने को कुछ भी नहीं जानना है। भगवान अपने और अपन**

भगवान के भगवान भरोसे रहना चाहिये।

जैसे समय पाकर बीज महान वृक्ष बन जाता है और आकाश को व्याप्त कर लेता है, वैसे ही यह अपने संकल्प से ही उत्पन्न हुआ असत् विषय समूह काल पाकर चिदाकाश को व्याप्त कर लेता है। बार-बार संकल्प करने संवित् (चेतना जो वेदनाशील) संकल्पमय स्वरूप प्राप्त कर लेती है। तब वही इस जन्म जाल की बीजता को प्राप्त हो जाती है। बस हो गया। यह संवित जिसकी भावना करती है, तत्काल ही तद्रूप हो जाती है। सूर्य एक ही है फिर कहाँ धूप और कहाँ पानी और कहाँ प्रतिबिम्ब। वैसे ही वासना का अर्थ, देखी-सुनी चीजों में ऐसे ही लगना कि ये मेरी हो गई हैं। आगे इसी का अंकुर फूट कर पत्ते व डाली बनती हैं और मिट भी जाती हैं। **प्रयत्न से परित्याग, वासनाक्षय और मनोनाश। जब तक इन तीनों का भली प्रकार अभ्यास न किया जाये, तब तक सैंकड़ों वर्षों तक**

भी परम् पद की प्राप्ति नहीं होती। केवल बाह्य-विषयों में आसक्ति रखनेवाले मनुष्यों का संसर्ग छोड़कर या संकल्प छोड़कर समयानुसार प्राप्त हुए व्यवहारों का अनुष्ठान, सांसारिक मनोरथों के वर्जन से या शरीर में 'विनाशी है' ऐसी वृत्ति रखने से वासना प्रवृत्त नहीं होती। जब ज्ञान अपनी प्रकाशरूपता प्राप्त कर लेता है, तब ज्ञेय ब्रह्म का पूर्ण रूप से स्वतः उदय जाता है।

बाई-

ठीक तरह से जान लेने पर यह दृढ़ हो जाता है, फिर बस ये जितनी बातें हैं, वे विकार ही पैदा करने वाली हैं। अपनी बात कौनसी है प्रकृति की जितनी वस्तुएँ हैं उनसे हमें लेना देना कुछ नहीं है और न वे हमारी हैं। ऋषिकेश में तुलसी आश्रम है। वहाँ की मालकिन आई। अच्छी पैसेवाली है। उसका बेटा उसको पन्द्रह सौ रुपये महीना भेजता था। वह औरत उस आश्रम में बहुत सी औरतों को रखती है। रोटी

कपड़ा देती और भजन कराती। वह मुझसे आकर कहने लगी कि वहाँ चलो। आपको वहाँ की मालकिन बना दूँ। आठ-दस लाख का माल है, तो मैंने कहा कि मुझको नहीं चाहिये। उसने कहा कि जब बुढ़ापा आ जायेगा, तब घुटने नहीं चलेंगे, तब क्या करोगी, तब मैंने कहा कि ये अभी ही टूट जाएँ। उसने मुझे ले जाने की बहुत कोशिश की। पैंतीस साल पहले की बात है जो सारे संसार का मालिक है, वह इतनी तुच्छ चीज चाहता है कहीं? किसी समय बहुत खर्च आ जाता है, तो भगवान ही पार लगा देते हैं।

प्रश्न- ज्ञान और अज्ञान, अभ्यास और अनभ्यास क्या है?

उत्तर- ये तो सब अज्ञान ही है। है तो अपनी छाया ही, लेकिन वे ऐसे लगते हैं कि जैसे कोई दूसरा हो। वह ब्रह्म तो जैसा है वैसा ही है।

प्रश्न- चित क्या है? उससे विचार किस तरह करें

और उसके विचार से क्या होता है?

उत्तर- **विषयों की ओर झुकना ही चित्त कहलाता है। वास्तव में चित्त कुछ है नहीं।** स्वप्न में पानी भरा हुआ दिखता है, रोटी खाते, पानी पीते, मुँह में रोटी का ग्रास डालते दिखते हैं और जागने पर मालूम होता है कि अन्न का दाना भी नहीं है। ऐसे ही गप्प है। थोड़ा बहुत भी सार इसमें नहीं है। बिल्कुल व्यर्थ है। कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा।

बहुत ज्यादा अपने नहीं समझना है। दिमाग को शांत रखकर चुपचाप बैठे रहना है। भ्रम को किस तरह मिटाया जाये। अपने-आप ही मिटे तो मिटे। मिटता कुछ नहीं है। **जो बिना हुए लगता है, उसका क्या इलाज है?** भर्तृहरि को ऐसा घोर वैराग्य हुआ कि वे किधर भी नहीं देखते थे। जिस तरह मुँह करते, उसी तरफ चले जाते। भले ही पर्वत आवे और भले ही पानी। ऐसा करते-करते वे अपने राज्य में ही चले गये। जितने दाने सामने पड़े मिल गये, उनको चुन-

चुन कर खा लेते, वे किसी तरफ ध्यान तो रखते ही नहीं थे। उस दिन राजा विक्रम की सवारी निकली। हटो-हटो कहकर जो आदमी रास्ते के लोगों को हटा रहा था, उसने उनको धक्का दे दिया। वे कमजोर तो थे ही, इससे तीन गुलांछ खा गये और उनके पास जो अन्न के दाने थे वे भी बिखर गये। उनको गुड़कते हुए विक्रम ने देख लिया और सोचा कि ये मेरा भाई तो नहीं है। उसने हाथी पर से उतर कर उनको देखा और महल में ले गए। वे तो यह सब देखते ही रहे। विक्रम ने कहा कि भोजन करो तो भर्तृहरि उस भोजन के पास होकर निकल गये। वे पत्थरों में बैठ गये । "होगा", ये किसी के भी नहीं है। कितने ही चले जावेंगे ।

महाराज शिवदानसिंहजी-बाई, प्रेम के वास्ते कुछ कहिए ।

उत्तर- प्रेम किससे करें? मुझसे गलत बात कही नहीं जाती है। एक परमात्मा ही है। रामायण में आता

है कि लव-कुश, रामजी के प्रतिबिम्ब थे। बाप जैसे ही बेटे। एक परमात्मा ही है। कर्ता अपना स्वभाव ही खो देवे तो स्वभाव को किस तरह खोवे। प्रकृति अपना स्वभाव त्यागकर भगवान की सेवा करती है। मैं सुदामाजी महाराज के पास गयी थी। उन दिनों उनको दस्तें लग रही थीं। बद्रीनाथ से आये थे । मैंने कहा- बावजी, दवा लो कहीं मर जाओगे। तो बावजी ने कहा अन्नदाताजी, अपन नहीं मरते मरे हमारे दुश्मन । अपन तो समावेंगे। देखो अपना शब्द कितना अच्छा है। (समा जाना मेवाड़ी भाषा में मरने के लिये प्रयोग होता है) "भगवान में समावेश हो जाना" इस शब्द से मरने का वर्णन करना अच्छा है।

बाई- यह अपने अन्दर जो कलकलाहट लग रही है, यह अपने में तो नहीं है। पर लगती अपने भीतर ही है। अपने ही भीतर हो तो अपन देखें किस तरह। यह कल्पना अपने में से ही निकली है। यह प्रकृति है। कल्पना भगवान का स्वभाव है। देखो। अपन

भगवान के हैं तो भगवान जैसे ही हैं जो जिसके बालक होते हैं वे उसके समान ही होते हैं (वृक्ष, मनुष्य, पशु)। अपने को जाने बिना वह समझ में नहीं आवेगा। यह संसार कभी नहीं कहता है कि "मैं हूँ।" अपन ही "ऐसा है- वैसा है" कहते हैं। घर अपन बनाते हैं, चीजें वस्तुएं अपन लाकर रखते हैं। अपन अकेले हैं। अपनी बात कोई सुनने-समझने वाला नहीं है। इस शरीर से बड़ी अड़चन लगती है। ऐसा मन करता है कि इसके टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दे। रोज-रोज खाना, रोज-रोज सोना, यह क्या इल्लत है?

योगवाशिष्ठ में आता है कि अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ। सो कालीदासजी यह बताओ कि पहले किसके स्वरूप में स्थित थे।

कालीदासजी - अपन स्थित नहीं थे।

बाई- मैं यह नहीं कहती कि किसी स्वरूप में स्थित नहीं थे।

कालीदासजी- आप तो सब कल्पनाओं पर पानी फेर देते हो, एक ही ध्रुव सत्य से इधर-उधर नहीं डिगते हो।

बाई- सब जैसे पत्थर के लड़के से बात करते हैं, प्रश्न और उत्तर करते हैं, यह सब ।

कालीदासजी- पत्थर का बना लड़का ! पत्थर के बने लड़के से कैसे बातें करें?

बाई- ऐसा तो नहीं होता है। जड़ और चेतन बातें करते हैं और कोई है ही नहीं। इसलिये मन बहलाने के लिये बात करते हैं। भगवान को ही भगवान का आभास होता है। जैसे आग पर तपेली हो, उसमें पानी पड़ा हो तो वह किस तरह गरम हो जाता है। अब वहाँ से अग्नि को हटा दो तो जब तक अग्नि की सत्ता पानी में है, तब तक वह गरम रहेगा। वैसे पानी की तासीर तो ठण्ड की 1

सब में सुख - दुःख का अनुभव करने वाला परमात्मा है। इसलिए किसी को कटु वचन नहीं

कहना। कोई कुछ कहे, दूसरा कुछ कहे, सबकी सुन लेना किसी का जी न दुखाना। 'ऐसा हुआ' 'ऐसा किया' इसको जानने वाला परमात्मा है। मैं बालक हूँ, मैं जवान हूँ, वे सब दिन कहाँ गये। ऐसे ही ये दिन भी कहीं चले जायेंगे। हाथ कुछ आना नहीं है। कोई सार नहीं है, किसी भी चीज में। ऐसे ही समझकर रहना चाहिये।

प्रश्न- यह चिड़िया आकर मेरे साथ रोटी खा गई।

उत्तर- सबमें जानने वाला परमात्मा है। पर मनुष्य शरीर में ही ज्ञान है, दूसरों में नहीं। परमात्मा कुछ करता नहीं, वह केवल देखता है, जिससे यह प्रकृति सब कुछ करती रहती है। वह जानता है कि यह ऐसा कर रही है। अपना अनुभव कहने में कोई समर्थ नहीं है। किसको कहे। मैं अभी अकेली बैठी हूँ। यह चटाई, यह बक्स यह क्या समझें। ये तो सब जड़ है। मैंने देखा नहीं, पर सुना है कि मिल में सूत कातते हैं, गोटे बाँधते हैं, कपड़ा कई तरह का बनता है।

ड्राईवर तो मिल की केवल मशीन चलाता है। देखना मशीन चलाने जैसा है।

इसी तरह यह प्रकृति तो सब कुछ करती रहती है। परमात्मा तो सब देखता रहता है। अपना भी धर्म यही है। देखना मात्र है, जैसे युधिष्ठिर छः महीने तक ठहर गये। अपना धर्म यही है कि अपने को जान लेना है।

एक आदमी श्रीरामकृष्ण के कपड़े धोता था, वह कुछ समझता नहीं था। दूसरे लोग उसकी हँसी करते थे। एक दिन वह रामकृष्ण के पीछे-पीछे आ रहा था। उसके पग की आवाज सुन करके रामकृष्ण ने पूछा कि कौन हैं? तो उसने कहा कि 'मैं' तब श्रीरामकृष्ण ने कहा कि या तो सब 'मैं' ही बन जाए या सब 'मैं' पन मिट जाए।

बाई- मेरी माँ को चारभुजाजी का बड़ा इष्ट था। मेरे पिता बहुत बीमार हो गए तो चारभुजाजी के मन्दिर में जाकर प्रार्थना की तो वे अच्छे हो गए।

परमात्मा तो सबमें ही है। पत्थर में भी है। न हो तो यह छत भी गिर पड़े। परमात्मा सब जगह है। परन्तु भाव से ही प्रकट होता है। देखो न यह संसार भाव से ही प्रकट हुआ है।

किसी को भी अच्छा या बुरा नहीं कहना अच्छा-बुरा कहने से अपनी वृत्तियाँ वैसी ही हो जाती है। अच्छे से अच्छी वृत्ति और बुरे से बुरी वृत्ति । अच्छा और बुरा कुछ है नहीं । केवल परमात्मा ही है तो फिर व्यर्थ ही समय क्यों बर्बाद करें। अपने हाथ न तो कुछ आया है और न आना है। आना नहीं है। जोशीजी, महाराज साहब, कालीदासजी, नाथूलालजी, ये तो इनका ध्येय है, इससे नहीं डिगते। ऐसे तो कोई नहीं डिगता । शरीर आदि तो परमात्मा की शक्ति से हिलते हुए दिखते हैं। पर अपने ध्येय से डिगना नहीं चाहिए।

अपने शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि बारह वर्ष तक एकान्त में रहना चाहिये। मनुष्य का मुँह नहीं देखना

चाहिये। बारह महीने तक ही रहो। बारह महीने की बात ही छोड़ो शुरू में बारह दिन भी रहें तो सब अच्छा हो जावे।

एक बखताजी संत थे। बकरियाँ चराते और नाचते थे। जंगल में कोई साधु चला गया तो उसने कहा कि भगवा कपड़े पहिन लो और साधु बन जाओ। उसने कहा अन्नदाता, ऐसा होऊँ तो पहिनूँ। उनका घर तो आधा खुला पड़ा था। उसमें हवा से चँवले उड़कर गिर गये, उन पर बरसात हो गई। पौधे उग कर उन पर एक फली और एक सिट्टा भी लगा तो बखता जी उनसे बात करते हुए बोले अन्नदाता! आपने यह क्या रूप धारण किया?

मैं-मैं करता है, पर कहे किसको। दूसरा तो कोई है नहीं। यह परमात्मा ही है। बात सीधी बहुत है छोटी सी बात है और कठिन भी बहुत है। शास्त्रों में पढ़ लिया, किसी से सुन लिया, परन्तु इससे काम चलेगा नहीं। अपनी इच्छा वास्तव में क्या है यह

अपनी बात अपन ही जानते हैं। थोड़ी सी भी प्रसन्नता किसी भी वस्तु में नहीं रहनी चाहिये। अपना कुछ बिगड़ा नहीं। संसार के साथ लगना और ममता बढ़े जैसा काम करना ठीक नहीं। इसको नहीं छोड़ेंगे तो भी एक दिन यह छूट ही जायेगा। इसमें मुश्किल कुछ नहीं।

मावली में एक मुन्सिफ उमरावसिंहजी महता है, उनको घोर वैराग्य आ रहा है। थोड़े दिनों में वे साधु हो जायेंगे।

प्रश्न- साधु क्यों हो जायेंगे?

उत्तर- साधु होना एक बात में तो बहुत अच्छा है। कुटुम्ब से दूर हो जाता है, किन्तु किसी साधु के बहकावे में आकर साधु न बने तब तो ठीक है। देखो, तारा, बाली को मरा हुआ पड़ा देखकर बहुत रोई तो भगवान ने कहा कि तू किसको रो रही है। अगर तू शरीर के लिए रोती है तो शरीर तो तेरे सामने पड़ा हुआ है। यह अभी जरा भी खंडित नहीं हुआ

है और शरीर को हिलाने-चलाने वाले के लिए रोती है तो उसका तो कभी नाश होता नहीं है। वह तो तुम में और सब में ही है। उसको तुरन्त ज्ञान हो गया। अपने सामने तो बहुत से मर जाते हैं। अपने तो रोये और वैसे के वैसे ही रहे।

जनमेजय को सारी महाभारत व्यासजी ने सुनाई । तब जनमेजय ने कहा- महाराज! आप जैसे थे तो भी ऐसा क्यों होने दिया। तब व्यासजी ने कहा प्रारब्ध में जो होता है, वह मिट नहीं सकता है और न कोई उसको मिटा सकता है।

जनमेजय ने कहा कि क्या कह देने पर भी वह वही करता है जो होना होता है। अच्छा तो आप मुझे बतावें कि मेरा क्या प्रारब्ध है, व्यासजी ने कहा- सुनो। उसने कहा- हाँ सुनता हूँ। देखो, सौदागर घोड़ा लावे तो देखना मत। देखना तो बैठना मत। बैठना तो उत्तर दिशा में जाना मत। जाना तो वहाँ एक स्त्री अकेली मिलेगी, वह विवाह करने को कहे

तो विवाह मत करना। विवाह करना तो यज्ञ मत करना। यदि यज्ञ करो तो जवान ऋषि-मुनियों से मत कराना। क्रोध करना मत। क्रोध आ जाये तो शस्त्र मत उठाना। पर तू यह सब करेगा और तेरे कोढ़ निकलेगी। यह सब उसने किया और वह सब हुआ। प्रारब्ध शरीर है, जो है, शरीर मिटेगा और बस अपने को कुछ लेना-देना नहीं।

जड़भरतजी ने भीतर तो देखा नहीं बाहर छोटे से मुँह वाले और छोटी आँख वाले हिरण के बच्चे को देखकर उस पर दया की। जिसका इतना विस्तार भोगा। जानने वाला सबमें है। यह शरीर तो बेचारा समझता नहीं है। प्रतीति करने वाला, तो परमात्मा है। सुख-दुःख तो वही जानता है।

एक देश से दूसरे देश में पलक भर में गयी हुई संवित के मध्य में (संधिकाल में) जो शान्त स्वरूप है, वैसा ही चिदाकाश कहा जाता। एक मोर को उड़ता देखकर देखो। यह शरीर और इस शरीर को

धकेलने की शक्ति यह सबमें समान है। देखो! यह धूप भी सबको प्रकाशित करती है। सूर्य तक तो कोई पहुँचता ही नहीं है। एक भगवान और भगवान की शक्ति ऐसे ही धूप और सूर्य। जब मूल ही झूठा है तो डाल - पत्ते क्या? जब यह शरीर ही झूठा है तो इसके काम सच्चे कैसे होंगे। इच्छा किसी को भी नहीं रहनी चाहिये। ये बातें तो काम आयेंगी नहीं। सब माने हुए हैं। एक परमात्मा ही है।

एक दफा इसका पता लगा लेना कि यह सब कल्पना है। फिर इसके सामने गौर से नहीं देखना। जितनी सी उड़द पर सफेदी है, इतना भी सन्देह नहीं रहना चाहिये।

जोशीजी ने कहा- ये गणेशजी तो अभय दान ही देते रहते हैं।

बाई- ऐसे सब ही है। हाथ लगाओ तो दीवार है। भगवान बनावें और भोग लगावें। सब मन से किया जाता है। ये बालकों के खेल कहाँ तक खेलते रहोगे।

जानकर भी खड्डे में पड़ना ही पाप है। जहाँ तक दृश्य की निवृत्ति बिल्कुल न हो जाये, वहीं तक गुरु और शास्त्र की जरूरत है। फिर नहीं। अपने को बहुत समझना नहीं है। यह सबको धकेलने वाली शक्ति सब में एक है। परमात्मा एक है। आप ही अपने आप से प्रश्न और उत्तर करता है। जानने वाला दूसरा है नहीं। 'नाचहि निज प्रतिबिंब निहारी।' आप ही अपनी छाया से डरे और आप ही अपनी छाया को पकड़े। आप ही अपनी छाया को देखकर नाचता है, चुपचाप होकर बैठ जावे जब है। यह अपना ही प्रतिबिम्ब बाहर पड़ता है और वापस अपने में दिखता है जिससे ऐसा ही लगता है। वैसे बाहर और भीतर कुछ नहीं है। ऐसा ही लगता है।

एक महात्माजी थे। उनका ऊँट मर गया। उन्होंने तीन दिन तक खाना-पीना बन्द कर दिया और उस ऊँट के पास बैठे रहे, उसको उठाने की कोई चेष्टा नहीं की। उन्होंने कभी किसी को मरा हुआ देखा था

नहीं। एक आदमी ने उनके पास आकर बतलाया कि यह तो मर गया है। उन्होंने कहा कि क्या मर गया है? अब यह उठेगा नहीं क्या? तो उसने कहा कि यह पंचतत्व का बना हुआ है। एक तत्व भी इसमें कम पड़ जाता है, तब यह मरता है। इसमें धकेलने वाली शक्ति है वह भगवान की है, वह नहीं मरती है। वशिष्ठजी ने कहा कि मन और बुद्धि ये कुछ नहीं है, इनको नहीं गिनना। ये कुछ नहीं। यह जो कुछ दीखती है, यह सब अपनी ही कल्पना है और यह सब जड़ है। अपन ही इसको नाम देते हैं। अपने वश में कुछ नहीं है। **ये अहंकार उठता है और सब आ जाते हैं।** शास्त्र में ऐसा कहा है कि पाप लगता है। यह ऐसे ही लगता है। सामने वाले की बात सुनते है तो वैसी ही वृत्ति हो जाती है। उसकी बात दूसरों को कहें, तब वह भी वैसी ही कल्पना करता है। कहने पर वह उसके जैसा ही जाता है। योगवाशिष्ठ में कहा है कि कुसंग और विषयों से दूर रहना चाहिये। इससे

अज्ञान का असर नहीं होता है।

मेरा कहना मानो तो थोड़ा भी इस संसार में सार मत देखो। यही वासना है। यह जो आसन है, यह पाँच मिनट बैठने के काम आयेगा। संसार के लिए इतना भी मत जानो। संकल्प ही शरीर है। जैसे घड़ी खटखट आवाज करती है, तब तक वह घड़ी है, इसकी खटखट मिटी और फिर घड़ी नहीं। ऐसे ही संसार को माथे से निकाल दो। एक दफा देख लो, फिर चुपचाप होकर बैठ जाओ। यह करना, देखना, सुनना कुछ नहीं। किसी ने यह कहा है कि यह संसार क्या है और किससे बना है, जब उन्होंने पता लगाया तो मालूम हुआ है कि अपने में से ही निकला है। अब मानो हमने तस्वीर बनाई। ऊपर रंग और नीचे कागज, वह अपने को सुख-दुख किस तरह दे सकती है? यह सब गप्प है। अपना विचार अपने को ही करना पड़ेगा।

प्राणी मात्र के लिए अलौकिक प्रेम

मैं महाराज चतुरसिंहजी के पास गई तो उन्होंने पूछा- बाई, छिपाना मत, सच बताना । परमात्मा क्या है? मैंने निवेदन किया कि सबमें जो जानता है, वही परमात्मा है। महाराज साहब बहुत खुश हुए। इसमें छिपाने की क्या बात है? यह स्पष्ट है । खोटे लोगों के साथ नहीं रहना चाहिये ।

श्रीनारायण स्वामी ने कहा कि पाँच सौ माला फेरो तो एक महीने में भगवान दर्शन दे दे। तब बाई ने कहा कि मुझे दर्शन नहीं करना । कितनी ऊँची बात है। दर्शन देनेवाला और करने वाला दो हो जायें, जबकि हैं नहीं। जानने वाला अकेला ही एक है। **यह प्रकृति मन रूपी कलम से लिखने लगती है। नहीं तो अक्षर न तो स्याही में है, न कलम में और न कागज में है, पर दिखते हैं। देखने वाला द्रष्टा**

देखता है। उसे इन वृत्तियों में न राग होता, न द्वेष होता है। वह उदासीन भाव से देखता है। राग-द्वेष, हर्ष-शोक ये वृत्तियाँ ही होती है और वृत्तियों का कोई रूप नहीं । केवल देखने से दिखती हैं। यह नहीं भूलना कि प्रकृति को धक्का देने वाला परमात्मा है। जैसे यह किताब खोलें और उसमें अक्षर दीखने लगे। इस तरह वह स्थूल नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है। पुस्तक खोलने से न तो आता है और न बन्द करने से जाता है। तो **जिससे आकाश भी जाना जाता है। वह कितना सूक्ष्म होगा।**

भगवान का भजन करना । नाम लेना जब तक कि यह अहं उठता रहे। भगवान बड़े दयालु हैं। उनके ही भरोसे होकर रहने से वे सब अपराध क्षमा कर देते हैं। मनुष्य तो द्वेष रखते हैं।

एक बार थलियों (रेगिस्तान) की तरफ से मनुष्य मालवे गये। फिर बरसात हुई तो आये। एक आदमी ने कालीदासजी से कहा कि एक रुपये का आटा

दिला दो। उन्होंने दो रुपये का दिला दिया। मैंने पूछा कि इतनी देर क्यों की? उन्होंने कहा पच्चीस मनुष्य हैं और भूखे हैं, कपड़े नहीं है। पैदल चलकर आये हैं मालवा से मुझे बहुत रोना आया सो मैं रोई। जो स्त्रियाँ हमेशा आती हैं, वे पूछने लगीं कि क्यों रोती हो? मैंने सब कहा। रुपया और कपड़े सबने ला लाकर दिये। उनको भोजन के अलावा भाड़ा भी दे दिया गया। मुझे तो भगवान ने ऐसी निर्धन बनाई है।

एक साधु मर गया। उसका भण्डारा करने के लिए उसका चेला मांगने आया। स्त्रियों ने उसको सब दिया। एक लड़का आया, उसकी बहन बहुत बड़ी हो गई थी। वह अपना मकान बनिए के गिरवी रखने गया। बनिया कालीदासजी के पास खत लिखाने के लिए आया तो कालीदासजी ने लड़के को यह कहा कि तीन वर्ष से घर छुड़ा लेना। लड़के ने कहा कि मैं तो सारे जीवन में भी घर छुड़ा नहीं सकूंगा। तब वह बनिया रुपया देने के वास्ते इंकार हो गया। उसने

कहा- नहीं दूंगा। तब वह लड़का रोने लगा । मैंने पूछा कि क्या हुआ। तो वह रोने लगा। वह कहने लगा कि मेरी बहिन तो बड़ी हो गई है, अब मैं क्या करूँ ।

मैंने पूछा कि भाई, तेरा घर कहाँ है? फिर वह बता कर चला गया। मेरे पास एक लकड़ी थी। उस लकड़ी में सोने की मूठ थी । दीवानशाहजी नामक साधु थे, उनके एक चेले ने महाराज को वह भेंट की थी। जब वे बहुत बीमार हो गए थे, मैं उनकी तबीयत का हाल पूछने गई थी। लौटते समय मुझे रात हो गई। महाराज ने कहा कि रास्ते में कुत्ते मिलेंगे तो इस लकड़ी को ले जाओ। मैं वह ले आयी और अपने घर में जहाँ जूते उतारते हैं, वहीं पर उसे रख दी। दो-तीन- दिन तक वह वहीं पड़ी रही। जब नाथूललालजी ने देखा तो बताया कि इसमें सोने की मूठ है। मैंने कहा इसका मैं क्या करूँ? तो नाथूलालजी ने उसे कच्ची छत के बाँसों में खोंस

दी। एक दिन दीवानशाहजी आये। मैंने पूछा बावजी, इस लकड़ी का क्या करें? उन्होंने कहा, भगवान को जो करना होगा, वे करेंगे। ऐसा कह कर वे चले गये। देवकिशन सोनी को वह लकड़ी बेचने

महात्मा श्री भूरी बाई एवं आचार्य रजनीश (ओशो)

को दी, उसका दो सौ छः रुपया आया था। इतने में माँ साहब आ गये। उन्होंने कहा कि यहाँ पर ये रुपये किसके रखे हैं? मैंने कहा- ये यहाँ रखे है। इतने रुपये और घटते हैं वे अपने घर से बाकी रुपये ले आये और गाँठ बाँधकर छिपाकर उस लकड़े के पास ले गई। पर उस लड़के का घर मुझे मिला नहीं नही। वह मोटर पर काम करता था। छः रुपया तनख्वाह पाता था। वहाँ से मैंने बुलवाया, तब वह आया। तब मैंने कहा चलो तुम्हारे घर चलो। उसने

कहा कि मुझे छुट्टी होगी, तब आऊँगा। उसने मुझको घर बता दिया। मैंने आवाज दी तब उसकी पड़ोसिन ने लड़के की बहन से कहा कि बाई तुम्हारे घर आई? उसने आकर किवाड़ खोला।

उसके पास पहनने के कपड़े भी नहीं थे। सो वह लड़की छिपकर बैठी रही, इतने में वह लड़का आ गया। मैंने उससे कहा कि ले भाई इससे अपनी बहिन का ब्याह कर ले। उसने कहा कि यह घर गिरवी रख लो। मैंने कहा- मैं घर का क्या करूँ? यह रुपया तो भगवान ने भेजा है। मेरे पास रुपये कहाँ से आये। यह सुनते ही वह उसकी माँ और बहिन जोर-जोर से रोने लगे। मैं भी रो पड़ी और पड़ोसी इकट्ठे हो गये। इसलिए मैं उसके घुटने के नीचे रुपये सरका कर चली आई।

प्रश्न- क्यों?

उत्तर- किसी को पता लग जाये तो कई मनुष्यों का स्वभाव होता है कि किसी का भला हो रहा हो

तो वह उनको अच्छा नहीं लगता। बाद में कह सुनाते हैं। तभी तो कहते हैं कि कोई किसी का नहीं होता। यह संसार ऐसा ही है, परन्तु वह वैराग्य नहीं है। संसार से चिढ़ जाना है।

ज्ञानदेवजी वृक्ष के नीचे बैठे थे, तब चांगदेव शेर पर बैठ कर उनके पास आये। ज्ञानदेवजी से किसी ने कहा। तब वे जिस चबूतरे पर बैठे थे, उसको नीम के पेड़ समेत चला कर चांगदेव का स्वागत करने गये। इसका आशय चांगदेव समझ गये और ज्ञानदेवजी के पाँवों में पड़ गये। इसका अर्थ यह है कि तू चेतन को चलाता है और स्वयं जड़ है। मैं चेतन हूँ और जड को चलाता हूँ। मेरा रूप चैतन्य है और तू जड़ को अपना रूप मान रहा है। ज्ञानदेवजी ने कहा- तेरा-मेरा पन छोड़ दो। वे दण्ड के समान सब शिष्यों के सामने उनके चरणों में पड़ गये।

एक आदमी घर में रहता है, घर उसके शरीर पर कहीं चिपका हुआ दिखता नहीं है। लेकिन उस घर

को अगर कोई आदमी पत्थर से ठोक-ठीक कर गिरावे तो उसको कैसे गिराने देवे। अब इस शरीर के मालिक जानने वाले अपन ही हैं। अब इस शरीर को राग-द्वेष रूपी शत्रुओं को किस तरह गिराने दें और शरीर को कोई चुभती बात कहे तो अपने उदासीन द्रष्टा हैं तो अपने को क्यों दुःख हो? क्योंकि अपन शरीर तो हैं नहीं। इस शरीर को कोई कमी बतावें क्योंकि कोई शरीर अच्छा, कोई शरीर बुरा तो कोई किस तरह का अपने-अपने सब गुण दोष हैं। पुरुषार्थ यही है कि काम, क्रोध आदि को नहीं आने देना। जब शरीर से अन्य क्रिया सब होती है तो इनको रोकने की क्रिया क्यों नहीं होती और नहीं होती तो क्यों नहीं होती? या फिर चुपचाप बैठें। जैसा होता हो होता रहे। अपन पंचायत क्यों करें?

यह स्वभाव है कि जब एक आवे तब दूसरा भी आवे। नहीं तो सब समान है, तो राग-द्वेष किससे? अपने स्वरूप का ध्यान रहे तो दुःख-सुख, भला-

बुरा प्रकृति का धर्म कौन धारण करें और दुःख-सुख होवे, जिसे कौन भुगते। शरीर की बात नहीं करनी। इस शरीर को जो देखता है, वही अपन है। इसका ध्यान रखना चाहिये। इनको जाननेमें संकल्प-विकल्प क्यों उठते हैं? क्योंकि आगे कारण है, इसलिए पानी, गिलास, कलशी आदि की जरूरत क्यों है? प्यास है इसलिए ऐसे ही अन्न की जरूरत क्यों होती है क्योंकि भूख लगती है। अपन शरीर कभी भी नहीं है। अपन जब बालक थे, तब किसी के मारने पर अपने को दर्द होता, लेकिन, उसका शोक नहीं होता था। नंगे फिरते थे, लेकिन संकोच नहीं होता था। जब अहंकारी व्यक्ति ने कहा कि तू नंगा है और तुझे ठण्ड लगेगी, अच्छा कपड़ा पहन ले, सुन्दर लगेगा, इस प्रकार शरीर का भाव जागृत होता रहा, जिससे हम शरीर बन बैठे। पहले नहीं था, चार दिन पीछे रहेगा नहीं, तो अपने स्थायी रूप से शरीर किस तरह बन बैठे? भूख लगे तो भूख मिटाने

का काम करो, 'अच्छा या बुरा' ऐसा भाव भोजन में मत करो। कोई लड़ते हों तो लड़ाई का कारण समझ कर उनको दूर करने की कोशिश करनी चाहिये। हमेशा अपने में स्थिर रहना चाहिये।

प्रश्न- जीव क्या है?

उत्तर- जीव और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। काम करता हुआ तो जीव और घर में बैठे तो वह ईश्वर। जैसे एक ब्राह्मण फौज में नौकर हो, वहाँ तो वह जो काम है, उसको करता है और घर आकर वह ब्राह्मण का ब्राह्मण हो जाता है। जैसे अपन गुड़िया से खेलें और उससे बात करें। वह तो न चलती है और न खाती है। इस मशीन के पुर्जे की तरह है। यह भावना कौन करता है? वह स्वयं। ऐसे ही यह शरीर कुछ नहीं जड़ है। इसको चैतन्य द्रष्टा देखता है, जिससे चैतन्यवत् दिखता है। ब्रज के पंडितजी ने कथा में कहा- "भगवान, राधिकाजी के विरह में बहुत व्याकुल हुए और उनकी नजर पड़ने से बेहोश

हो गए।" देखो, अपनी थोड़ी सी गलती से कितना दुःख देखना पड़ रहा है।

प्रश्न- प्रकृति क्या है?

बाई- तीनों गुणों का एक गोटा है। उसी में से ये तीनों गुण प्रक्ट होते हैं। जैसे पृथ्वी में से वृक्ष प्रकट हुए। जैसे यह चिमटा, इसको पकड़ कर फेरें और उठावें। जिस शक्ति से वह हिलता है, वह अपनी है। वह हिलता है जिसे अपन जानते हैं, परन्तु अपन नहीं हिलते हैं। यहाँ 'अपन' शब्द आया है, उसका अर्थ द्रष्टा से है। 'शरीर' का नहीं समझना चाहिए। हृदय ऐसा निर्मल हो जाए जैसे छोटे बच्चे का और अन्त में भगवान की शरण में हो जाना हैं भगवान आपकी जैसी मर्जी हो, वैसा करें। ध्यान तो अपने स्वरूप का ही करना। हाँ, जैसा पहले समझते हैं, वैसा कह देते हैं।

ईश्वर के अलावा जो कुछ बरतता है, वह अधर्म ही है। मेरे तो यह समझ में आता है कि भगवान के

भरोसे हो जाना चाहिए। वे जैसा करें वैसा करें। “मैं करता हूँ”, यह नहीं सोचना चाहिये। शरीर है, तब तक उसके कर्म तो होते ही रहेगे। यह बात हृदय में सोचना, बाहर नहीं करना चाहिए। मैं शरीर नहीं ऐसी बात कह कर ज्ञानी नहीं बनना है। भीतर से ही इस विचार को दृढ़ करना है। सामने जो आवे उसका ही प्रतिबिम्ब आत्मा पर पड़ता है। हमेशा अच्छे मनुष्यों में बैठना, बुरे लोगों में नहीं बैठना और दूसरों के अच्छा-बुरा कहने की परवाह न करना। मनुष्य मर जाय, उसकी चिंता नहीं होनी चाहिए। आत्मा का ही ध्यान रखना चाहिये। अगर शरीर का महत्व या वास्तविकता होती है तो उसको नहीं जलाते।

महात्मा गांधी ने कहा, उस बात को लोग समझे तो नहीं, पर कहते हैं, सबको समान समझो। वे तो कहते थे कि ज्ञान सबमें समान है। यों शरीरों को समान समझें तो देखें साँप के साथ बैठक कर खाओ या शेर के साथ खेलो।

कुसंग का प्रभाव- मैं सरदारगढ़ अपने घर में दरवाजे पर बैठी चरखा कात रही थी, तब एक औरत आई उसने बात की, वह नाते गयी हुई थी। उसको मैंने कुछ नहीं कहा सिर्फ सुनती रही। बात सुनने के प्रभाव से मुझे स्वप्न आया कि मैं नाते चली गयी। सपने में सोच रही थी कि मुझको लोग क्या कहेंगे? नाथूलाल भाई कहाँ जायेंगे? थोड़ा कहीं से जहर तलाश किया ताकि उसे खा लूँ। फिर स्वप्न में जिसके साथ नाते गयी थी, उसके साथ मानों जंगल में जाती हूँ। कहीं कुआँ वगैरह में कूद जाऊँ। मैं ऐसा सोच कर स्वप्न में रोने लगी तो मेरी माँ ने सुन लिया और मुझे जगा दिया। मैंने सपना बताया फिर वह सो गयी। फिर उनको स्वप्न आया कि देखो, मैं कितनी बुढ्ढी नाते आयी। तीन जवान बेटे मर गये। ऐसा सोच करने लगी और नाथूलाल भाई ने यह बात सुनी तो उनको भी स्वप्न आया मैं स्त्री नाते लाया हूँ और नाते वाली स्त्री को लेकर बाजार में चीज

खरीदता फिर रहा हूँ।

बाई के पति जीवित थे, तब की बात है। गायों वालों ने रात को आकर कहा था कि घास नहीं और गाय ब्यायी है। बाई सुबह वहाँ गई नौ-दस बछड़े थे, उनको आगे कर लिए और वह जो नया जन्मा हुआ बछड़ा था, उसको पीठ पर उठा लिया। तीनों गायें पीछे-पीछे आयीं। धूप बहुत चढ़ गई। प्यास के मारे गला सूखने लगा। बछड़े ने भी जीभ निकाल दी, बाई एक पेड़ के नीचे बैठ गई। विश्राम करने लगी। गायें और बछड़े भी वहीं पर खड़े रह गये। इतने में उधर से श्रीनाथजी के फलों की गाड़ी आ रही थी, सो तीन नारंगियों उनमें से निकल कर नीचे गिर पड़ी। बाई ने उनको उठाली और दो-तीन फांक उनमें से खाकर बाकी गाय और बछड़ों को दे दिया। फिर वहाँ से चली। रास्तें में न मालूम किसी को लूटकर चोर जा रहे थे। आठ-दस चोर थे। बाई को पता नहीं था कि ये चोर हैं। उन्होंने बाई को पूछा कहाँ जा रहे

हो? बाई ने कहा तुम्हें क्या काम है। बाई सब गहने पहने हुए थे। वे लोग तो यह कह कर चले गये और पीछे से फिर तीन जने आये और वे भी गये। फिर पुलिस की चौकी आई जहाँ एक सिपाही खड़ा था। उसने बाई से कहा अभी तो वे चोर आपको लूट लेते। इस रास्ते इस वक्त क्यों गयी? उसके बाद तो मैं अकेली जाती डरती हूँ। औरत की जात हूँ।

बाई विधवा हो गयी और बारह दिन में ही केश कटा डाले। फिर सरदारगढ़ से उनके पिताजी आए। उन्होंने बाई के देवर के लड़कों से लड़ाई करके पाँच सौ रुपये का जेवर दिलाया। फिर पडोस की औरतें आयीं और कहा कि इसको ठीक से रखना नहीं तो कोई ले जायेगा। बाई ने उनको घास के अन्दर छिपा दिया। रात को वे लेटी हुई थी तब खटका हुआ कि नीचे चोर हैं, वे कुछ ले जायेंगे। वे नीचे गयी और जेवर तलाश किया तो नहीं मिला। फिर तख्त रखकर उसके ऊपर चढ़कर देखा तो कपड़ा हाथ में

आया। जिसमें जेवर बंधा था, उसको खेंचकर बाहर निकाला। फिर विचार किया कि मेरी तो छोटी उम्र है, इस जेवर से जिन्दगी निकलनी नहीं है। इसके सम्भालने का ही सोच रहेगा। जो भगवान को करना होगा, वह होगा। यह सोचकर सुबह होते ही जेवर बेच दिया और ब्राह्मणों और साधुओं को भोजन करा दिया। नकल ईश्वर के सामने काम नहीं देती है। यह संसार कैसा है? जमीन पर हाथ फेर कर मिट्टी की लहरें बनाकर बताई ऐसा है। ऐसे तो जप, तप, बहुत हैं पर अपने काम के नहीं। मगर भजन जरूर करना है। शरीर है, तब तक इससे कर्म ठीक होता रहना चाहिए। आत्मा में उसका प्रतिबिम्ब पड़े जैसे क्रोधी, लोभी, झूठे के पास बैठेंगे तो वैसी ही प्रवृत्ति उठेगी। जहाँ तक हो सके ऐसे लोगों के पास नहीं बैठना चाहिये।

प्रश्न- संसार वालों से कैसा व्यवहार रखना चाहिए।

उत्तर- बाहर से तो ऐसे रहना कि लोग यह समझें कि यह इसी में रचा-पचा है और मन में उससे निराश हो जाना। इस संसारियों को जितने ध्यान से देखेंगे, उतनी ही इनसे घृणा होती जायेगी। इनके स्वार्थ की थोड़ी सी भी हानि होती है तो ये आपे से बाहर हो जाते हैं। सब अच्छे ही हैं। जितनी बातें हैं, सब फालतू हैं। अपनी तो बात कोई है नहीं और न होनी है। सब बात प्रकृति की है।

प्रश्न- मन क्या है?

उत्तर- मन कुछ नहीं है। क्या आज तक उसे गेंद की तरह लुढ़कता हुआ किसी ने देखा है। ऐसे ही मान लेते हैं, ये वृत्तियाँ और संकल्प इसलिए हैं कि यह शरीर है। यह जो हिलना-चलना है, यह नहीं रहे तो यह शरीर नहीं रहे। जैसे यह कैमरा है, इसमें ममता बढ़ गई। कहीं इस कैमरे पर कोई पांव न रख दे, खराब न कर दे। इसी प्रकार इस शरीर से ममता है और कुछ नहीं। भरतजी रामजी से मिलने के लिए

पधारे तब "छन मह सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना।" किसी को भी यह समझ में नहीं आया। यह कुछ नहीं है। देखो न यह कुछ हो तो ठहरे। बनता है और बिगड़ता है। एक उठा और एक मिटा। कुछ हो तो रहे । ऐसा ही झूठ-मूठ का खेल है। कोई साधु कुछ भी कहे, सुन लेना पर ध्यान नहीं देना । आत्म साक्षात्कार की बात कहते हैं, पर वह हो किस तरह अपने को अपन किस तरह से देखें। अपन तो हैं ही सब अपन ही हैं।

निर्भय रहना। किसी की परवाह न करना । अपने तो एक परमात्मा हैं और कोई भी नहीं है। उसी पर भरोसा रखना। बाहर जो दिखता है, इससे कुछ अपने को लेना-देना नहीं है। यह सब क्या है, इससे अपने को कोई मतलब नहीं है। यह गति तो इन्द्रियों के थक जाने से कम पड़ती है और जड़ता आती है। पहले मैं भी खुश होती थी। बावजी चतुरसिंहजी ने

कहा कि बाई, इसमें मत लगो। यह जड़ता लाता है। भगवान का नाम लेना चाहिए। इससे शरीर के कर्म सही होते हैं और अपने को तो कोई लाभ-हानि है नहीं। बावजी चतुरसिंहजी की समझ साफ थी, उसमें कोई कचरा (विचारों की उलझन) नहीं था।

प्रश्न- बार-बार ये वृत्तियाँ दिखती है, इनको किस तरह भूला जाये?

उत्तर- जिस समय जनकजी विश्वामित्रजी के पास पधारे, उसके थोड़ी देर बाद ही रामजी भी विश्वामित्रजी के पास पधारे। तब जनकजी ने विश्वामित्रजी से पूछा कि ये ऋषियों के बालक हैं या राजा के हैं? या ब्रह्म, जीव धारण करके आया है? तब विश्वामित्री ने कहा- राजा, आप जो कहते हो, वह सच है। इतने में राम मुस्कराये। भगवान का मुस्कराना ही माया का विस्तार है और भगवान का हँसना भी माया का सिकुड़ना है। इतने में जनकजी महाराज भूल गए और भगवान की मुस्कराहट की

तारीफ करने लगे। भगवान को भूलकर माया की तारीफ में लग गए। मैं तो इसे यों समझती हूँ।

उसके बाद भगवान विवाह करके पधारे तब बहुत प्रार्थना की। परशुरामजी कोई मामूली व्यक्ति थे क्या? भगवान से कितनी लड़ाई की? अपने को महापुरुषों का भाव देखना है। और तो रामायण बहुत पढ़ते हैं पर, मुझे तो रामायण में बहुत आनन्द आता है। यह शरीर गिरे, तब तक सत्संग की आवश्यकता है। सत्संग मिलने पर भी लोग ऐसी बात करते हैं कि यह ठीक समझा वह ठीक नहीं समझा। **कोई कुछ भी कहे, अपने तो जो जैसा कहे, उसी को हाँ कर देना है, किसी को सत्य के लिए मजबूर नहीं करना। सच्चा कुछ है ही नहीं तो सच्चा किसकों बतावें।** अपने अन्तर में निश्चय कर लेना और निराश हो जाना। यह जो दिखता है, यह सच्चा नहीं है। कोई कुछ भी कहे, अपने को कुछ भी नहीं कहना है। क्योंकि कुछ है ही नहीं। जैसी परिस्थिति

सामने आती है, वैसी ही हलचल उठती है।

गाँव की स्त्रियाँ सीताजी से पूछती हैं कि ये आपके क्या लगते हैं? उसी समय सीताजी ने लक्ष्मणजी को बता दिया और भगवान के लिए पूछने पर शर्मा गई। इसी प्रकार इस बुद्धि से सब वृत्तियाँ पूछती हैं तो और तो सब बता देती हैं और भगवान के लिए शर्मा जाती है। तब सबको अनुमान हो जाता है। जिस समय भरतजी बहुत घबरा रहे थे और तरह-तरह के विचार कर रहे थे, अपनी माताजी के लिए और खुद के लिए, उसी समय भगवान ने कहा कि अपने को कुछ नहीं करना है। पिता का वचन निभाना है। मैं वन में रहकर निभा लूँगा और तुम राज्य में रहकर निभा लो। भरतजी तुरन्त समझ गये।

विभीषणजी भगवान के परम भक्त थे जिस समय रावण (लड़ने) आया, उस समय भूल गये। भगवान ने रथ का वर्णन करके समझाया। कैकेयीजी क्या

मामूली औरत थी? वे जानती थीं कि यदि राम राजगद्दी पर बैठ जायेंगे तो राक्षस किस तरह मारे जायेंगे। कलंक तो मुझ अकेली पर आवेगा लेकिन भला सबका होगा। इसलिए जानबूझ कर उन्होंने ऐसा किया।

देखो रावण को यह बताया गया था कि भगवान से प्रेम करेगा तो सात जन्म में और वैर करेगा तो तीन जन्म में ही तेरा मोक्ष हो जायेगा। जब खर-दूषण मरे और रावण को पता लगा कि भगवान का अवतार हो गया है, उस समय उसने सोचा कि सात जन्म तक कहाँ रोता रहूँगा। तो उसने वैर कर लिया और वैर करके भी कहीं रुका नहीं सबने बहुत समझाया, लेकिन अटल रहा। एक बार मन्दोदरी ने विराट का वर्णन किया, उस समय थोडा सा असमंजस में पड़ा पर तुरन्त संभल गया। वह मरने लगा तब भगवान ने लक्ष्मण को भेजा कि उसके पास जाकर राजनीतिक सीख आओ। लक्ष्मणजी ने

सोचा कि राक्षस के पाँव के पास में कैसे खड़ा रहूँ। उसके सिर की तरफ खड़े रहे तो रावण ने पूछा कि कौन है? तो लक्ष्मणजी ने कहा लक्ष्मण हूँ। राजनीति सीखने आया हूँ। तब उसने कहा कि तू योग्य नहीं है। लक्षमणजी ने जाकर के सब बात बताई। भगवान ने कहा कि तुम तो शिष्य होकर गये थे, सिरहाने की तरफ खड़े रहे, पाँव की तरफ खड़ा होकर पूछना चाहिये था। तब वे पाँव की तरफ जाकर खड़े हुए और पूछा। रावण ने कहा कि अब मेरी मृत्यु नजदीक आ गयी है। थोड़ा-सा सीख लो, इसीमें सब राजनीति आ जायेगी। अपन जिसके साथ उपकार करें, उसको भूल जाना और अपने साथ जो बुराई करें उसको भी भूल जायें। बस ।

रतन- काम, क्रोध आदि से जब कुछ लेना-देना नहीं है तो इनके विचारों में आने पर खराब क्यों लगता है।

बाई- ये खराब है, इसलिए <u>**ज्ञानी में और अज्ञानी**</u>

में इतना ही अन्तर है कि ज्ञानी में जो विचार उठते हैं, उनके अनुसार वह करता नहीं है और अज्ञानी कर गुजरता है। राम भगवान वन में पधारे तब कौशल्या माता ने पूछा सुमित्रा माता से क्या राम वन में गये - सुमित्राजी ने कहा कि हाँ चले गये। तो कौशल्या ने पूछा कि तब प्राण क्यों नहीं निकला और नहीं गए तो यह हृदय में दाह क्यों है? कोई ऐसा आदमी हो जो मुझे भगवान की बातें सुनाया करें तो मन इतना उदास न हो। महापुरुष भगवान की बातें लिखते रहते हैं, क्योंकि खाली बैठने से तो वृत्तियाँ उठती हैं। कोई कुछ करता रहे तो न उठे।

कालीदासजी- ये काम, क्रोध, लोभ, मोह क्यों आ जाते हैं, जबकि हम यह जानते हैं कि संसार के सभी पदार्थ नाशवान हैं। बिगड़ते-बनते हैं तो फिर नाशवान वस्तु के लिए मोह, ममता, लोभ नहीं होना चाहिए।

बाई- जैसे संसार मिथ्या है, ऐसे ही ये भी मिथ्या

हैं। प्रसंगानुसार आ भी जाये तो जैसे पानी पर बनाए गए चित्र। जैसे जंगल में जानवरों के पैर धूलि पर अंकित हो जाते हैं। लेकिन वे बाद में मिट जाते हैं। संसार का सब व्यवहार इसी प्रकार है। इसे छोड़ना है। जंजीर की एक कड़ी को खींचने पर सब कड़ियां आ जाती हैं, इसी तरह राम-राम करो। परमार्थ में बाल-बच्चे पैदा करना गलत काम है। खुद के न हों तो दूसरों के रखना अच्छा नहीं। भाई-बन्धुओं को तो किसी भाई को पानी पिलाना भी अच्छा नहीं लगता। मानो उनके पानी कम पड़ जायेगा। यह मैंने अपना अनुभव बतलाया है। जब शरीर छूटने में दो-एक घण्टे रह गये, उस समय दूसरे भी दो-एक बैठे थे और महाराज के दोनों बेटे भी बैठे थे। उन्होंने कहा कि काकीजी का कुछ बन्दोबस्त कर जाओ। उन्होंने उठकर सिरहाने पड़ी अपनी पगड़ी को मेरे जेठ के दोनों लड़कों के पैरों में रख दी और कहा कि इसको कुछ तकलीफ मत देना। ये जैसा कहे वैसा

करना। इसने मेरी ग्यारह वर्ष तक सेवा की है। इसे अच्छी तरह रखना। घर का ऊपर का मकान भाई के पास था, जो छुड़ाया ताकि उसको घर में रहने में कोई तकलीफ न रहे। जेठ के लड़कों ने कहा जैसी आपकी आज्ञा है, कोई तकलीफ इनको नहीं देंगे। ये कहेंगी जैसा करेंगे। उस समय तो यह बात कही और जब उन्होंने आँखें बन्द कर ली तो इन्होंने अपनी आँख बदल ली। बरामदा में बिठाकर एक-एक सोने के जेवर को फेहरिस्त में लिखा। जो घटा उसके लिए गाय के पास ले जाकर मुझे सौगन्ध दिलवायी। मैंने ये सौगन्ध खायी कि मेरे पास कुछ भी हो तो इन गायों की सौगन्ध।

मेरे पास मेरी छोटी बहिन रहती थी। मैंने उससे कहा कि अपने पति का (बाई के पति का कुआँ है, उसके पास चारा पड़ा है, उसे भीलन को कह दे कि ला दे जो पैसे लेकर भी नहीं लाने दिया। वह जेवर के लिए बार-बार लड़ाई करते। कभी कुछ कहते,

कभी कुछ, मुझे लड़ना नहीं आता। सत्पुरुषों के वचन तो इतना असर नहीं करते परन्तु दुष्टों के वचन झट असर करते हैं। मैंने महाराज चतुरसिंहजी से यह निवेदन किया था कि मैं भीलों के घर में रह जाऊँ, पर इनके वचन नहीं सुनना चाहती। उनके संकल्प और विकल्प से ही यह संसार बनता है। यह मैं जानती थी। यह संसार अपने से ही निकलता है और अपने को ही दुःख देता है। महाराज साहब चतुरसिंहजी का भला हो अब मेरा श्वास निकलेगा तो भी बहुत आराम से निकलेगा।

प्रश्न- आप जैसों के लिए भी संसार बनता है तो हमारे जैसों की तो बात ही क्या है?

उत्तर- यह कोई कारण सामने रहता है, उससे ऐसा होता है। पहले के महापुरुष सब कुछ छोड़कर जंगल में जाते थे। वे जानते तो सब थे, पर इसलिए जाते थे कि ऐसा कोई कारण सामने नहीं रहे। अपने को तो कुछ नहीं करना है और भगवान का हो जाना है।

जिनको वेद 'नेति नेति' कह कर थक गये। उनको अपन कैसे जान सकते हैं? और कुछ भी करो, पर किसी में भी अपना दिमाग नहीं लगाना।

रतन- औरतों को और कुछ भी नहीं तो यह तो इच्छा रहती ही है कि अपने पति के सामने भगवान मौत दे दें।

उत्तर- भगवान दयालु हैं, वे ही इच्छा पूरी करेंगे। पर मैं तो यह मांगती थी कि मुझे तो जो भी दुःख होगा वह सहन कर लूँगी। पर इस आदमी की कौन सेवा करेगा। जो मांगती थी, वही भगवान ने दिया।

कालीदासजी- संसार का पेंदा देख लेना। फिर तो जो है, वह तो है ही। खिचड़ी खा लें या दे दें। पर रखेंगे तो बासी हो जायेगी। यह जानते हैं और जिस बर्तन में रहेगी, वह भी दुर्गन्ध देगा। यह आखिर नतीजा देख लिया। पहले ही यह सोच लेता तो बस। शरीर मृगतृष्णा जल जैसे दिखता है क्योंकि सूर्य हैं जिससे। परन्तु उसके पीछे नहीं दौड़ना। यह जान

लेना कि इससे प्यास नहीं मिटती। जो दिखता है, वह है नहीं? यों ही इन संकल्पों को जान लेना है। इनको पकड़ों तो पकड़े जायें नहीं, इन्हें खाओ तो खाये जाये नहीं और लगते ऐसे हैं कि मानो हैं।

बाई- महाराज साहब उदयसिंहजी फौज में नौकरी करते हैं, और फौज में नौकरी जो जिस ओहदे पर करता है, उसी ओहदे के नाम से वह जाना व पुकारा जाता है। ऐसा ही शिव जो जैसा स्वांग करता है वैसा ही कहलाता है। देखो, रावण कईयों के साथ लड़ाई करता था। कुछ भी करता, पर जानता था कि मैं कौन हूँ? ईसामसीह पहले तो मन से बहुत सी बातें करते। बाद में कहा कि अभी कुछ पर्दा है। यदि नहीं होता तो ऐसा क्यों कहते कि वह प्रभु न्यारा है। भजन होता है, भजन किया नहीं जाता। जो किया जाता है वह दम्भ है और बनावट है। मैं कह रही हूँ वह तुम्हारी समझ में आता है।

रतन- किस तरह?

उत्तर- जैसे दुःख होता है। किया नहीं जाता। वैसे ही भजन भी होता है। मैं महाराज चतुरसिंहजी के पास गई। मेरे साथ में धापू बाई थी। वह दो दरवाजे वाली ओोठरी में बिराजे थे। उन्होंने मुझसे सब कुछ पूछा। मैंने सब बताया। यह मुझे जरूर पता था कि कि यह सब जो जाना जाता है, उससे जानने वाला अलग है। मैंने यह बात उनसे निवेदन की तब बावजी बहुत प्रसन्न हुए और कहा- आज से दूसरी बातों में मत लगना। देखो शरीर को चीर कर देखने पर भी कहीं अंधेरा या उजाला नहीं दिखता। अपने जैसे संकल्प होते हैं वही दिखता है, हाँ फिर तो बावजी अपनी बनाई हुई पोथियाँ मुझे भेजते और मैं उन्हें पढ़ती। ऐसा करते-करते एकदम जैसे मानो अपने हाथ की हड्डी निकल जाये, हड्डी ऊँची हो जाये और वापस बैठ जाए काँच की चूड़िएँ पहन कर देखते समय कोई चूड़ी बैठती नहीं है, उसे छोड़ कर दूसरी पहनने की कोशिश की जाती है। फिर

आखिर कोई फिट बैठ जाती है। मन तो ऐसा ही है। इसके कहने में चलेंगे तो चौरासी के चक्कर में फेंक देगा। इस छोटी सी आँख के कोये में इतना बड़ा संसार है, क्या वह सब इसमें समा गया। समा सकता है, क्या? यह तो भ्रांति है भ्रांति ।

युधिष्ठिर के पास एक ब्राह्मण माँगने के लिए गया। उस समय सभा उठने वाली थी, अतः युधिष्ठिर ने कहा कि कल आना, वह जाने लगा, तब भीम ने पूछा कि क्या बात है? उसने कहा राजा ने 'कल आना' ऐसा कहा है। भीम ने कहा कि ठहरो और भीम ने जोर-जोर से नक्कारा बजाया। युधिष्ठिर ने पूछा कि क्यों बजाते हो? आज तो मैंने कोई पुण्य नहीं किया। भीम ने कहा कि मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि आपको मालूम हो गया कि आप कल तक जिन्दा रहेंगे।

युधिष्ठिर ने उसी समय उस ब्राह्मण को बुलाकर दान दे दिया। देखो, उन महापुरुषों को भी यह

विकल्प हुआ।

अंगदजी रावण की सभा में पहुँचे और वहाँ अपना पैर रोप दिया। सबने उठाया, पर वह नहीं उठा। तब रावण उठाने लगा। अंगदजी ने सोचा कि यह तो बहुत भारी है और यह भी वे जानते थे कि यह भक्त है और राजा है। तब कहा कि राम का पैर पकड़ो, मेरा पैर पकड़ने से आपका उद्धार नहीं होगा। यह कह करके पैर हटा लिया। बहुत चतुर थे।

हनुमानजी महाराज ने लंका से लौटते समय जोर से गर्जना की उससे राक्षसियों के गर्भ गिर गये बच्चों को मारना नहीं पड़ा।

रोटी सबको एक-सी खिलानी चाहिए। कोई कुछ कहे तो सुन लेना। अपने को कहता नहीं, शरीर को कहता है। मन में दीन-गरीब हो जाना। देखो- किसी को रोटी नहीं खिलाओ तो उससे बहुत धन इकट्ठा नहीं होता और खिला दो तो बहुत खर्चा नहीं होता। रामजी तो जैसा करते हो वैसा ही देते हैं। ओढ़ने-

पहनने में खाने-पीने में रुचि नहीं रखनी। बाहर नहीं कहना, पर मन में निश्चय कर लेना। कोई ब्राह्मण लड़का मिल जाये तो उसके हाथ की बनी रोटी खाना। इससे ठीक रहता है। क्रोध करने वाले, खोटे स्वभाव वाले के हाथ की रोटी खावे तो भजन में शिथिलता, खराब विचार, क्रोध आदि आते हैं। मन पर अन्न बहुत जल्दी असर करता है।

खोटा काम नहीं करना चाहिये। दशरथजी महाराज ने श्रवण कुमार को मार दिया, उसके माँ-बाप ने शाप दे दिया, उसी के अनुसार उनकी भी मृत्यु हुई। उनके यहाँ रामजी ने अवतार लिया, वे क्या उस शाप का प्रभाव मिटा नहीं सकते थे? पर उन्होंने नहीं मिटाया। न्याय में तो बाप से भी नहीं चूके। पर अपने को तो पाप-पुण्य भी नहीं रखना है।

एक दृष्टांत सुनो। तीन आदमी तपस्या करते थे। उनमें से एक तो पानी पीकर रहता था। एक हवा ही खाता था और एक जो मिल जाये वही खा लेता

था। न मिले तो भूखा रहता था। उनको एक दिन एक आदमी बुलाने को आया। पानी पीकर तपस्या करने वाले को लेकर चला, रास्ते में उनको प्यास लग गई। वह पानी पीने के लिए गया। वहाँ एक पतले साँप ने मेढक को पकड़ रखा था। उसने उसको छुड़ा दिया। साँप ने दाँतों में पकड़ रखा था, उसका जहर तो मेढक को चढ़ ही गया था। वह मर तो जाता ही । परन्तु छुड़ा दिया तब उसे ले जाने वाले आदमी ने कहा कि यह तपस्वी हमारे काम का नहीं। यह साँप बहुत दिनों से भूखा था। इसको खाने देता। वह लौट गया।

अब जो आदमी हवा पीकर तपस्या कर रहा था, उसको बुलाकर ले गया। रास्ते में उसके आगे एक साँप दौड़ रहा था और उसके आगे एक मेढक दौड़ रहा था। उस आदमी ने पहले वाले आदमी की बात सुन ली थी. इसलिए उसने मेढक को पकड़ कर साँप के मुँह में दे दिया। तब बुलाकर ले जाने वाले ने कहा

यह भी हमारे काम का नहीं है। मैंने इस मेढक को बचा रखा था, इसको साँप के मुँह में क्यों दे दिया? जब वह उस आदमी को बुलाकर ले गया जो मिलता वही खा लेता था। उसको प्यास लगी और वह बावड़ी पर गया। उसने आँख मींचकर पानी पी लिया। अपने को तो इस आदमी की तरह होना चाहिये। भगवान की मर्जी हो जो वे करें। न्यायालय में भी ऐसा ही होता है कि जब तक जुर्म कबूल नहीं करें, तब तक सजा नहीं होती। अतः "मैंने किया इस तरह अपने को कर्त्ता नहीं बनना- किसी भी अच्छे या बुरे कर्म का। शक्तावतजी माँ साहब के इतना घी होता, लेकिन वे कभी उसको नहीं बेचते। चार महीने चौमासा करने वाले साधु-संत आते उनको जिमा देते। छिपकर काम नहीं करना। छिपकर करें, वही पाप है।

अपने का कुछ बनना नहीं है। अपन जो हैं सो हैं। मन को बनाने की बात | भगवान राम के सखा

सुग्रीवजी ने कहा- भगवान जिनका मन एकरस हो जाय, वे आपके समान है तो फिर अपने जैसे की क्या?

रतन- क्या ऐसा कोई भी नहीं हो सकता?

उत्तर- नहीं हो सकता। यह कुछ है ही नहीं। होता तो क्या कुछ क्षण में बनता और कुछ क्षण में मिटता, पर अपने को बाहर से नहीं होना है।

प्रश्न- हनुमानजी ने कभी भी रावण को दुर्वचन नहीं कहा और सबने कहा।

उत्तर- हनुमान जी समझते थे कि वे भगवान के भक्त थे, किसी को भी दुर्वचन नहीं कहना चाहिए। वह राजा है, अच्छा हो या बुरा कोई बात नहीं। जब अपना स्वार्थ हो, तब भलाई- बुराई करते हैं। अपने को दूसरों से क्या लेना-देना ।

रतन- अच्छे को तो अच्छाई कही जाती है, महाराणा प्रताप आदि की।

उत्तर- अरे, जहाँ उनका मतलब होता है वहाँ

ऐसा करते हैं। गुब्बारे की भाँति जो ऊँचा जाता है, उसको तो ओहो, कर देते हैं और कोई वहीं नीचे बैठ जाता है। वैसा ही है।

रतन- रावण डरता नहीं था, निर्भय रहता था?

बाई- वह जानता था कि कुछ सच्चा है नहीं, यह तो सब हाड़-मांस का पंजर है।

रतन- कोई लड़ेगा, यों डर लगता है।

बाई- कोई क्यों लड़ता है? अपने शरीर का तो आराम देखना नहीं और अपने स्वार्थ के लिये कोई क्रोध करे तो अपन क्या करें। एक मनुष्य किस-किस को खुश रखे? स्वार्थ अपना कोई है नहीं। इनसे अपना क्या लेना-देना और अपने देवर-जेठ को तो मैंने बहुत मान रखकर देखा है। ये कभी अपने नहीं होते। खैर, अपन तो खोटे और ऐबी हैं। ऐसे ही पापी हैं। पर पाण्डव कैसे धर्मवाले थे। उनका भी लिहाज नहीं रखा। अब जिनके साथ यह शरीर बँधा हुआ है, वह जो कहें वह तो करना ही है। दूसरों की बात

कुछ मानी जा सके तो ठीक और न मानी जा सके तो ठीक। अपन को तो भगवान के भरोसे हो जाना है। उन्हीं के हैं। उनका जो मन हो सो करें। भगवान सब अच्छा ही करेंगे। अपन पत्थर के पास जाकर कहें कि पत्थर ने मुझे बाँध लिया, तो पत्थर किस तरह से बाँधे अपने को। भूख तो अपने को लगती है और रसोई वाली पर गुस्सा करते हैं। वह क्या करे? कारण तो भूख है।

प्रश्न- यह तो गोलमाल ही है।

बाई- आजकल मनुष्य उल्टे काम करता है। प्रकाश देखे और नक्कारे सुने (ज्योति बिन्दु या कानों को बन्द करने पर आने वाली ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित करें) यह तो प्रकृति है। इसमें तो कोई कहे कि मैंने एक लाख सिरवाला मनुष्य देखा तो भी यह कहना चाहिये कि देखा होगा। कोई न रोटी खाये न पानी पीवे। ऐसो का क्या अचम्भा? बीज तो छोटा ही होता है, लेकिन बड़ा वृक्ष बन जाता है, जिसके

फूल भी लगते हैं। अगर पर्वत पूछे कि मुझे पत्थर के दर्शन किस तरह हो। देखो, यह अज्ञान इसी तरह से आया है कि हम अपने आपको भूल गए हैं। धन का, जवानी का परिवार का, घर का और शरीर का मद चढ़ता है। देखा न, कागज के रुपयों पर घमण्ड करता है। यह तो व्यवहार चलाने के लिए बनाए हैं ।

इन वृत्तियों को संदेह हो तो बुद्धि इनको कह सकती है। लेकिन वृत्तियों को संदेह होता नहीं। अपने को मोहरूपी नशा चढ़ रहा है, सो किस तरह समझें? सगुण में और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। जैसे शब्द सुनते हैं, वह निर्गुण है और जितने ये चराचर रूप आँख से दिखते हैं तो सगुण ।

रतन- ऐसा लगता है कि इन वृत्तियों में ही खो जाते हैं और इन वृत्तियों में ही संदेह होता है। फिर यह सब गड़बड़ वृत्तियों की ही हुई पाई जाती है, इसी को समझना होता है। अपन तो न तो कुछ भूले

और न कुछ हुआ। अपन ज्यों के त्यों ही हैं।

उत्तर- और क्या? निराश होकर चुपचाप बैठ जाना है? ये सुमित्राजी पूर्व जन्म में नागकन्या थी। दशरथजी कोई मनुष्य थे। इनके कोढ़ हो गई थी। तब इनको किसी ने कहा कि अमुक साँप के पास जाओ तो कोढ़ मिट जायेगी। ये उस साँप के पास गये। उसने उनको रोटी खाने के लिए घर भेजा। उसकी बेटी ने इनको खिलाया। उससे इनका कोढ़ मिट गया और इनके मन में उसके प्रति खराब विचार उठा सो माथे पर कोढ़ का एक बिन्दी जितना निशान रह गया। ये रोटी खाकर बाहर गये तब साँप से पूछा कि यह बिन्दी क्यों रह गयी? साँप ने कहा तुममें खराब विचार रहा होगा। उन्होंने सब सच-सच बात कह दी। उसने इनको अपनी बेटी दे दी। उससे ही इनके शेषजी का जन्म हुआ।

प्रश्न- यदि संकल्प मात्र है, यह जान लिया तो फिर दिखता है तो अपना क्या लिया?

कालीदासजी- शुद्ध बोध स्फुरणा मिटती है, तब होता है।

बाई- ऐसा मत कहो- स्फुरणा मिटो चाहे न मिटो। यह तो अपने कुछ है ही नहीं। स्फुरण अपने साथ-साथ दौड़ती थोड़े है। अपन देखते हैं, इसलिए वह दिखती है। काँच के घर में अपन खड़े तो सब काँचों में अपन ही दिखते हैं। या तो कोई काँच के घर में जाओ ही मत, उसके ताला लगा दो या यह जान लो कि इसमें हम खड़े हैं, जो दिखते हैं।

देखो, बहुत मनुष्यों से सम्पर्क मत रखो। यह उपाधि है तो झूठी, पर बहुत दुखदायी है। कपड़ा फट जाये तब तो ले आओ, नहीं तो कम से कम रखो। इसी तरह भगवान उनको भी समझा दें, तो ठीक है। महीने भर थोड़ा खाने जितना धान ही हो। नौकरों की भी एक उपाधि ही है। वे आवे तो ठीक और न आवे तो उनकी राह न देखना। रामजी रामजी कहना। जब तक वे (रतन कुंअर के पति) न समझें

तब तक कहें सो करना। शास्त्रों में जो धर्म लिखा है उसका पालन करना ही है। वह स्फुरणा तब मिटे जब इसका कारण सम्बन्ध नहीं रहे या जब यह सोच ले कि अपना यह स्फुरणा क्या लेती है। देखो, यह चिड़िया अपने को कब कहने आई कि हमको चिड़ी जानो या चिड़ा जानो।

रतन- चिड़िया नहीं है तो कुछ तो है।

उत्तर- "लेकिन, मगर क्या और यह" करती रहेगी तो अपनी लड़ाई हो जायेगी। ऐसा सोचने से नए विकल्प उठते हैं।

रतन- हाँ संकल्प उठते ही नया संसार बन गया (हँस दिया)।

कालीदासजी- शराबियों वाली 'चुप'।

बाई- हाँ सब 'चुप-चुप' करो तो यही बोलना हो जाता है। (सब हँसने लगे) गोपियों को (वृत्तियों को) जब मान आया, तभी भगवान उनको छोड़कर पधार गए। बुद्धि साथ में गई। उसको भी मान आया।

भगवान तो मेरे वश में ही है। तब उसको भी छोड़कर अन्तर्धान हो गए। बाद में सब शरण में आई। मान मेटा और मिल गये। हनुमानजी ब्राह्मण का वेश बनाकर आये तो भगवान नहीं मिले और तब निज स्वरूप धारण किया जब मिल गये और छाती से लगाया। द्वैत दूर हो गया और एकाएक चिपका लिया।

यह ज्ञान ही अज्ञान है। किसी मनुष्य को बहुत भूख लगी हो और उसको कोई कहे कि रोटी तैयार है, लावें? तब उसको जैसे संतोष आ जाता हैं कि रोटी आ रही है। कोरे ज्ञान का पत्थर छाती पर बाँधकर क्यों फिरें।

शुकदेवजी ने यही परीक्षित से कहा कि राजा तू शरीर नहीं है। साँप तुझको नहीं खायेगा। शाप भी झूठा है। शाप देने वाला भी झूठा । शरीर भी झूठा। तब राजा ने कहा कि महाराज अब भले ही साँप खा

जाये। शुकदेवजी ने पूछा राजा साँप काटने का दुःख तो तुमको नहीं है। राजा ने कहा कि महाराज दिन तो दूर है साँप काटने का, पर वह भले ही अभी ही मुझे काट ले।

राजा खट्वांग का एक पैर जो घोड़े पर चढ़ने के लिए रकाब में था और दूसरा नीचे। उन्होंने ऋषियों से पूछा कि बताओ, बोलो। ऋषियों ने कहा कि राजा तू शरीर नहीं है। तब वह जल्दी से दूसरा पैर भी रकाब में रखकर चल दिया। उसका शरीर उसी दिन पड़ने वाला था। एक पल में मोक्ष हो गया।

मैं क्या हूँ, भगवान क्या है? यह विचार उठे तो उसे वहीं पर दबा देना । ज्ञान को या अज्ञान को अपने को कुछ भी नहीं सोचना ।

प्रश्न- अभ्यास किसे कहते हैं?

उत्तर- शास्त्र पढ़ते रहना। शास्त्र रूपी मणियों को चुगते हुए कभी हीरा-मोती हाथ में लग जायेगा। फिर आत्मा रूपी मणि तो प्रकट हो ही जायेगी।

प्रश्न-तृष्णा किसे कहते है?

उत्तर- मेरा नाम हो जायेगा या बदनामी हो जायेगा. पुत्रैषणा, धनैषणा, यह जब मिट जाये। ये आवरण मिटने पर अपन तो हैं ही। अज्ञानी ज्ञानी सबमें वैसा का वैसा।

मेंरे को जो प्रणाम कर रही है, वह तुझे ही कर रही है। **मैंने तो शरणानन्दजी को और महाराज साहब चतुरसिंहजी को ही (सच्चे संत) देखे औरों में तो कोई न कोई इल्लत लगी देखी। नारायण महाराज भी भक्त हैं। उनमें भी कुछ नहीं है वे भी समझे हुए हैं।** अपन तो सब में झूठ, निन्दा और बड़ाई सिर पर लिये घूमते हैं आत्मा तो सब में एक ही समान है। संसार को देखकर प्रसन्न नहीं होना। अपने में ही प्रसन्न रहना। अपने को किसी से डरना नहीं। डरे तो वह जिसका कोई मतलब हो। अपने को किसी से भी कोई मतलब नहीं है या यह ख्याल हो कि यह मुझे पूरी तरह पार लगा देगा। भगवान पर भरोसा

रखना चाहिये। मिटने वाली चीज का क्या भरोसा? सत्संग करना, शास्त्र का मनन करना, भजन करना। सेवा करावे तो करनी, नहीं करावे तो आगे वाले की इच्छा-सेवा की वासना भी नहीं रखनी । साधु का या, किसी का भरोसा नहीं करना चाहिए। अपने मन में तोल लेना । मन गवाही दे तो करना ।

प्रश्न- मन इतना न समझे तो?

उत्तर- न समझे तो नहीं करना। ऊपर से अच्छा बनना, यह काम नहीं देता है। विचार करके ही कुछ व्यवहार में लावें जब है। ये जीव जानवर सब डरते हैं, इसी से ऋषि-मुनियों से सोचा कि ये जो कई बार मर चुके हैं और यह भय तभी छूटेगा जब शरीर में अहंभाव नहीं रहेगा। मन काँच का घर और उसमें अपन खड़े हुए हैं, तो दिखाई देंगे ही। **दिमाग में से यह बात निकाल दो कि आत्म साक्षात्कार होगा अपन आत्मा तो हैं ही फिर साक्षात्कार किस तरह होगा।**

नाथूलालजी- साक्षात्कार यह है कि कोई कहे कि यह काम मैंने नहीं किया, तब अपन कहें कि झूठ बोलते हो। मैं खुद खड़ा था न।

रतन- यह तो झूठा अभ्यास हो रहा है उसको मेटना कि मैं शरीर हूँ। अपने तो शरीर आदि को जानने वाले साक्षात् हैं ही।

बाई- अब अपने को कौन भुलाते हैं देवर-जेठ, क्योंकि राग-द्वेष से अपन भूलते हैं। दूसरा तो बेचारा क्यों भुलायेगा जिनका स्वार्थ बिगड़ता है, वे भुलाते हैं।

भगवान ने अवतार शबरीजी के लिए ही लिया। सब ऋषि मुनियों को छोड़कर उनके पास पहले पधारे। उसने भी दस हजार वर्ष तक राह देखी। अपन तो माला फेरते हैं और घर में कोई मर जाए तो यह कहते है कि मेरा क्या भला किया? यह लो माला रामजी। **ज्ञानी और अज्ञानी में यही फर्क है कि वह तो विचार को सच्चा समझता है और ज्ञानी जानता**

है कि कोई विचार सच्चा नहीं होता है।

प्रश्न- यह तो समझ में आता है कि अपन 'जाण' (दृष्टा) हैं। पर यह समझ में नहीं आता कि सब भगवान हैं।

उत्तर- भगवान को तो यों समझना कि सबमें 'जाण' है, वह सबमें एक ही है। कीड़ी खाने की तलाश करके पीछे अपने बिल में चली जाती हैं। इसकी जो शक्ति चलाती हैं, वह परमात्मा है। यह आग में नहीं पड़ती। हाड़ और मांस सब एक से हैं, कर्म अलग-अलग हैं। जब तक सत्य नहीं समझे, तब तक शांति नहीं मिलेगी। इस संसार का सच-झूठ कुछ भी नहीं समझना। झूठ तो तब समझें जब इस जैसी ही कोई वस्तु हो। सच्ची हो और सच तब कहें इसमें कोई परिवर्तन न हों। एक सरीखा ही रहे। मनुष्य और मनुष्य की छाया इसी प्रकार का जगत हैं और भगवान भगवान है, जिससे यह सब दिखता है। सत्य को जान लो इस संसार को सत्य जानोगे तो

कभी भी सत्य नहीं मिलेगा। जैसा संसार अपन देख रहे हैं, यह तो कहीं चला जायेगा। भगवान राम सुग्रीव से मिले। सुग्रीवजी ने भगवान से प्रार्थना की मुझे तो राज, धन कुछ भी नहीं चाहिये। ये तो आपसे अलग कराने वाले हैं। तब भगवान ने कहा मैं तो बाली को मारूँगा, देखो तुम उससे लड़ने तो जाओ । वह लड़ने गया । बाली ने एक थप्पड़ मार दिया। वापस आकर कहा भगवान वह तो मेरा काल हैं। जब पार्वतीजी ने भगवान से पूछा कि महाराज, संसार कभी कैसा और कभी कैसा क्यों हैं। तब भगवान शंकर ने कहा कि जैसे पुत्तलियों का खेल करने वाला डोरी खींचता है, हिलाता है और पुतली नाचती है, वैसे ही भगवान की मरजी है।

विषय तो सब योनियों में मिलता है और भोगते हैं पर भगवान का भजन तो मनुष्य से ही होता है। शरीर विषय भोगने के लिए नहीं मिला है। यह कुटुम्ब दाद, पाँव की खाज की तरह है जिसको

खुजाने से अच्छा लगता है और घाव बढ़ता जाता है। संसार कांटे की बाड़ है। कांटा चुभता है और मनुष्य 'सूं सूं' करता है। भगवान का भजन हरा वृक्ष है। उसके नीचे बैठने से ठंडी शीतल हवा मिलती है और छाया रहती है। भगवान को जानकर भगवान का भजन करना ऐसा ही होता है, जैसे राजा को जानकर उसकी नौकरी करते हैं। इस संसार में थोड़ी बहुत भी खुशी मान लें तो वट वृक्ष की तरह इसका बीज पनपेगा, और डाल और पत्तों का विस्तार फैल कर सामने आ जाएगा। यह शरीर परमात्मा के द्वारा ठहरा हुआ है। ऐसा होने से ही इसमें पंच तत्वों की कमी-वेशी होती है। तब इसमें मानों घुन लग जाता है और पकड़े रहने पर भी यह पड़ जाता है और कुछ भी करने से ठहर नहीं सकता है। अतः इसी मार्ग पर क्यों नहीं चलते। कांटे पत्थर का रास्ता क्यों पकड़ते हो। खास बात से हमें सावधान रहना है, जैसे वह राजा जो कंजरों में चला गया और उनकी तरह उसे

रहना पड़ा। लेकिन वह यह नहीं भूला कि मैं राजा हूँ अपन कौन है यह नहीं भूलना चाहिए और संसार से घोर वैराग्य रखना चाहिये।

एक मक्खी बैठती है तो हाथ से उड़ा देते हैं। अपने को पता लगता है। अपन केवल इस शरीर में ही नहीं हैं। सब शरीरों को इसी ने (आत्मा ने) ठहरा रखा है। अपन आकाश की तरह हैं। इसमें आग लगाओं तो जलती नहीं। पानी डालो तो गलती नहीं। तलवार चलाओं तो कटती नहीं।

भगवान् ने गीताजी में अर्जुन को यही बतलाया है। अर्जुनजी समझ गये। न समझते तो क्या भाइयों, पितामह और गुरु को मारते।

देखो! दशरथजी ने जब जनकजी के दूतों से पूछा कि जनकजी ने रामजी को किस तरह पहचाना? तो उन्होंने कहा कि सूरज को कहीं दीपक लेकर पहचानने की जरूरत होती है? भगवान की जिन-जिन की जैसी भावना थी, उन्होंने वैसा ही देखा।

देखा क्या, उनकी जैसी-जैसी भावना थी, वही उनको दिखी।

भगवान ने बालि को बाण मारा। उसने उठकर कहा कि आपने धर्म की स्थापना के लिए अवतार लिया तो मुझे छिपकर क्यों मारा? भगवान ने कहा, तुमने पाप किया है। तब उसने कहा कि आपका नाम जो लेता है, उसको तो पाप लगता नहीं फिर मेरे तो आप सामने खड़े हो, फिर भी मैं पापी रह गया? तब रामजी को भी चुप हो जाना पड़ा। उन्होंने कहा कि तुमको जीवित कर दूँ? उसने कहा कि महाराज, मैं पागल नहीं हूँ। यह शरीर तो अभी ही चला जाय।

सावधान रहना चाहिये और मनुष्यों को अपनी ऊपर की सफाई नहीं बतानी चाहिए। तलवार की धार पर चलें, इस तरह चलना है। बहुत सावधान रहना है। **विचारों के साथ दौड़ना छाया के साथ दौड़ना, जितना ही दौड़े उतनी ही लम्बी बढ़ती जाती है।** पकड़ी नहीं जाती, ऐसे ही बेकार के

विचारों का यह व्यर्थ समूह है। लेकिन मेरा जीव क्यों भीतर से घबराता है?

चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि अपन जिस चीज को व्यर्थ समझते हैं, क्या उसको घर में रखते हैं। भले ही कोई कहो, इस शरीर को रखने की। आप इसका क्या करोगे? यदि हम किसी के पास रोटी-कपड़े के लिए पड़े रहें तो फिर वह जैसा काम करावे वैसा करना चाहिये। वह उच्च-नीच कर्म करावे रहे तो टुकड़ों के लिए और बन बैठे मुनीम। कौन बनने देगा? अच्छे हो या बुरे, अब संकल्प उनके हो चुके, वे जानें। अच्छे उठावें या बुरे, वे भी कभी दया करेंगे कि रोटी के लिए पड़ा है बेचारा । वह कभी ऐसा नहीं करावेगा और घर के मुख्त्यार बनो तो करो घर का काम ।

प्रश्न- वृत्तियाँ क्यों फिरती हैं?

उत्तर- जैसे पंखी है और इसको फेरे और पूछे क्यों

फिरती है? तो उत्तर यही मिलेगा कि फेरना बन्द कर दो। यह जान लो कि फेरने से फिर रही है।

प्रश्न- वृत्तियाँ बिल्कुल ही न हो, उस वक्त उसका स्वरूप कैसा होता है?

उत्तर - वृत्तियाँ हैं उस वक्त जो स्वरूप है वही स्वरूप बाद में भी है। यही है शरीर भी एक वृत्ति है। वृत्तियाँ मिट जाये तो यह शरीर भी मिट जाये।

प्रश्न- कुछ उपदेश दीजिये ।

उत्तर - सब संसार एक उपदेश ही है। हाथी से लगाकर कीड़ी तक को ज्ञान एक समान है। हाथी के सामने घास डाले, आगे गाय खाने को आयीं। उसने अपनी सूंड को आवश्यकतानुसार घास अपने पेट के नीचे ले लिये बाकी पूलों को दाँतों से सब गायों के सामने बिखेर दिये। एक वक्त शर्मा डाक्टर ने कहा, किताब लिखो । मैंने कहा- कहो वही लिखें। आप लिखो, मैंने स्याही थाली में डाली और कागज भिगो कर किताब सा कर दिया। उनको देकर कहा

कि अब जहाँ भेजनी हो वहाँ भेज दो।

प्रश्न- संसार झूठा क्यों हैं?

बाई- संसार क्या है, यह बतलाओ?

महात्मा श्री भूरी बाई ध्यानस्थ

प्रश्न- महापुरुषों ने तो इतनी किताबें लिखी हैं न?

उत्तर- जो जान गए, उन्होंने तो नहीं लिखी। लिखें क्या? कुछ हो तो लिखें ।

प्रश्न- यह दिख रहा है, संसार?

यात्रा में भक्तजनों के साथ संकीर्तन

उत्तर- अपने जैसे विचार हों, वैसा ही दिखता है। हाँ, सबको समान मालूम होता नहीं। विचारों का स्वरूप पकड़ में आता नहीं। इस विचार को ऐसे देखने चलो तो गायब हो जाता है। अब बगैर विचार

(संकल्प) के जो भी रूप है, वहीं इसका सही स्वरूप है। अब तू गले में ढोल बाँधकर कहती फिरे कि मैं रतन कंवर हूँ, सो तो तू है ही। फिर कहती क्यों है। तुझको लोग पागल समझेंगे। भीतर थोडी भी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। नहीं तो वह रबड़ जैसी बढ़ेगी। जिसको सम्यक् ज्ञान कहते है, उसमें तभी फर्क रहेगा जबकि वह पूरा समझे नहीं, समान व्यवहार हो। पूरी तरह सावधान रहना। एक आदमी ने, जिसे जंगल में होकर जाना था और चोर डाकुओं का भय था, तब उसने अपने पास वाली सोने के सिक्के मोहरें गधे को खिला दीं, घर आकर बाद में उसको पीटा तो उसने लीद की, जिसमें सब मोहरें निकल गई। उसके कुटुम्ब वालों और दूसरों ने यह हाल सुना। उन्होंने भी गधों को लाकर उनको पीटा और पीट-पीट कर मार डाला, तब भी मोहरें नहीं निकली। उसने तो खिलाई थी जो निकली थी। रतन- कम खाने से या खाने से वृत्तियाँ नहीं उठती

है और विकार पैदा नहीं होते हैं?

उत्तर- जब हम जागते हुए बैठे तो कुत्ता घर में घुस सकता है क्या?

प्रश्न- बार-बार यह विचार उठता है कि अपन परमात्मा से जुदा नहीं हैं, लेकिन इस विचार को मैं दबा देती हूँ।

उत्तर- हाँ, अलग नहीं है। चावल को धोते हैं तो पानी उसके रंग का हो जाता हैं, नहीं तो पानी तो पानी ही है। इसी प्रकार दूसरों के रंग से वैसा ही लगने लगता है। जमीन में खार हो जाय तो पानी खारा हो जाता है और भैंस के पेट में जाने से दूध होकर निकलता है सफेद।

प्रश्न- यह समझें कि सब भगवान कराते हैं।

उत्तर- हाँ, भगवान कराता है। पर किस तरह? अग्नि चमकती है, चावल पकते हैं, दूध गरम होता है और मनुष्य उसके पास बैठा रहा है, पर वह करता कुछ नहीं है। जो होता है वह उसकी मौजूदगी में।

कोई पूछे तो साफ कह देना। तुम्हारे में ओर मेरे में कोई फर्क नहीं है। फिर भी वह तुमको ऊँचा मान कर व्यवहार करता है तो यह उसकी सज्जनता है। खुली तलवार पड़ी है। छिपे किस तरह? यो बात करते हैं कि समझ धीरे-धीरे पक्की हो जायेगी। ऐसा समझना तो गलत है। चीमटा अपने पास पड़ा हो। मालूम हो गया कि अपन नहीं हैं, फिर क्यों उसको अपने पास रखें। फेंक देना है। फेकनें में दुःख है। यदि हाथ पैर सबल नहीं हो तो भगवान के सामने गरीब बन जाना। नहीं तो छाती ठोकर कर खड़े हो जाना। या तो फिर भगवान नहीं या हम नहीं।

दीनता इसको कहते है कि जो संत कहे उसको भगवान मान लेना। भगवान तो बहुत दयालु है। रावण ने लात मारी, विभीषणजी (भगवान के) शरणागत हुए, तब कहा कि करोड़ों गायों को मारने वाला पापी है तो भी मेरे शरणागत होने के बाद मैं

उसको नहीं छोड़ता। इस जन्म में तो इतना पाप किया नहीं। तब भगवान किस तरह छोड़ देगें । या फिर तुलसीदास जी का वचन झूठा करेंगे।

अहंभाव तो कहीं किसी कोने में भी बाकी नहीं रहना चाहिए। भगवान से क्या छिपा रहता है? वह की वह चीज है। खिड़की में से धूप आती है। यदि अपन यह माने कि कोई धूप को ले चला जायेगा इसलिए भीतर लेकर अपने किवाड़ बन्द कर दें तो क्या धूप भीतर लेकर अपने किवाड़ बन्द कर दें तो क्या धूप भीतर आ जायेगी या धूप को कोई ले नहीं सकता। धूप को कोई ले लो तो जानें।

पार्वती ने पूछा कि भगवान कैसे हैं? तब महादेवजी ने कहा- "मन बुद्धि में नहीं आते हैं।" "न्यारा जाने तो डूबे, सच्चा जाने तो डूबे, लीला जाने तो बस ठीक।"

एक बार अकबर बादशाह ने सूरदासजी से पूछा- "आपकी कविता अच्छी है या तुलसीदासजी की

? ” तो उन्होंने कहा- “कविता तो मेरी अच्छी है उनके तो मंत्र है” यदि आप माने कि हमने धर्म किया (दान दिया) तो मूर्खता है। यह सब भगवान का दिया हुआ ही है। वे तो समदर्शी है। यह सच है घर में धन गडा हुआ रखा है। कई पीढ़ियों से, पर उसको निकालकर जो काम में लेता है, वही सुखी होता है। इसी तरह से उनको जो जान लेता है, वहीं सुखी होता है।

एक पक्षी आकाश में उड़ता है और उसकी छाया समुद्र में पड़ती है तो क्या वह समुद्र में थोड़े ही चला गया। जो दिखता है, उसमें अपना कुछ नहीं है। आँख की पुतली में सब कुछ दिखता है, पर आंख की पुतली किस तरह देख सकती है? काँच में दिखता है, वह छाया है। संसार में सत्यता दिखे, वह सत्य की छाया है। (सत्य का निज विचार)।

वेदान्त बहुत मुश्किल है। बुद्धिमान इसको क्या समझे? बारह महीने का बालक जैसा होता है वैसा

ही तो समझे। वेदान्त को समझने पर बुद्धि तो खो जाती है। जिसको जो अच्छा लगे, वह वही भजन करे।

रतन- अपना ध्यान अपन किस तरह करें?

उत्तर- अपना ध्यान स्वयं नहीं कर सकते हैं? करते हैं तो वृत्ति सामने जाती है। तुम सत्संग की बात करती हो तब मेरे सामने संसार आता है और कोई दूसरा हो तो हो। संसार कुछ नहीं है।

रतन- हाँ, वृत्ति को देखते हैं, तो देखते-देखते वृत्ति मिट जाती है। अपने को ध्यान में रखते हुए तो वृत्ति ही सामने रहती है।

बाई- इसमें उल्टा काम है। तू समझती हैं कि स्मरण किसको कहते हैं? जैसे तू मैं करती हूँ। तुम्हारी साड़ी पीली है, ऐसी है। चिड़िया का अण्डा पहले द्रव पदार्थ होता है और उसकी माँ के सेवन से अर्थात् उसके स्मरण से उसके समान ही बच्चा पानी से बन जाता है।

प्रश्न- रामायण में आया, कि जो स्वरूप बस सिव मन मांही, देखहिं हम सो रूप लोचन भरि। वह रूप कैसा है। "बिनुपद चले सुने बिनु काना"।

उत्तर- नहीं, उनको तो दो हाथ, पैर वाला बेटा चाहिए था। चतुर्भुज भगवान आकर वहाँ खड़े रहते तो उनके किस काम के। वे बेटे की तरह काम थोड़े ही कर सकते थे, तो भगवान फिर वैसे ही बने।

प्रश्न- भगवान कैसे नहीं हैं? वे तो सब हैं। उनको ही भगवान अपने का विशेषण क्यों?

उत्तर- इतने राजा धनुष तोड़ने आये। किसी से भी नहीं टूटा। जो उन्होंने तोड़ डाला। रावण किसी से भी नहीं मरा, उसको उन्होंने मार दिया। उनमें आपार शक्ति है। **जिनका मन ठहर जाता है, उनके लिए निराकार-जिनका मन नहीं ठहरता, उनके लिए साकार।** असल में तो ठाकुरजी ऐसे हैं या वैसे यह झूठी बात है। वे तो जैसे हैं, वैसे ही हैं। फिर यह दर्शन क्या बला है? एक मनुष्य दूसरे को देखने आयें।

प्रश्न- आप कहती रहती हो कि साधु-संतों का दर्शन करने से ही पाप कट जाता है।

उत्तर- साधु हो तब।

प्रश्न- वे साधु महात्मा जानते हैं, तब आते हैं। हर एक का तो दर्शन करने नहीं आते।

बाई- तू भी ऐसा क्यों करती है? यह तो दर्शन करने आते हैं, उनकी सज्जनता है। उनकी भावना ही साधु बनाती है। क्या इससे साधु को कोई फायदा है? उनको तो, कितने ही लोग गालियाँ देते हैं, कितने ही प्रणाम करते हैं। उनकी भावना जैसी होती है वैसी होती रहे। उनको तो न तो साधु जानते हैं न देखते हैं। न तो उनके उससे कोई लाभ है न हानि है। भगवान ने कौशल्या माता को सोलह वर्ष का बालक बनकर दर्शन दिया। प्रकट हो गये। पीछे छोटे होकर रोने लग गये। कौशल्याजी को ऐसा हुआ कि अरे जिनके रोम-रोम में अनेक ब्रह्माण्ड हैं, वे मेरे बेटे किस तरह हुए? यह होते ही भगवान मुस्कुराये और

माताजी भूल गयीं। राजा जान गये मेरे यहाँ भगवान ने जन्म लिया है। वे परमानन्द में डूब गये। क्योंकि कौशल्या माताजी ने तो विवेक आदि मांगे थे और राजा ने तो एक भगवान को ही चाहा था। अरे! अलग हुए हैं ही नहीं। भगवान एक ओर अपने संकल्प को आप देखते हैं। मनुष्य जैसा विचारता है वैसा ही संसार बनता है। अच्छे मनुष्य का काम करो, वैसा ही जान पड़ता है। खोटे मनुष्य का करो तो खोटा जान पड़ता है। जब तक मनुष्य है, तब तक संकल्प है। तो फिर कुछ भी मत करो, खुद का विचार।

भगवान जनकपुर पधारे। किसी ने कैसा देखा और किसी ने कैसा, तो भगवान बहुत तरह के थे क्या? भगवान तो एक ही थे। भगवान वन से लौटते समय अयोध्या में आये तब गुरुजी को देख कर पुष्पक विमान से कूद पड़े और धनुष को गुरुजी के चरणों में रख कर दोनों भाइयों ने प्रणाम दिया।

क्योंकि पृथ्वी का भार उतार दिया था।

उस समय सब लोग भगवान के लिए उतावले हो रहे थे। उसमें सब जाति के लोग थे। तो उनसे भी एक क्षण में ही मिल लिये। तो ऐसे ही थोड़े ही मिल लिये। उनमें तो सब जाति के थे। यदि दिमाग में भगवान नहीं विराजते हैं और बाल बच्चे धन-कुटुम्ब घर हो, वहाँ पर भगवान कैसे मिल सकते हैं। जहाँ पति-पत्नी दो ही हों, वहाँ पर बाल बच्चों को भी पास नहीं रखते तो भगवान के साथ दूसरा किस तरह से रहे? अपने दिमाग से द्वैत निकाल दो, वे तो कहीं नहीं जायेंगे। आजकल संसार को सुधारते फिरते हैं। संसार का क्या बिगड़ा? पत्थर, पेड़, जो हैं, वे जैसे के तैसे हैं। जहाँ वहीं हैं। जिसके विचार बिगड़े हैं, वे दूसरों को क्या सुधारेंगे? अपना विचार बिगड़ने नहीं देना है। देखो, यह महाराज साहब का मकान है। अपन लोग सब प्रसन्न हो रहे हैं। अभी यह अपन में से किसी का होता तो और ही तरह के

विचार करते। महाराज साहब तो इस मकान में ममता रखने जैसे नहीं है। मेरा क्या है? इस पृथ्वी पर पड़ी वस्तु चाहे इधर हो चाहे उधर । ऐसी बातें माथे से निकाल दो, तब भगवान प्रसन्न होंगे। भरोसा भगवान का करना चाहिए। मनुष्य का क्या भरोसा? अभी मैं आपका क्या भरोसा करूँ और आपका मन बदल जाये तो मैं कहीं की भी न रहूँ। क्योंकि मन तो एक समान रहता नहीं है। मन एक समान रहा भरतजी का ।

वाल्मीकि रामायण में प्रसंग आता है कि जब भरतजी भारद्वाजजी के पास पधारे तो वहाँ भारद्वाजजी ने बहुत वचनरूपी बाण मारे, पर भरतजी कुछ नहीं बोले वे जानते थे कि मुझे दूसरों को बताकर क्या करना है। मेरे हृदय को भगवान जानते हैं। भरत ऐसे क्यों न होते। वे भगवान राम की छाया थे। भगवान विचलित होते तो वे भी विचलित होते । लक्ष्मणजी, निषादराज आदि सबके दिमाग

फिरे और भरतजी पर संदेह हुआ। भारद्वाजजी ने ऐसा क्यों कहा? उनकी परीक्षा लेने के लिए कहा। अपने मन में कुछ भी भरा हो पर अच्छे दिखने का प्रयत्न करते हैं। ईसा मसीह की पुस्तक में आया है कि अभी तू सच्चा प्रेमी नहीं है। "हे प्रभु तू" ऐसा किस तरह कहा?

बाई- देखो, एक ही शब्द में सारा वेदान्त भर दिया है। भले ही मैं तेरे से एक हाथ दूर रहूँ.... पर इन महापुरुषों का वचन भूलना मत।

प्रश्न- इसमें यह क्या कहा "हे प्रभु" यह कहने में द्वैतता आती है, दुराव है ही नहीं जिस जगह।

उत्तर- हाँ, यही ठीक है। जो उनका इतना प्रेमी हो तो, वह तो हर काम प्रसन्नता से करे। आप मुझे बहुत प्रिय लगे और मुझको कोई काम करने को कहा, वही काम खुशी से करूँ तब ठीक है। आपसे मोह तो रखूँ और मन में लाऊँ कि मुझे ऐसा काम बताया, मन में दुखी होऊँ। आपके और मेरे तो प्रेम

की बात है। स्वार्थ हो तो ससुराल-पीहर वालों से हो।

प्रश्न- यह बिल्कुल मैं पना कब मिटता है?

उत्तर- शरीर मिटता है, तब मिटता है।

प्रश्न- मन में ऐसा आता है कि जहाँ तक आप कहते हो वैसी नहीं हो सकूँ तब तक आपको तकलीफ क्यों देनी ।

उत्तर- आपको मेरे पास रहने से कौन सी तकलीफ है, और मेरे पास कैसा आराम है जो मैं दूँ?

प्रश्न- यह मन हर वक्त निर्मल, पवित्र, एक रस क्यों नहीं रहता?

उत्तर- आपने कौन सा मन का ठेका लिया है? ठेका लोगी तो ऐसा ही होगा । यह ठेका बिगड़ेगा। जब **अपने को मन से कुछ भी लेना देना नहीं। मन कहे वह कभी नहीं करना। ग्यारह बजे उठकर माला फेरो और मन यह कहे कि बहुत रात है-आलस्य आता है, माथा दुखता है तो जरुर उस समय माला**

फेरने बैठ जाना चाहिए। एक ही बार इसकी मानी और इसकी आदत बिगड़ी।

बाई- देखो! सत्य है कि अपने को जिस दाता ने अग्नि, सूर्य, चन्द्र, अन्न, जल आदि दिए उसको कभी याद किया? उसे तो भूले बैठे है और कहते हैं कि मैंने पैदा किया, मैं कमाता हूँ। अरे कभी याद किया कि किसकी कृपा से ये वस्तुएँ हैं और उसको याद करें तो इससे कहीं और ज्यादा मिल जाये। अगर तुम उत्पन्न करते हो तो देखें ऐसी और भी उत्पन्न करो न? उसको याद करो। उसकी इन मामूली वस्तुओं को देखकर, क्या आ हा हा करते हो?

प्रश्न- यह मन स्थिर क्यों नहीं होता है?

उत्तर- कुछ मन-वन नहीं हैं। वृत्तियाँ हैं, एक समान सदा रहतीं तो इन्हें मन कौन कहता, तब तो भगवान ही हो जायें। अपने क्या लेना-देना है? अपने विचारों को अपन ही जानते हैं। दूसरा नहीं जानता।

जैसे अपने घर में कहाँ-कहाँ खराबी है। सुबह साफ करें और शाम को फिर वही देखें तो फिर साफ करें। इसी तरह अपनी खराबियाँ अपन ही जानने वाले हैं, आपना मन गवाही देता है कि अब कोई गलती नहीं है, तब मानना। दूसरा तो मतलब साधने के लिए और खुश करने के लिए बिगड़ता है तो भी कह देता है कि ठीक है।

भगवान की तरफ थोड़ा भी मुड़े तो उसको तेल, प्याज, लहसुन नहीं खाना चाहिए। ये वस्तुएँ तमोगुणी हैं। इनसे वृतियाँ बिगड़ती हैं। विषय वासना की बातें करें, उन स्त्रियों के पास नहीं बैठना चाहिए। उनके घर नहीं जाना, बहाना ले लेना। इस बात मैं झूठ बोला जाये तो भी कुछ नहीं। किसी का नुकसान तो होता नहीं।

बड़े आदमियों की बात बड़ी होती है। लक्ष्मणजी ने इतना कहा भरतजी के लिए, भगवान एक अक्षर भी नहीं बोले । देववाणी हुई, लक्ष्मणजी के वास्ते

तब कहा। तब भी उनका आदर किया और बड़ी शान्ति से कहा। भरत साधु है। साधु उसको कहते हैं, जिसमें थोड़ी भी खराबी (कचरा) न हो। समुद्र के पास बिराजे थे, उस वक्त भी भगवान लक्ष्मणजी के कहने पर बड़ी शान्ति से ऐसा ही करूँगा- ऐसा नहीं करूँगा या ऐसा ही करूँगा, ऐसे विकल्प नहीं कहे। अपने को जो भी कहे, उसकी सुन लेना। अच्छा कहे या बुरा। वापस कुछ नहीं कहना। जिसने देखा, जो दिखता है और जो देखेगा (वह एक है) प्रकृति अनादि है और रहेगी।

रतन- देखना तो भगवान का ही है?

बाई - "हाँ, बहुरि सोच बस भये सिय रमणूं।" देखो! भगवान प्रकृति में रमण करने वाले बने और नर लीला का पूरा स्वांग उतारा। सीताजी को सब तरह से प्रसन्न जानकर, भरतजी का सब तरह का सोच मिट गया। प्रकृति अनुकूल हो तो सब ठीक और प्रतिकूल हो जाये तो कुछ नहीं हो सकता।

प्रश्न- भूत क्या होता है?

उत्तर- भूत-वूत कुछ नहीं होता। आज तक भूत किसी ने देखा नहीं है। ऐसी बातें कम उम्र में जमा देते है, वह संकल्प माथे में से निकलता नहीं है।

प्रश्न- हस्तरेखा के सहारे भूत, भविष्य की बातें कहते हैं, वे सच्ची होती हैं क्या?

उत्तर- माँ के पेट में थे, तभी मुट्ठियाँ भींच रखी थीं, उन्हीं की रेखाएँ हैं। इन रेखाओं में अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं है। ऐसे ढोंगी स्त्रियों और आदमियों को जो हस्त रेखा देखते हैं, कभी भी नहीं आने देना। जन्तर-मन्तर, गण्डे, ताबीज बनाने वालों को भी न आने देना। अपने को तो भगवान की ही बात कहे वह सुननी है।

रतन- कुछ तकलीफ पड़ती है तो मन में ऐसा होता है कि इस तरह से भगवान परीक्षा ले रहे हैं।

बाई- अपने लिए इस तरह भगवान का नाम नहीं लेना। भगवान कुछ भी नहीं करते हैं। वे तो देखते हैं।

प्रकृति माता उनके हुक्म से करती है। वही बन जाते हैं। अभी भगवान की आज्ञा नहीं है तो वर्षा नहीं हो रही है, आज्ञा हो तो हो जाये। अपने तो खूब प्रेम से भगवान का भजन करना है। दुःख-सुख कुछ नहीं है, विचार से होते हैं। एक बाई ने दो आदमियों को तेरह-तेरह सेर अन्न दे दिया। एक तो खा गया, यह सोच लिया कि बाद में होगा सो देखा जायेगा। दूसरे ने देखा अभी यह अन्न खा जाऊँगा तो फिर क्या करूँगा इसलिए उपवास कर लिए, उसी से मर गया। दो बर्तन रखें और कोई बहुत से कपड़े इकट्ठे कर उनमें भरकर रखें तो क्या लाभ? कोई भी नंगा नहीं फिरता है और भूखों भी नहीं मरता है। (इसलिए अधिक संग्रह नहीं करना) पहले से बहुत सी बातें माथे में भर रखी है फिर नयी क्यों डालना। यों सुनते रहना जैसे हवा का घर्राटा आकर चला जाता है।

प्रश्न- कल ही मैंने विचार किया था जीजा (बड़ी बहन) का, सो जीजा का ही स्वप्न आया ?

उत्तर- इसलिए तो मैं कहती हूँ कि यह संसार यों ही बनता है। मैं भगवान को देखूँ, भगवान मुझे देखें, जैसे काँच में मुँह देखे तो प्रतिबिम्ब बिम्ब को देखता है।

कालीदासजी- बात तो यही है। पर मैंने कहा- उसका यह तो जवाब नहीं है। क्योंकि यह मन ऐसा है कि ठकुरसुहाती कहता है। जैसा गुण आवे, उसी में हाँ में हाँ मिलाने लगता है। चढ़ते सूर्य की सब वन्दना करत है, अस्त होते हुए की कोई नहीं करता।

बाई- माया को देखा तो क्या देखा, (जगत) अपने को जहाँ तक नहीं देखा। हे भगवान! पहले आपने यह घोंसला (शरीर) बनाया फिर आप ही आकर उसमें विराज गये। आनंद कंवर बाई ने क्यारी में देख और कहा- देखो, मेढ़क बैठा हुआ है, गले में सफेद मूँछे कसे हुए कथा सुन रहा है। मैंने कहा कि दिखाता तो है पर हिलता नहीं है और जाकर

देखा तो पत्ता पड़ा हुआ था। वापस ऊपर आकर देखा तो मेढ़क जैसा दिख रहा था। मैंने कहा कि इसी तरह से संकल्प से भूत-प्रेत आदि बनते हैं।

कालीदासजी- इसी तरह सारा संसार बनता है, स्थिर होता है, और बिगड़ जाता है- कुछ रहता नहीं है। उसके अन्दर (स्थिरता में) टिक कर रहो तो ठीक, नहीं तो यह संसार फिर दिखने लग जाता है। घाटी में एक महात्मा रहते थे। उनके पास शेर, गाय और बकरी सब बैठे रहते। इसका कारण यह था कि सब में भगवान को देखते। इससे सब भगवान के समान ही बन जाते हैं। भले ही काला साँप आ जाये पर यहीं मन में रखें कि यह भी भगवान है।

बाई - अहंकार न होता, तो भगवान को भगवान कौन कहता? अब मुझको कुछ अच्छा नहीं लगता है, इसलिए जी भीतर से बहुत घुटता है। किसी के सामने जाओ तो पहले विचार करके जाओ। काम, क्रोध, लोभ आदि की बात करे, तो ध्यान नहीं देना।

सबमें आत्मा का दर्शन करना चाहिए। अपने को उनके जैसा नहीं बना लेना चाहिए। उनका संकल्प नहीं बनने देना। मैं सबका हूँ मेरा कोई भी नहीं हैं इसको सोचो। प्रश्न- महात्मा किन-किन गुणों से कहलाते हैं?

उत्तर- ऐसा काम नहीं करना कि जिसके औरों को मालूम हो जाने पर दुःख हो। आत्मा के सिवाय दूसरा कुछ है ही नही, यह बार-बार सोचो। शक्ति है, वह सब परमात्मा की है। अपने को और कुछ नहीं करना है। भगवान का नाम लेना और भगवान को जानने की कोशिश करनी। जीव मात्र में परमेश्वर है, उसी को देखना कि जैसी शक्ति मेरे अन्दर काम करती है वैसी ही जीव मात्र में काम करती है। पशु-पक्षियों में उड़ने चलने की मनुष्यों में भी इसी माफिक देखना। अपने नौकर चाकर भी कुछ काम बिगाड़ दे, कुछ तोड़-फोड़ दें तो भी कुछ कहना नहीं। इससे कर्म घटते हैं। कोई चीज देखकर प्रसन्न

नहीं होना बहुत अच्छी हो तो उसको बनाने वाले की, यानि ईश्वर की प्रशंसा करनी। क्योंकि ईश्वर ही सबमें है। वही बनाता बिगाड़ता है। अच्छा बुरा सब करने वाला ईश्वर है। सोते समय सारे दिन में क्या-क्या अच्छा बुरा काम किया, उसका विचार करना। किसी नयी वस्तु को देखकर, नयी बात को सुनकर आश्चर्य नहीं करना, ईश्वर की माया अलौकिक है। यह हमेशा याद करना । अहंकार तो कभी होना ही नहीं चाहिए। आत्मा के सिवाय दूसरा कोई है भी नहीं। बार-बार यही सोचना।

बाई- मनुष्य को जानवरों को मारने पर दया नहीं आती?

रतन- काकाजी चतुरसिंहजी ने कहा कि अपने को साग-भाजी चीरते हुए दया नहीं आती है, उसी तरह से इनका भी स्वभाव पड़ गया है।

बाई- इतना ही है कि कुटुम्ब में रहते हुए संसार बनता रहता है। अपने स्वार्थ के लिए किसी को भी

दुःख नहीं देना। बाई सा, मैं इन फूफा साहब की कलाई को यों समझती थी कि यो शन शन करती है। जो साफ मिटे, तब समझें। महाराज साहब ने बताया जैसे अपन बात करते है कि यह तो है जैसा ही है। मैं यह समझती थी कि मेरी समझ में यह बात क्या आवेगी। यह तो (कल्पना) दिखती है। बहुत समय बाद यह स्पष्ट हुआ कि यह शनशन शरीर है। अपने को कुछ भी इससे लेना-देना नहीं हैं।

प्रश्न- यह 'जीव' 'जीव' कहते हैं यह क्या है? इसकी खबर नहीं पड़ती ?

उत्तर- यह है तो नहीं, पर कहती हूँ कि जब तक इसके साथ में लगा रहे मैंने यों किया, मैं ऐसा करूँ तब तक जीवपना। यह प्रकृति में होता है। अपने को इससे कुछ लेना देना नहीं है। यह सही है।

पहले ऋषि, मुनि, महाराज साहब चतुरसिंहजी आदि घर दूर कुटुम्ब से दूर रहते थे। उसका कारण

ही यह था कि इनके कारण से रहते संसार बनता है और सत्संग को बड़ा मान ले तो संसार घटता हैं ......। यह संसार का बढ़ना ही अज्ञान का बढ़ना है और यह बने बिना नहीं रहता। इस कुटुम्ब में मनुष्य के लिए मनुष्य का संग ही खराब है। ऐसा कुटुम्ब का भाव यदि दो चार जगह रहे तो बस पूरे हो चुके। इसलिए मैं यह कहती हूँ कि एक भगवान के सिवाय कोई है ही नहीं।

रतन- गले में दर्द है। कोई दवा ले लीजिए न ।

उत्तर- मैं दवा नहीं लेती। एकाग्रवृत्ति रहे उसमें दवा लेने से ऐसा मालूम होता है कि तू भी दवा ले। ध्यान रखना, ऐसा होता है उस वृत्ति में (थोड़े से हिल कर धक्का लगा तो ऐसा होकर कहा) राधा देख रही है। एक कपड़ा माथे के बांधा, तब रतन ने कहा था कि राधा देख रही है।

बाई- अपना और इसका देखना एक सा ही है। यह देखे और उसी को सच माने। यह ऐसा ही है,

ऐसा निश्चय कर लें। इसे देखने में जितना ही फर्क है और कुछ नहीं है। ओ बाईसा ! एक भगवान है। बस ....

अब मन चक्कर तो नहीं खाता। वृत्तियाँ अलग दिखती हैं। अब सावधान रहना । अन्यथा जैसे वृत्ति उठती हैं उसमें वैसे ही हो जाते हैं। अतः सचेत रहना। एक ही वृत्ति रहना चाहिए। घुटने दुखते है तब शरीर का ध्यान नहीं रहता। हाँ उसी से यह अस्थि कंकाल उठता नहीं है। आवाज दी ए दुर्गा! ए दुर्गा ! सामने देखो पाडी। बाद में कहा देख! अब यह दुर्गा है कि मैं खुद हूँ। अब ओ बाई सा ! भगवान को कहाँ ढूँढती हो? सब जगह आप ही आप । अब किसने भुलाया । आप ही भूले। फिर कहा भूल याद कुछ नहीं। आप ही आप (आँखों में आँसू)। मनुष्य तो अकल वाला है और यों ही हाथों से काम करता है। पर इसको तो चारा खाना और पानी पीना, आगे कुछ नहीं। तो भी देखो अपने आप कुछ बनी और

भूले जैसे हुई। भूलता-भालता कुछ भी नहीं। अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं। आप ही आप। वाह! भगवान वाह!

प्रश्न- बुद्धि किस तरह बिगड़ती है?

उत्तर- भीतर तो अच्छे बुरे विचार सिर उठाते ही रहते हैं। किन्तु उनके साथ लग जायें और जैसे विचार उठे वैसे ही काम करने लग जायें, ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्न- बाई! यह बात है कि आप प्राणायाम तो सिखाती नहीं और मैं बैठी-बैठी क्या करूँ?

उत्तर- देखो भाई! भगवान ही हैं। उन्हीं को जो करना होगा, वह करेंगे अपने को इसमें दिमाग नहीं लगाना। गीताजी में भगवान ने कहा अधर्म बढ़ता है, तब मैं अवतार लेता हूँ। अधर्म बढ़ना यही है कि मन बहुत चंचल हो जाता है, कल्पना बहुत बढ़ जाती है। मैंने यह किया मुझे यह होता है। और अब क्या करूँ।

कल्पना में मिल जाना अपने को कल्पना बना लेना है। जैसे दुर्गा (भैंस) ने अपने को (दुर्गा) बना लिया। नहीं तो दुर्गा कहाँ है? हड्डी, चमड़ा आदि सबके हैं और यह बात समझ में आती नहीं है। नहीं तो अपने को कोई दुःख थोड़े ही देता है। आप ही बनते हैं और दुःख माथे पर लेते हैं। इसमें सावधान रहने की जरूरत हैं। ओम् नमो नारायण । ओं ओं ओं ।

प्रश्न- बुद्धि क्या हैं?

उत्तर- आत्मसाक्षात्कार। अपने को जान लेना कि अपन क्या हैं? फिर उसी निश्चय में बुद्धि को ठहर जाना ही पड़ेगा। नहीं तो आत्मा सामने आकर खड़ी रहती नहीं है। क्योंकि देखने वाला, दिखने वाला किस तरह होगा? आँख दीवाल किस तरह हो और ऐसे आँख ही दीवाल हैं, वही देखकर यह कहती है कि यह दीवाल है। इस प्रकार से चूना, पत्थर आदि इकट्ठा लगने से दीवाल कहलायी। यह सब बुद्धि का

काम है- यही बुद्धि है बस।

प्रश्न- चित्त क्या है?

उत्तर- मन और बुद्धि के संग में जो कुछ हुआ सा लगता है, वह अहम्। इन तीनों के सम्मिलित रूप का नाम हैं चित्त।

प्रश्न- जीव क्या है।

उत्तर- जैसे घड़े में पानी भरा हुआ हो और उसमें आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ता है और वह जलाकाश कहलाता है। इसी प्रकार चित्त में चैतन्य का प्रकाश पड़ता है और यह 'मैं' इस प्रकार कुछ बन गया। वही अलग होकर कुछ लगा। फिर वही दृढ़ हुआ भाव 'जीव' कहलाता है।

प्रश्न- इस जीव को किस तरह मिटाना?

उत्तर- जैसे घड़े के जल मे पड़ने वाला आकाश का प्रतिबिम्ब जलाकाश हो गया, पर जल में वह गीला थोड़े ही होता है। वह तो वैसा ही रहता है। उसी तरह से अपन तो साक्षी है। उसी तरह से इसके

जानने वाले हैं। यह जो दुःख-सुख, अच्छा-बुरा लगता है, वह इनका है, अपना कुछ नहीं होता, यह साफ है। अपन तो आकाश की तरह से हैं। काँच के मकान में खड़े रहें, तब तक तो मुँह दिखेगा ही। किधर भी फिरो। 'अपन हैं', इस अपने आस्तित्व का अपने को भान होना चाहिए। इसको सामने रखने से इन सबको सत्यता मिलती है। यही इस महादर्पण में मुँह दिखना है और अन्य प्रकार के बने अहं भाव को भूलना है। क्योंकि अपने आपको तो अपन किस तरह भूलें। अपन हैं, तो किस तरह नहीं हैं? अपन सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो अपन हैं-यह भान कभी नहीं भूलता। यह नहीं भूला जाये और फिर कुछ भी नहीं बना जाये तो क्या-क्या न बना जाये। जब नवीनता नहीं लगती तब अपन समझ जाते है कि अपन एक चैतन्य हैं। इस तरह अपना ज्ञान होते ही अपन और चैतन्य अनेक नहीं रहते, एक हो जाते हैं। पीछे दो न रहकर भ्रम मिट जायेगा। बस!

प्रश्न- आज यह वृत्ति उठी कि सबमें ही यह बात क्यों आती है कि दुःख और बन्धन का कारण क्या है?

उत्तर- सभी महात्मा यह कहते हैं कि अहंवृत्ति को, कर्ताभाव को, कर्तापन के अभिमान को छोड़ दो क्योंकि वह शरीर भी एक वृत्त है। अहं वृत्ति ऐसी वृत्ति है कि यह सबमें मिलकर सबमें चेतना, सत्यता भरती रहती है। इससे जितनी वृत्तियाँ उठती उनको यह जंजीर का रूप देती है। श्रृंखलाबद्ध बनाती है जिससे हम इसे अपने स्वरूप में स्थापित कर लेते हैं। मैं देखने वाला हूँ, इसमें स्थिर हो जाओ, फिर सब कड़ियाँ अलग-अलग हो जायेगी। इसमें सच्चेपन का भ्रम है, वह निकल जायेगा। फिर यह अपने सही रूप में दिखाई देने लग जायेगा कि यह वास्तव में कुछ और है, लगती है कुछ और ही।

ध्यान से देखें तो मालूम पड़ता है कि जैसी कल्पना उठती है वैसी कल्पना या उससे मिलती-

जुलती कल्पना उठती रहती हैं और ऐसा लगता है कि मैं ऐसा, मैंने किया, यह मैं हूँ। इसमें से मैं हटते ही सब चीजें अपने-आप ठिकाने लग जायेंगी। हैं तो ये स्थापित, पर भ्रम मिट जायेगा।

प्रश्न- यह 'मैं' किस तरह से मिटे?

उत्तर- यह 'मैं' ही है। भगवान और 'मैं' अलग-अलग नहीं हैं सो मिटे क्या? आप ही एक अखण्ड हैं, फिर मिटे किस तरह?

प्रश्न- मेरा यह ममत्व किस तरह मिटे?

उत्तर- सब अपना ही है। अपने में से निकले, ऐसे अपने सिवाय यह दूसरे का कहाँ और दूसरा कहाँ।

प्रश्न- तब दुःख-सुख क्यों होता है और अच्छा-बुरा क्यों लगता है?

उत्तर- दुःख-सुख तो दूसरा मान लिया। वह दूसरा, मैं दूसरा- ऐसा मानने से लगता है। नहीं तो दूसरा (भिन्न) कहाँ हैं? कल्पना सबको ही दिखती हैं, और सब देखते हैं और उसमें दो लगते हैं। उसमें

जो 'मैं' दिखता है उससे दूर ही रहना बताया गया पर समझा मैं यह गड़बड़झाला लगता है। कल्पना तो अच्छी-बुरी, अपनी और दूसरे की, सबकी लगती है।

प्रश्न- तो फिर समूल दुःख किस तरह मिटे?

उत्तर- जब यह बिल्कुल दृढ़ हो जाए, जैसे अभी यह संसार दृढ़ लगता है, शरीर में 'मैं' लगता है कि मैं इसको जानता हूँ और वह जानकारी एक सरीखी, ऐसी की ऐसी है **जो दिखता है वह बदलता है। अपने को इससे कुछ लेना-देना नहीं है।**

प्रश्न- जगत् रूप भी परमात्मा किस तरह है?

उत्तर- जगत् रूप भी परमात्मा हैं और जगत् रूपी हलचल नहीं होती, उस समय भी परमात्मा हैं? जैसे पहाड़ से पानी गिरता है और उसकी बूंदें बिखरी दिखती हैं, उस वक्त भी पानी है और पीछे सब इकट्ठा हो जाती है, एक जगह स्थिर हो जाती है तो भी पानी ही है। इसी तरह मन की चंचलता और

स्थिरता दोनों में ही वह जानने वाला एक ही है। दूसरी उपमा और देवें कि जैसे घोर अन्धकार हो और उसमें कई आकार लगते हैं, पर है तो अंधकार ही-आकार भी अंधकार और अंधकार भी अंधकार । इसी तरह से एक परमात्मा ही सर्वत्र फैल रहा है। उसमें अपन एक 'मैं' रूपी दृष्टा देख रहे हैं। आप ही आप में एक, और बहुत भिन्नता देखता है तो भी, एक आप ही हैं।

प्रश्न- यह संसार किस तरह मिटे?

उत्तर- यह संसार विचार से मिटता है और अविचार से दिखता है। विचार करते हुए चुप रहो, ऐसा बार-बार करने से दृढ़ता आ जाती है। अगर यह न हो तो सच्चाई की जरूरत क्या ? मन में दृढ़ता लानी कि अवश्य होगा। उत्साह के साथ कार्य करना ।

प्रश्न- संसार क्या हैं?

उत्तर- कांच का प्रतिबिम्ब नीचे पड़ता है और

कांच जैसा ही लगता है, ऐसे ही स्वरूप का प्रतिबिम्ब है संसार। आपकी प्रतीति आपको ही होती है और आप तो हैं ही, आपमें किसी का भ्रम हो जाये, इस स्वरूप का विस्मरण हो जाये, तो माया की उत्पत्ति। क्या तो होती है और क्या लगती है।

माने हुए 'मैं' को ही नहीं भूल सकते तो अपने आप को भूल ही किस तरह सकते हैं (सत्य भान अर्थात् सच्चा लगना) में परमात्मा को किस तरह पा सकता हूँ, यह दीनता दूर करो।

बाई - बना हुआ 'अच्छा' बहुत खराब होता है। देखो, हवा, पानी, धूप, आकाश ने तो अपने को कभी नहीं कहा कि हम आपको इतना आराम देते हैं और हमसे थोड़ा भी किसी का हित हो जाये, तो यह कहने लग जाते हैं। और बाहर न कहें तो अन्दर अपने मन में तो कहते ही हैं। आप ही बनावें और आप ही इनके साथ लगकर अहंकार करें। अपने सिवाय दूसरा है नहीं। परशुरामजी ने कितना किया।

आप सामने खड़े हैं और कहने लगे कि मैंने यह किया, और आपने यों किया और उनके सब अहंकार को मेटने में एक क्षण भी आपको नहीं लगा और विश्वामित्रजी ने कहा कि यह शक्कर ईख बिना आयी कहाँ से। ऐसे तुममें जो बल है, यह आया कहाँ से? रावण को राम ने कहा कि तीन तरह के मनुष्य होते हैं। पर रावण पक्का था। उसने कहा कि अब आप भुलाते हो तो मैं नहीं भूलूँगा। लड़ना है तो लड़ो सामने आये हैं तो जो करना हो वह कर लो। सच्चा तो कुछ है ही नहीं। भीतर से इस तरह पक्का रहना। यह प्रकृति भगवान की औजार (करण) है जैसे यह पंखा हवा करने का औजार है। यह भगवान को मोहित करती है या न जाने क्या करती है। अपन ही तो इसको आप ही बनावें और आप ही इसके साथ में इस तरह से पागल होवें । आपमें तो दुःख है नहीं। यों यों करके दुःख हो, ऐसी इसे यों ही बनाते हैं। मनुष्य की तरह से पागल होते

है कि इन इन्द्रियों के साथ

लगने से। देखो, आप ही प्रकृति को बनाते हैं और आप ही पागल होते हैं और आप ही फिर समझते हैं। भगवान बिना और कोई है ही नहीं। देखा मैं विधवा हुई तब यह तुलसी मेरे पास रहती थी। आठ वर्ष की थी। इसकी सहेलियों के साथ खेलने जाती तो उन्होंने पूछा कि तुलसी बाई, तुमने रोटी खाई है क्या? यह छोटी ही थी तो कह दिया कि नहीं खायी। हमारे घर में तो अन्न भी नहीं है। मेरी जीजी भी दो-तीन दिन से भूखी बैठी है। तो उन लड़कियों ने जाकर अपनी माँ से कहा। देखो, जीयाजी अपनी काकीजी हैं, वे भूखी है। घर में अन्न नहीं है। अभी मैंने खाया और तुलसी बाई को खिलाया। उसकी माँ ने कहा कि ऐसी बात मत करो। उनका बहुत बड़ा घर है। उन्होंने कहा कि सच कहती हूँ। फिर उसकी माँ ने तुलसी को बुलवा कर पूछा। उसने कहा दो, उनके जेठ के लड़के ने सब कण्ट्रोल में कर लिया।

मेरे यहाँ अनाज नहीं है। भूखी हूँ। तो वह स्त्री जिस घर में रहती थी उसके बाहर निकली तब वह एक जगह लगभग आधा मन घी, लगभग एक मन आटा, नमक, मिर्च, दाल चुपके से रख गयी। अब उसके बर्तन कम से कम बारह महीने तक पड़े रहे। पर वह कहती नहीं थी कि किसके हैं? किसको दूँ? फिर एक दिन वह मेरे पैर पकड़ कर कहने लगी- मैं और मेरे पति दो ही हैं। आप मेरे मालिक हो, आप मुझसे कोई भेद मत रखना और जरूरत हो वह मुझे बता देना। फिर वह मेरे वास्ते दो साग और तीन फुलका बनाकर नित्य ले आती।

उन दिनों मैं साधना करती थी। वह अपनी एक बच्ची को बाहर बिठाये रखती। जब मैं बाहर निकलती तो वह दौड़ी-दौड़ी जाकर अपनी माँ से कहती। उसने मेरे साथ जैसा उपकार किया वैसा किसी ने नहीं किया। नाथद्वारा वाले मनुष्य तो सब मुझे अपनी ही जानते हैं। देखो, भगवान ने पहले तो

मेरे बंधन काट दिये। तिल रखने जितना भी ममता का सहारा नहीं रखा। फिर भगवान को ही सब करना पड़ा। सबके हृदय में आप विराजते हैं।

नाथद्वारा में एक साधु आये। उनके लिए मैंने हलुआ बनाया। वे उस हलुए में पानी डालकर घोल करके पी गये। मैंने उनसे कहा कि महाराज आपने यह क्या किया। मैंने बेकार ही इतनी देर तक तकलीफ की। उन महाराज ने कहा- माता, तुम कहती हो, वह सत्य है, पर ये इन्द्रियाँ ऐसी खराब हैं। इनके कारण ही तो घर छोड़ना पड़ा। नहीं तो घर छोड़ने की क्या जरूरत थी। सर्दी, भूख, माँगना ये सब सहन करना पड़ा। क्या अब भी इतना क्रीत दास रहा जाये? नहीं कदापि नहीं।

एक वक्त मेरे पास एक बड़े घर की औरत आयी। उसे कुत्ता काट गया था। वह दस निवाले गिनकर खाती थी। जितनी भी वस्तुएँ खाने को उसके सामने रख दी जाती, सबको मिलाकर के खा लेती। मैंने

उससे पूछा कि आप ऐसा क्यों करती हो? उसने कहा कि आपके मेवाड़ के घरों से भी बड़ा मेरा घर है। अब ये इन्द्रियाँ बहुत स्वाद ले चुकी जिसे याद करती हैं। इसलिए ऐसा खाती हूँ कि लो, यह स्वाद ले लो। तो यह एक बार तो (अंगुली फिराकर इशारा किया) चक्कर खिला देती हैं। ये इन्द्रियाँ बहुत खराब हैं। देखा, सच्ची बात नहीं है क्या? सत्संग में कितना ही लाभ है। याद रखने जैसी बात है। ये इन्द्रियाँ भ्रम में डाल देती हैं।

एक बार नारायण महाराज की दाल में नमक कम पड़ गया होगा, इसलिए महाराज ने इशारा किया तो मैंने कहा कि लाऊँ। पर महाराजजी तो रोने लगे। सो दो घण्टे तक रोये होंगे। हाथ में रोटी थी, वह भी गंगाजी में फेंक दी और मुँह का ग्रास भी बाहर निकालकर हाथ धो लिया। फिर मैंने पूछा तो इशारे से कहा- यह जीभ ऐसी है जब भगवान को भोग लगाया तो उन्होंने तो कुछ कहा नहीं और यह इस

प्रकार करती है। इन इन्द्रियों के साथ नहीं लगना, नहीं तो ये दौड़ा कर कहीं पटक देंगी।

देखो! बाईसा अपन भगवान के बनाये हुए हवा, पानी में रहते हैं और उन्ही की बाँधी हुई मर्यादा में न चलें, यह अच्छा नहीं है। ऐसा बहुत बार कहा मेरी बड़ी बहन की बात पर। "राम करहु सब सजम आजू" वाशिष्ठजी महाराज ने संयम के संबंध में कहा-आप जानते हैं कि आपको कुछ चाहिए नहीं और कुछ करते नहीं। करना प्रकृति में है, किन्तु देखो, इस प्रकृति को सत्ता आप स्वयं देते हैं। सत्ता नहीं देनी चाहिए। यह सत्ता देने से धूल खाते कर देती है। अपन तो यों ही कर रहे हैं। इधर ही देख रहे और मुँह इधर ही कर रखा है। रामजी ने इतना भक्त के मन की कुटिलता दूर करने के लिए किया। भरतजी भक्त थे, अतः उनके लिए रामजी ने झंझट उत्पन्न किया और लक्ष्मणजी महाराज ने क्या कहा कि यह नीति धर्म क्या होता है। इनको मैं कुछ नहीं

जानता हूँ। हे राम, मैं तो आपके सिवाय और कुछ भी नहीं जातना हूँ।

मैं शौच जाती हूँ वहाँ रास्ते में लड़कियों को कंकरियों से खेलती देखती हूँ। पहले तो कंकड़ इकट्ठा कर लेती हैं और उन पर लड़ती हैं। बहुत लड़ती हैं। और फिर वे कंकड़ फेंक कर चल देती है। कंकरियाँ फिर वहीं के वहीं अपन भी इस संसार में जो दिखता है, वह इकट्ठा करते हैं और बाद में यहाँ का यहाँ ही डाल जाते हैं। पहले के मनुष्य तो बारह वर्ष का अकाल काट देते थे, दुःख सहन करते थे। उनमें संग्रह वृत्ति नहीं थी। अब मनुष्य अपने लिए इकट्ठा करता है और अपना छोटा सा अहं बनाकर रहता है।

कौशल्या माताजी ने रामजी के वन में पधारने की बात सुनी, तब कहा कि विधाता की गति विचित्र है। वे जानती थी कि प्रकृति तो यों ही फिरती रहती है और उथल-पुथल करती रहती है।

रतन- कौशल्या माता में कितना विवेक था।

उत्तर- विवेक होना चाहिए। विवेक के बिना जीवन किस काम का? हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, युधिष्ठिर ने कैसे दुःख देखे। धर्म के वास्ते मर जाना, पर विवेक नहीं छोड़ना।

प्रश्न- जब रामजी ही सब करते हैं तो मनुष्य क्या करता है?

उत्तर- मनुष्य को बुद्धि दी, विवेक दिया, पशु क्या करें? मनुष्य तो ऐसा कहते हैं कि ये पशु हैं, क्या समझे। मनुष्य में बुद्धि-विवेक दिये। हर वक्त सावधान होकर जीवन बिताना। इस कलियुग में दया भी एक तरह से पाप होकर गले पड़ती है। अपने शरीर से हो जितना कर देना, जिस पर दया करें उससे ममता नहीं जोड़नी चाहिये। सुसराल, कुटुम्ब, पीहर से बहुत संसर्ग नहीं रखना।

यह हमेशा याद रखना कि जो भी हो, अपन (आत्मा) तक नहीं पहुँचता है। कल्पना सामने आते

ही उसकी तरफ से मुँह फेर लेना, जैसे खराब चीज को देखकर फेर लेते हैं। खान-पान और पहनाव में जैसा हो वैसा ही बरत लेना।

प्रश्न- यह माया क्या है?

उत्तर- यह माया, माया जो कहते है, वह एक ही है। भगवान की आदत। यह है तो एक, पर दिखती है अनेक तरह से। जितनी दिखती है वह सब है तो एक ही। किधर भी (हृदय) कोने-कोने से जो कचरा रह गया हो वह निकाल फेंकना। सबमें समबुद्धि अर्थात् यह मानना कि सब में शक्ति एक है और हलचल एक-सी है। सबमें ज्ञान है वह परमात्मा है, सबमें सुख-दुःख का ज्ञान है। शरीर अलग-अलग दिखते हैं। इनको अलग-अलग नहीं देखना। चरित्रवान बनना। मर्यादा पर चलना। महापुरुष इसलिए विषयी मनुष्यों में बैठने के लिए मना करते हैं कि वह अपनी आदत को छोड़ देना है। उनमें बैठने से तथा उनकी बात सुनने से आदत मज़बूत

होती है और फायदा कुछ है नहीं। एक परमात्मा हैं। मैं हाथ जोड़ती हूँ, प्रणाम करती हूँ और इस तरह कहती हूँ। ऐसे संग में बिल्कुल भूल पड़ जाती है। अकेला रहना। सावधान रहना। यह मेरे अनुभव की बात कहती हूँ।

प्रश्न- इन्द्रिय ज्ञान का प्रभाव नष्ट किस तरह हो?

उत्तर- जैसे पंखा चलता है, जितना तेज चलता है, उतने ही उसके पत्ते (ब्लेड) नहीं दिखते हैं और जब ठहर जाता हैं तब साफ दिखाई देते हैं। मन का वेग कम करने से इन्द्रियों का प्रभाव मिटता है। अपना पति कितना ही खोटा और ऐबी हो तो भी उसका अपमान नहीं करना। मैंने भगवान जानकर सेवा की। वे 53 वर्ष के थे और पाँच बेटे-बेटी होकर के पहले स्त्री मर गयी। फिर मैं ग्यारह वर्ष की आई। कुछ समझती ही नहीं थी।

मेरा स्त्रियों का साथ नहीं रहा। मेरे सुसराल में मुझे पानी भरकर लाने या आटा पीसने का काम भी नहीं

करना पड़ा। बड़ा घर था। ।5 स्त्रियों के जेवर थे। बहुत से कपड़े-लत्ते, बरतन आदि थे। पिछवाई का (दीवार पर लटकाने के भगवान की लीला के चित्र बनाने का काम होता था। 30 आदमी उनके नीचे काम करते थे। उस घर में आठ बजने के बाद औरत इधर-उधर नहीं घूम सकती। इतने चित्रकार काम करते, मैं ऊपर रहती थी। दस महीने बाद पति को बीमारी हो गई थी। कभी तो मैं बिछौना बिछाकर और तकिया लगाकर सोती नहीं थी। कभी अच्छा पहना नहीं। पति के खाने के बाद जो थाली में रहता था, उतना ही खा लेती और कुछ खाती नहीं, सूख कर कांटा हो गई थी।

मेरे ग्यारह जेठ और ग्यारह जेठानियाँ थीं। मुझे कहती थीं कि तुम्हारी इतनी सी उम्र है और तेरे आदमी की यह हालत । कहीं नाते ही चली जा । मैं और तो समझी नहीं। मेरे मामा की बेटी नाते चली गई थी सो उसको वहाँ ले गए। मैं ख्याल करती थी

कि क्या यह कहकर मुझको भी वहीं ले जायेंगे। अर्थात् सब औरतें उसी घर में नाते जाती थीं।

जब बाद में उनका शरीर छूटने लगा, तब मैंने उनसे पूछा मैं क्या करूँ। उन्होंने कहा 'साधु' हो जाना। तो वचन फला और इधर भगवान ने भी ऐसा कर दिया कि सब फंदे काट दिये। वह सब हो करके अब यह स्थिति हुई है। यह शरीर तो कुछ करता नहीं। उसकी बदनामी और तारीफें होती हैं। परन्तु अन्दर तो आप बिराजते हैं, जो सब जानते हैं और देखते हैं कि आप-मैं क्या-क्या मानते हैं और कुछ नहीं है, भगवान है। भगवान के सिवाय कोई नहीं है ।

प्रश्न- विवेक किसको कहते हैं?

उत्तर- विवेक कुशलता और व्यवहार में बड़े बहूजी (महाराज शिवराज सिंहजी के प्रथम धर्मपत्नी) हैं। दुःख और तकलीफ तो उठाना ही पड़ता है। सुख की दासता उसे कहते है कि जब

दुःख आता है तब अनेक उपाय करके उसको दूर करने का प्रयत्न करना है। ऐसा कर लूँ तो दुःख मिट जाये। एक तरह से विवेक कर लेता है, जितना आयेगा वह मिटेगा। वह फिर आयेगा और मिट जायेगा। इस संसार में तो यही होता रहता है जो आवे उसको सह लेना । तब वह निकल जायेगा। जो आवे और जाये, उन दोनों को सुख-दुःख को माथे में नहीं रखना। दूसरी स्थिति बनावें तो वह कौनसी स्थिर रहेगी ।

प्रश्न- बाई, आनन्द कंवर ऐसा कहती है कि मुझे बड़ा घाघरा पहने हुए राधिकाजी और बंशी लिये भगवान कृष्ण सर्वत्र दिखते रहे ।

उत्तर- मुझको तो देखना ही नहीं। नारायण स्वामी ने दिखाने के लिए कहा तो भी मैंने इन्कार कर दिया। भगवान को कहाँ ढूँढे। देखती नहीं। वे सब जगह (कुत्ता, कबूतर, बालक की तरफ इशारा करके बताया) हैं।

कृष्ण भगवान ने राधिकाजी से कहा- मैं हूँ, तू नहीं हैं केवल मेरी छाया है। मनुष्य क्या क्षमा कर सकता है और कौन किसको निभा सकता है? भगवान समुद्र हैं, उनमें सब निभ जाता है। वे क्रोध करें तो अपना कहीं पता लग सकता है? फिर तो अपराध ही होते रहें। दुःख से बचने के लिए तो सब ही क्षमा माँग लें। गलती होने पर दंड मिलेगा, ऐसा जानकर तो सब ही क्षमा माँग लें, पैर पकड़ लें। सच्चाई पूर्वक क्षमा इस तरह से होती है।

नाथद्वारा में एक मीणा था। उसको किसी अपराध में पकड़ लिया। उसको पूछा गया तो उसने मना कर दिया। मैंने नहीं किया। फिर उसके हाथ में गीताजी और गंगाजली देने लगे तब वह लेने से इन्कार कर गया। उसने कहा कि मैंने अपराध किया है। हाकिम ने कहा कि तीन हजार रुपये लग जायेंगे, ऐसा क्यों करता है। उसने कहा कि मैं अपना धर्म नहीं बेच सकता हूँ। उस पर इतनी विपत्ति होते हुए भी उसने

सच्चाईपूर्वक अपराध स्वीकार किया।

अब देखो, अपनी कितनी उम्र है। दुःख-सुख को कहाँ देखते बैठे। एक भगवान है। देखो, महाराणा प्रताप और युधिष्ठिर ने कितने दुःख देखे, पर न करने योग्य काम नहीं किया। न देखने योग्य देखा नहीं, न सुनने योग्य को सुना नहीं।

प्रश्न- दुःख सहन किस तरह करें?

अलख आश्रम

चरन पादुकाएँ

अलख आश्रम, नाथद्वारा

उत्तर- अपनी जान में कोई गलती हो और अपन उससे डरे, भागें, छिपे, इधर-उधर। पर जब पकड़ जायेंगे तब सजा तो होगी ही। तो पहले ही पकड़ में आ जाऊँ सो ठीक नहीं तो छिपने तथा भागने में जो दुःख होता है वह भोगना पड़ेगा। दशरथजी चाहते

तो रानी को कान पकड़कर निकाले देते। मारपीट कर सकते थे। पर उन्होंने कुछ भी नहीं किया। सत्य में बँधे हुए थे। बेटे को वनवास दिया, निन्दा भी सही, यहाँ तक कि उनके प्राण भी जाते रहे, पर वचन से नहीं फिरे। इसी तरह से उनका दाँव आया बदला लेने का दुर्योधन से, पर तब भी धर्म को नहीं छोड़ा और दुःख सहन किया।

प्रश्न- संशय क्या है?

उत्तर- यह सब संशय ही है। अगर संसार जैसा है वैसा ही उसे समझ लें तो क्यों हाय-हाय करना पड़े। क्यों लोभपूर्वक ग्रहण करने की प्रवृत्ति होवे और क्यों अपना सच्चापन प्रमाणित करना पड़े। 'चित्त शुद्धि' में आया है कि भगवान के सिवाय कुछ भी वस्तु सच नहीं है। सच्चाईपूर्वक इसको मानने पर संकल्प उठता हुआ दिखे तो संकल्प कहाँ से उठा, इसका पता लगाना चाहिये। उसकी खोज करने से यह साफ पता लग जायेगा कि वस्तु में अहं बुद्धि

मानना ही इसका उद्गम है।

आत्मदर्शन स्थल, सरदारगढ़

प्रश्न- अहं बुद्धि किस तरह मानें?

उत्तर- वस्तु को अपनी मानना (मेरी है या मैं हूँ, यही अहं बुद्धि है) यह गाय इनको सूँघती है। आनन्द कंवर को मारने लगी क्यों, क्योंकि यह जानती है कि यह मेरी नहीं, दूसरी है। तस्वीर में भगवान मानते हैं इन पशु-पक्षियों में क्यों न मानें। ये सब भगवान की सच्ची मूर्तियाँ ही है। सबमें भगवान ही हैं। जो शक्ति अपने सबके शरीर को धकेलती है, वही इन सबमें भी है। जैसे मकड़ी जाला बनाकर बैठती है और उसमें मक्खी तथा मच्छर फँसते हैं उस तरह से अपने को कोई फाँसता थोड़े ही है। अपन ही फँसते हैं।

प्रश्न- सेवक में और दास में क्या फर्क?

उत्तर- सेवक तो नौकर की तरह से होता है और दास कहता है कि मेरे तो उसके सिवाय कोई भी

नहीं।

प्रश्न- राधाकृष्ण दो हैं कि एक ?

उत्तर- एक बार राधिकाजी ने पूछा कि ओ कृष्ण भगवान, मैं आपको अपना खिलौना समझती हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि आपकी स्तुति क्यों करते हैं? मैं आपको नचाती हूँ तो आप नाचते हो। तब कृष्ण भगवान ने उत्तर दिया-राधिकाजी, यह मत पूछो नहीं तो अपना खेल बिगड़ जायेगा । राधिकाजी ने कहा बताओ और जिद्द कर ली। तब भगवान ने कहा कि तुम तो हो ही नहीं, तुम तो सिर्फ मेरी छाया हो, जैसे देखो यह प्रकृति चारों ही तरफ सब ढँक करके अपने आप ही सब बनकर बैठी है। तुलसीदासजी महाराज ने कहा है-सीताजी अपना स्वभाव छोड़कर रामजी की सेवा करती थीं। मिर्च, पानी, चन्द्रमा अपनी आदत छोड़ दे, तो फिर वह कैसे रहे? उनका कोरा आकार रह जायेगा, कोई गुण न रहेगा।

प्रश्न- दवा नहीं लेते हैं फिर भी कहते हैं कि दवा क्यों रखती हो?

उत्तर- ऐसे क्यों मरते हो? भजन क्यों नहीं करते। देखो, यह ख्याल कभी मत करना। मिट्टी का घड़ा फूट गया तो भी वह रहा तो मिट्टी ही में। एक अपन और अपनी कल्पना के सिवाय क्या है? ढूँढोगे तो कुछ मिलेगा नहीं। अपने को कुछ समझना है नहीं। यह पक्का निश्चय कर लेना है। तुम्हारा घर है और मैंने लड़ाई करके ले लिया, लिया क्या? वह तो जहाँ का तहाँ है। इसी तरह सब हैं। साथ में कुछ आता नहीं, कल्पना को क्या देखना। आगे देखो। संग का दोष यही है कि ऐसा लगने लगता है कि मैंने किया, मेरा है। इससे वृत्ति बड़ी मुश्किल से ठिकाने आती है अपने तो इतना ही ध्यान रखना है कि मेरे तक कोई वृत्ति न पहुँचे। बहुत सावधानी से जिन्दगी निकाल देनी है।

भूरामलजी ठेकेदार के पास भैंस थी। उसको

दूसरी जगह भेज रखा था और उस पर आदमी रखा हुआ था। वह आदमी भैंस को अच्छी तरह नहीं रखता था। भूरामलजी को सपने में कहा-मुझे अच्छी तरह नहीं रखता, बुला लो। भूरामलजी ने वहाँ जाकर देखा तो सचमुच वह बहुत दुबली हो गयी थी। उन्होंने उस आदमी को अपने पास बुलाकर पूछा कि तुमने यह क्या किया? इसमें क्या, सबमें आत्मा तो एक है। भगवान की तस्वीर, महात्मा की तस्वीर और फिरंगी की तस्वीर-ये अच्छी हो या बुरी, उसका दर्शन करना और इसका नहीं, इसका क्या मतलब, यही रंग है, और यही कागज, पर इसका मतलब यह है कि जैसा भाव आगे दिखता है वैसा ही विचार बनता है। चरित्रवान रहना चाहिए।

प्रश्न- सब क्यों नहीं समझते हैं?

उत्तर- नहीं, नहीं समझते सब है। सब यह जानते हैं कि कल्पना हम ही हैं। वे कल्पना ही बने रहते हैं। वरना कल्पना तो जो समझते हैं और जो नहीं

समझते हैं उन सबको होती है। जो समझते हैं, वे जानते हैं कि हम कल्पना को जानते हैं। जैसे मकड़ी जाला बनाकर ऐसी हो जाती हैं कि मैं बँधी हूँ, परन्तु वह चाहे तो छोड़ दे, ऐसे ही आप चाहें तो कल्पना से निकल जायें।

प्रश्न- ऐसा साधन बताओ कि कल्पना हो ही नहीं
।

उत्तर- 'मुझे चाहिए' यह छोड़ दो। धूप सूर्य का स्वभाव है। इसी तरह कल्पना भगवान का स्वभाव है। सभी प्रतीति ऐसी दिखती हैं कि मानों हैं पर वह होती कुछ नहीं। तीन दिन दिमाग से भर्राटा निकलता नहीं। ऐसा ही प्रकृति का स्वभाव है। अपन मानते हैं, तब दुःख-सुख होता हैं। जिधर भी थोड़ा मन लगाओ, उधर ही बह जाता है। फिर काबू में करना मुश्किल हो जाता है। देखो, मैं छोटी थी मेरी शादी कर दी और उनके बीमारी लग गयी। कितना ही कफ पड़ता और मैंने यह सोचा हे भगवान! तुमने

ऐसा क्या किया और भगवान ने तुरन्त ऐसा किया कि मैं तुरंत समझ गयी कि यह संसार झूठा है। संसार में रहना और निष्काम कर्म करना। 'मैंने किया' ऐसा नहीं करना। अच्छा किया तो भगवान ने किया और बुरा किया तो भगवान ने किया बस । बाल जितना भी मेरापन नहीं रहना चाहिए। कहाँ दान, कहाँ पुण्य और कहाँ तीर्थ? भगवान राम ने वशिष्ठजी से पूछा कि यह क्या है? वशिष्ठजी ने कहा- मैंने बहुत खोजा, पर मेरे सिवाय दूसरा कोई भी नहीं मिला। ऋषियों ने कहा कि भगवान शंकर ने काम को जला दिया। भगवती पार्वतीजी ने कहा कि अग्नि के पास जायेगा तो जलेगा ही। देखे तब तो दिखे ही। गुरुजी ने कहा कि बंदर का ध्यान मत करना, तो ज्यादा-ज्यादा ध्यान आता। नहीं करना है, ऐसा विचार हो तो उतना ही उतना अधिक स्मरण आता। सभी काम करते हुए भी कहीं भी सार नहीं देखना जहाँ तक मनोराज्य होता रहे इनमें । इनके धोखे में नहीं आना

।

प्रश्न- जो देखने वाले हैं वही हम हैं। या मुझमें ऐसा ही भ्रम है कि अपन देखते हैं और यह जो दिखता है ऐसा बिना हुए ही दिखता है इसी प्रकार के क्या?

उत्तर- नहीं! अपनी तरफ देखें जो दिखाई देता है उसको भी देखें। इन दोनों को जाने तो (अपनी व दृश्य की) खबर पड़ती है। यह बीच वाली संधि है जिसके द्वारा दोनों का पता लगता है। यह अपन है, यह संधि मेरा एक कहना है। किताबें भले ही पढ़ो, पर वेदान्त का रास्ता मत छोड़ो। दूसरे रास्तों में सच्चाई है, ऐसी बुद्धि मत करना।

प्रश्न- गर्मी बहुत पड़ रही है शारीरिक श्रम बहुत होता हैं?

उत्तर- सब ही दृश्यमान उपाधिमात्र है। नहीं तो सब आनन्द ही आनन्द है। समझो कि छोटा भाई पहले ही चला गया और मस्तक पर सफेदी आ गई।

किसी समय प्राण निकल जायें। ये मेरे हैं इस प्रकार बने हुए इनके साथ लगना नहीं। जो दिखता है, व सत्य है कि झूठ इसका निर्णय करते समय ध्येय से डिगो मत। इनके सामने गौर करके देखो ही मत । इन बाल-बच्चों वालों की बातें सुनते हैं वैसा ही मन बनता है, अपने तो बेकार है। अपने को कुछ नहीं करना। ये तो इनके करते हों वैसा करें। पर अपन इनके साथ लग करके पागल क्यों बनें?

यह जितना विचार आता है अपने को नहीं आता। अपने तक पहुँचना भी नहीं। यह चित्त में होता है। अपने को इनसे लेना-देना है नहीं ।

भगवान ने अर्जुन से कहा- तू यह समझ रहा है कि आत्मा अलग-अलग है मुझमें भीष्म में, दुर्योधन आदि में, पर यह बात नहीं है। वह तो एक ही है। जैसे आकाश आकार से अलग-अलग लगता है, पर आकार मिट जाये तो जैसे का तैसा, वहीं का वहीं टुकड़े-टुकड़े नहीं हुआ। उसी तरह से आत्मा

के भी टुकड़े नहीं होते। वह भी एक ही है।

प्रश्न- अन्तःकरण क्या है?

उत्तर- मन, बुद्धि और अहं की मिलावट का नाम
।

रतन- किसी समय तो मन स्वस्थ रहता है और फिर यह-वह करने लग जाता है?

उत्तर- यों कुछ मत मानों। अपने तो जो हैं वही हैं। जैसे कोई मनुष्य ऐसा होता है कि शान्त नहीं बैठ सकता है। कुछ न कुछ करता रहता हैं वैसे ही इस प्रकृति में प्रश्न और उत्तर होते रहते हैं। ये अपना क्या लेते हैं। अपने जबरन दूसरे के टंटे को अपने मत्थे क्यों लें?

देखो! भगवान सबमें हैं। जैसे यह धूप दिखती है पर पकड़ में नहीं आती वैसे ही प्रभु की सत्ता भी सर्वत्र समान है। इसी में सब करते और हिलते हुए दिखाई देते हैं। यह जैसी यहाँ वैसी ही सब जगह है। चित्रकूट में जब भरतजी बहुत दुखी हुए और राम के

बिना वापस अयोध्या नहीं जाने की बात की, तब भगवान ने फर्माया कि राज्य और धर्म और जो कुछ भी दिखता है इसमें सबमें बहुत सी कल्पना का समावेश है। जितनी सी बाहर निकलती (मूर्तरूप धारण करती है) उतनी सी दिखती है। आगे (परिणाम) कुछ है नहीं। इसलिए भाई तुम तो अयोध्या जाओ और मैं वन में जाऊँ। दोनों ही पिता के वचन का पालन करें। फिर सब ठीक हो जायेगा ।

रतन- सदाचार पर इतना जोर क्यों देते हैं?

बाई- सदाचार की सहायता से अहं मिटता है। इन वृत्तियों को (इन्द्रियों की खुराक को रोकने से भी नहीं रुकती है। ये तो अपने स्वभाव के अनुसार उधर ही जाती हैं और अहं मरने तक भी नहीं मिटता है। इसलिए इन पर काबू पाने के लिए अपने पर शासन करना पड़ता है। अधिक मनुष्यों से बात नहीं करनी और अहं को मेटना है। ये शरीर ममता से होते हैं

परन्तु शरीर हमेशा अपने साथ नहीं रहता वह तो मिट जाता है इसलिए सावधान रहना कलियुग में दया धुरी का काम करती है और माया का क्या है इसको दूर रखो। किसी भी समय सांस निकल जावेगा। एक समय सनत्कुमारजी ने ब्रह्माजी ने पूछा कि आप कौन हैं? तब ब्रह्माजी की प्रार्थना पर भगवान ने हंस के रूप में दर्शन दिए और कहा कि आपका यह प्रश्न ही नहीं बनता। क्योंकि यदि शरीर के लिए पूछते हो तो चमड़ी और हड्डियाँ सबकी सब एक सी हैं और चैतन्य के लिए पूछते हो तो भी चैतन्य सब एक है। इसलिए सावधान होकर अहं को मिटाना चाहिए।

प्रो. भंवरलालजी शर्मा, प्रिंसिपल राजकीय महाविद्यालय नाथद्वारा द्वारा संकलित पूज्या भूरी बाई के संस्मरण

गुरु पूर्णिमा 09-07-71

पुष्कर अजमेर के बंगाली बाबा :

अत्यन्त वृद्ध बंगाली बाबा बड़े सरल स्वभाव के विरक्त महात्मा थे। ये पहले गणित के प्रोफेसर थे। बाल श्वेत एवं लाल सुर्ख गौरवर्ण का भरा-पूरा शरीर। बाबा ने समस्त धार्मिक साहित्य का अध्ययन किया था। अपने पास कुछ भी नहीं रखते थे। प्रतिदिन साढ़े दस बजे प्रातःकाल भोजन करते। इसमें देर हो जाती तो उस दिन भोजन नहीं करते। अतः कोई भी व्यक्ति साढ़े दस बजे उन्हें भोजन करा

सकता था। बाई जब पुष्कर गये तब वे सायंकाल उनके स्थान पर आया करते थे। उन्हें पापड़ खाना रुचिकर लगता था। अतः बाई पापड़ सेक कर रखते थे। उन्हें पापड़ खाने में आनन्द होता था। सायंकाल की चाय वे अपने भक्त के यहाँ पीकर बाई के पास आते थे। एक बार बाई ने उनकी विरक्ति के संबंध में यह कहा कि महाराज शिवदानसिंहजी ने एक-दो बार बंगाली बाबा से उदयपुर पधारने के लिए निवेदन किया किन्तु बाबा बात को टालते रहे। पुनः आग्रह करने पर बंगाली बाबा ने फर्माया कि चाहे कहाँ भी जाओ ये ही आटा और ये ही भाटा है।

हठपूर्वक योग नहीं साधा जा सकता :

इस प्रसंग में बाई ने एक अनुभव सुनाया कि लक्ष्मीलालजी जोशी के पिता जटाशंकरजी जोशी के रिश्तेदारों में किसी की बहू भरी जवानी में विधवा

हो गई।

उन्होंने उसके वैधव्य में भाव भक्ति बढ़ाने का प्रयास किया। वह विधवा बाई, सफेद साड़ी ओढ़कर घूँघट निकाले बैठती एवं रुद्राक्ष की माला घूँघट निकाले हुए साड़ी पर पहन कर गले में रखती। जटाशंकरजी जोशी ने एक व्यक्ति के साथ उस बाई को नाथद्वारे भेजा, जब पूज्या भूरी बाई घूम कर पधारे तो उन्हें मकान की चबूतरी पर वह विधवा बाई साड़ी पर माला गले में डाले हुए घूँघट निकाल कर बैठे हुई मिली। उसके साथ वाले व्यक्ति ने बताया कि जटाशंकरजी जोशी ने उस विधवा को बाई के पास रहने भेजा है। बाई ने उस विधवा के स्वांग को देखते ही कहा कि इसे तू वापस अपने साथ ही ले जा। उन दिनों नाथद्वारे से मोटरें नहीं चलती थीं। अतः आना और जाना उन दोनों को अखरा। अस्तु, उस विधवा ने तपाक से क्रुद्ध होकर साथ वाले व्यक्ति को लौट चलने को कहा, और वे

चले गये।

जोशीजी सरदारगढ़ के वकीले थे एवं बाई के पिता रूपाजी के मित्र थे। अतः जब वह विधवा पुनः लौट कर गई तो उन्हें बड़ा बुरा लगा। जब वे बाई से मिले तो उन्होंने उलाहना दिया कि बाई ने उनके पिता के व्यवहार को भी नहीं निभाया आदि। बाई ने उन्हें समझाया कि भरी जवानी में जबरन भेज देना संभव नहीं है। आप उन्हें उनके ससुराल में भेज दो। इस पर जोशीजी ने कहा कि ससुराल वाले लोग बड़े कुटिल हैं। उनके यहाँ यह नहीं रह सकती, इसे हम ही रखेंगे। इस पर बाई ने कहा कि यह ससुराल के कुटिल लोगों से लड़ते-भिड़ते पांच-दस साल निकाल लेगी तो इसका वैधव्य भी निकल जाएगा। यदि आप अपने यहाँ रखना चाहते हो तो इसे प्रतिदिन पांच सेर अनाज पीसने को देना एवं सारे घर का कामकाज करने के बाद जो भी खुरचन बचे खिलाना, तब वैधव्य निकलेगा।

जोशीजी ने इसे अन्याय समझा और ऐसा करने से मना कर दिया। वह विधवा कुछ अर्से में एक ईसाई के साथ भाग गई।

मथुरा के एक सखी भाव महात्मा:

बाई व कालीदासजी जब मथुरा गये तो उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ। जहाँ वे ठहरे थे वहीं पास में एक वृद्ध साधु रहता था। वह दिन भर अपने कमरे के किवाड़ बंद करके रहता था एवं जोर-जोर से चिल्लाकर भजन करता था, जो पागल के प्रलाप थे। स्वर व कंठ भी इस साधु का फटेबांस का सा था, अतः मोहल्लेवाले सभी लोग उससे परेशान थे।

बाई ने इस विचित्र साधु से मिलने की इच्छा प्रकट की। वे कालीदासजी के साथ एक दिन उन महात्मा के वहाँ गये। किवाड़ बन्द थे। जब उन्हें किवाड़ खोलने को कहा तो उन्होंने कहा कि मेरा

बालक गोपाल अभी गायें चराने गया है, वह आवेगा जब किवाड़ खोलूँगा। फिर उसे दूध पिलाकर सुलाऊँगा आदि। थोड़ी देर बाद गोपाल के गायें चराकर आ जाने के आनन्द में वृद्ध महात्मा भजन गाने लगे एवं किवाड़ खोलकर बाई व कालीदासजी को भीतर बिठा लिया।

मकान एक लम्बा कमरा था जिसमें सारा सामान अस्त-व्यस्त था। दाल, भात, गेहूँ, अनाज, कोयला, घास-फूस, राख, कचरा आदि भरा था। माचिस की पेटी पर लेबल में कृष्ण का चित्र बना था। यह उसके गोपाल थे। महात्मा वृद्ध थे परन्तु हृष्ट-पुष्ट थे, गौर वर्ण थे। सखी भाव में होने से नाक में नथ पहने हुए नारी वेश में साड़ी ओढ़ बैठे थे। आँखों में काजल, हाथ-पाँव में मेहंदी लगाये जेवर पहने। गोपाल गायें चराकर आया था, अतः उसे अब दूध पिलाने का समय हो जाने से महात्मा भजन करने लगे एवं माचिस के लेबल के कृष्ण को दूध पिलाने के लिये

वह माचिस की खाली पेटी हाथ में लेकर अपने स्तनों से लगाते गये।

बाई ने चमत्कृत होकर देखा और कालीदासजी ने भी देखा कि पुरुष महात्मा सखी भाव में आत्मविभोर जब माचिस को स्तन पान कराने लगे तो उनके दोनों स्तनों से चुल्लू भर दूध निकला। बाद में गोपाल को सरकंडों के बने एक झूले में बैठा दिया, माचिस को पालने रूपी खिलौने में रख दिया।

जब गोपाल गाय चराकर आने में देर करते तो सखी भाव महात्मा रोते-रोते हैरान हो जाते, उनकी अश्रुधारा से वस्त्र भीगे रहते। वे जमुनाजी से जल लेने जाते तब नारी वेश में बन-ठन कर जाते। सिर पर गागर पर गागर रखकर जल भर कर लाते। कभी वे राधा का रूप बनते, कभी यशोदा के । गीत जो भी मुँह से निकलता, वही गाते, कोई ताल स्वर, छंद या पुनरावृत्ति नहीं ।

बाई से बातचीत में उन्होंने कहा कि वे ही स्वयं

कृष्ण हैं परन्तु मन नहीं लगता है इसलिये चिल्ला कर भजन करते हैं। वे कृष्ण की ही राधा हैं। बाई को भी उन्होंने कहा कि तुम मेरी सौत हो अतः तुम्हें मैं साड़ी दूँगा। यह कहकर उनकी पुरानी साड़ी उन्होंने बाई को भेंट की। बाई ने उनके कमरे की सफाई कर देने का आग्रह किया तो वे कहने लगे उनका गोपाल अभी छोटा बालक है, वह सब बिखेर देता है और उनको काम से फुरसत नहीं मिलने से वे ठीक नहीं कर पाते। यह अव्यवस्था ही ठीक है।

संसार सब मन का खेल है:

बाई ने परमात्मा को ही चराचर में व्याप्त बताते हुए कहा कि जो कुछ दिखाई देता है उसे यदि दिखाने वाली प्रेरक शक्ति 'चैतन्य' न हो तो देखना संभव नहीं। ट्रेन भी जब तक चलाने वाली चैतन्य शक्ति न हो तो नहीं चलती। संसार में खींचने वाला

‘मैं’ शब्द है, यह बड़ी कुटिलता और चालाकी से मनुष्य की चेतना को ग्रस्त करता है। जो व्यक्ति जाग्रत है, सजग है वह इसके फेर में नहीं आता और मैं पर काबू पाकर माया के फंदे से बच जाता है।

तीन ही काल में बिगड़ा कुछ भी नहीं है, बिगड़ने का भी कुछ नहीं है। अतः बनने का सवाल ही नहीं उठता। बना हुआ ही है इसलिये कभी भी आत्मबल को हीन नहीं करना ही पुरुषार्थ है।

परमात्मा ने तो आनंद ही आनन्द, सुख ही सुख दे रखा है, दुःख उसने कभी बनाया नहीं परन्तु मनुष्य मन के फेर में आकर यह भ्रम मान बैठा है। एक आँख टमके इतनी सी देर में ये भ्रम मिट जाता है तो संसार से मोह टूटते ही आनन्द ही आनन्द व्याप्त दिखाई देता है।

हठ योग और राज योग :

सभी योगसाधन साधन है, आत्मस्वरूप ज्ञान के। ये स्वयं अपने आप में साध्य नहीं। हठ योग शरीर की इन्द्रियों को वश में करके मन पर काबू पाने का साधन है। इसकी साधना से इन्द्रियाँ शिथिल पड़ती हैं और मन के वशीभूत होकर चंचलता को प्राप्त नहीं होती। जीवन में इस साधना की भी एक समय आवश्यकता है। हठ योग साधना का यह निजी अनुभव मेरा कह रही हूँ औरों के कहे सुने अनुभव की बात नहीं है।

राजयोग ज्ञान मार्ग है और स्वरूप ज्ञान होने पर दोनों ही साधना की आवश्यकता नहीं है। जो कुछ चराचर जगत दिखाई देता है वह स्वयं अपने आप में कुछ भी नहीं है। यह सब मन का खेल है और जो देखने वाला है वही आत्मा और परमात्मा है। जिस दिन यह ज्ञान स्पष्ट हो जाये कि शरीर, परिवार, संसार आदि मैं नहीं हूँ, मैं तो इन सबका देखने वाला दृष्टा, इनसे भी परे निराकार, निरंजन, अजर, अमर,

अविनाशी आत्मा हूँ उसी क्षण स्वरूप ज्ञान हुआ समझो। शरीर को खाना, पहनना होगा वह स्वयं करता रहेगा इसके पीछे अपने ज्ञान को नहीं खो देना है।

जब कोई व्यक्ति किसी यात्रा पर जाता है तो डोर-लौटा आदि आवश्यक साधन अपने साथ लिये जाता है। उनकी संभाल भी करता है, वह उनका प्रयोग भी करता है पर अपने मकान पर पहुँच जाता है तब उनको लिये नहीं फिरता वह उन्हें तत्काल छोड़ देता है। इसी तरह हठयोग, राजयोग आदि भी स्वरूप ज्ञान होने तक साधन रूप में सेवनीय है परन्तु उसके बाद उनकी उपयोगिता नहीं रहती। एक बार मीठालालजी द्वारा प्राणायाम आदि साधन सीखने की उत्सुकता दिखाई पर बाई ने फर्माया कि चारों ओर सरोवर भरा हो तो गेती पावड़े से पानी के लिए खोदने की क्या जरूरत है।

चतुरसिंहजी बावजी व कीका डांगी महात्मा :

महाराज चतुरसिंहजी अपनी कुटिया में अनेक शास्त्र पढ़ते रहते थे। कीका डांगी नामक वृद्ध उनके पास आया-जाया करता था। कीकाजी सड़क पर धूल डालते और बारह बजे विश्राम के समय महाराज साहब के पास आ बैठते। उस समय महाराज को धर्म ग्रंथों का पाठ व अनुशीलन करते देख कीकाजी सरल हृदय से कहते "अन्नदाता क्यों आँखें फोड़ते हो, भगवान इन पुस्तकों में नहीं है" महाराज साहब हँसकर कहते "तब कहाँ है तुम बताओ" इस पर कीका कहते कि आप देखो कि बाड़ की थूहर पर बैठी यह चिड़िया उड़कर दूसरे थूहर पर जा बैठी। उसको वहाँ उठा कर कौन शक्ति का आधार ले गया। जो शक्ति चिड़ियाँ को यहाँ से वहाँ ले जाती है वही आप, हम में है और वही परमात्मा है, इन पोथियों में परमात्मा थोड़े ही हैं।

महाराज साहब कीकाजी के बारे में कहते थे कि ये महात्मा है। उन्होंने अपने ग्रंथों में कई जगह इसका उल्लेख किया "कीका कपिल गुमान कह्यो" इस तरह तीनों ने वही बात कही है कि ईश्वर चराचर जगत में है। महाराज साहब हंसकर कीकाजी को कहते, "तुम तो दिन भर सड़क पर धूल ही डालकर समय लुटा देते हो। मैं धूल तो नहीं डाल सकता इसलिये किताबें पढ़ता हूँ। दोनों का काम एक सा है।" इस पर दोनों हँस देते हैं।

तन नै जाण रिया है सो ही यूँ परमात्मा है :

नाथूलाल भाई श्रीनाथजी के प्रसाद भंडार पर नौकरी में थे। बाई के यहाँ शुरू से आते-जाते रहे। लगभग चालीस वर्ष तक बाई के पास रहे। शुरू-शुरू में बाई के उपदेश उनके समझ में नहीं आते थे। एक बार महाराज चतुरसिंहजी ने नाथूलाल भाई को

पूछा कि वे बाई के पास जाते हैं तो बाई उन्हें क्या कहते हैं? नाथूलाल भाई बड़े सरल प्रकृति के पुरुष । उन्होंने कहा कि अन्नदाता बाई क्या कहते हैं सो तो हमारी समझ में नहीं आता। वे हम सब पर प्रेम भाव रखते हैं इसलिए हमारी भावना भी वहाँ आते-जाते रहने की होती है। बाई अक्सर हमें यही कहा करते हैं कि तीनों काल में कुछ बिगड़ा नहीं है- यह सबको जानने वाला है वही परमात्मा है। "यूँ सबने जाण रियो है बस या ही जाण है-शरीर, परिवार व संसार यूँ नहीं है" महाराज साहब यह सुनते ही गद्गद् हो जाते। बाई ने कहा- कबीरजी ने भी दूसरे शब्दों में यही कहा है। वे पृथ्वी को अड़ध (अधः) आसमान को उड़द (उर्ध्व) संज्ञा देकर यही कहते हैं।

अड़ध उड़ध के बीच में, हैं सारो संसार । कहे कबीर इस बीच ही, है उसका करतार।।

चन्द्रकान्त नामक पुस्तक बड़े महत्त्व की है :

बाई के पास एक कथा साहित्य रूप में 3 भाग का विशाल ग्रंथ चन्द्रकान्त नाम से था जिसमें सरल आख्यानों के माध्यम से वेदांत ज्ञान समझाया गया था। पुस्तकें नाथूलाल भाई ने कही गँवा दी। उसमें एक राजा के पुत्र बाग में जमीन से उगते पौधों को देखकर प्रश्न करते हैं कि मिट्टी-पानी में से पौधे कैसे उत्पन्न हो गये। इस पर राजा ने कहा कि पौधों को समझना तो दूर है अभी तक वह राजकुमार अपने आपको भी नहीं समझ पाया है कि वह कहाँ से उत्पन्न हो गया है। वह कौन है। राजकुमार चक्कर में पड़ा कि वह अपने को जानता है उसका नाम-ठाँव अमुक है आदि पर राजा ने वही कहा कि यह तो कल्पना है और कोरी मान्यता है, वास्तव में तुम कौन हो, यह नहीं जानते । राजकुमार रोता हुआ अपनी माता के पास जाता है, वह भी यही कहती

है कि बेटा वास्तव में तुम शरीर, नाम, रूप धारी नहीं हो। तुम्हीं बताओ यह हाथ, पाँव, आँख शरीर आदि किसका है? राजकुमार ने कहा कि यह सब मेरे हैं। इस पर उसको माता ने कहा कि जो तुम अपने को इस हाथ, कान, नाक, आँखादि शरीर समवाय के मालिक कह रहे हो, वही तुम हो। सब आकार नाम रूप सहित है। राजकुमार को आत्मज्ञान हुआ।

गधे में भगवान के दर्शन :

सब में एक ही सत्ता विद्यमान है वही ईश्वर है इस संदर्भ में बाई ने अपना अनुभव सुनाया-

केलवा के महात्मा रामसिंहजी के पास बाई लगभग एक माह तक रहे। वहाँ उन्होंने गाँव से कुछ दूर गधा चरता हुआ देखा। गधे के मालिक ने उसके दो पाँवों में रस्सी इस तरह कस कर बाँध दी थी कि वह कहीं भाग न जावे। बरसात के कारण रस्सी

आमस गई, जिससे बंधन गधे के पाँव में गड़ गया और कटकर पाँव से खून बह निकला। बाई से यह करुणाजनक दृश्य देखा न गया। अत्यन्त द्रवित हो वे गधे की सहायता करना चाहते थे। परन्तु उन्हें भय था कि गधा पास जाने पर काट न खाये। फिर भी वे दृढ़ संकल्प कर उसके पास गये और गधे को हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि मैं तुम्हारे बंधन के कारण होते दुःख को नहीं देख सकती हूँ इसलिए इसे खोलना चाहती हूँ। मेरे पर कृपा करके मुझे काटना मत।

बाई ने अनोखा अनुभव यह किया कि गधा पास जाने पर आँख बन्द करके शांत भाव से खड़ा रहा। रस्सी गीली हो जाने से आमस गई थी, बाई के हाथों से लगभग आधा घण्टा प्रयत्न करने पर भी नहीं खुली। जब गधे को बाई की लाचारी अनुभव हुई तो उसने अपना पीछे का पाँव धीरे से ऊँचा उठाया। बाई ने उसे ईश्वरीय संकेत माना कि गधा यह बता

रहा है कि तुम अपने प्रयत्न में हार चुकी अब वह मार्ग बता रहा है कि रस्सी पीछे के पाँव से निकालो। पाँव के रस्सी निकालने का यह ईश्वरीय संकेत चराचर में ईश्वर के दर्शन कराने वाला सिद्ध हुआ। रस्सी दोनों पाँवों से निकाल कर बाई ने गधे के गले में माला की तरह पहना दी। इधर महात्मा रामसिंहजी के लोग, घंटे भर से बाई को ढूँढने निकल पड़े थे। उन्हें यह घटना सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ।

चुहिया में भगवान के दर्शन :

इसी तरह का अनुभव अपने प्रारम्भिक जीवन का सुनाया। द्वारजी भाई के पास जब बाई रहते थे, तब बाई प्रातः चार बजे छाछ बिलौने की तैयारी करने लगे। दही की जावणियाँ हाटडी (भंडारिया) में से निकालने लगे तब एक चुहिया उन्हें दिखी मगर

वह चिमटा फटकारने पर भी नहीं भागी तब उन्होंने चुहिया को चिमटे से पूँछ से पकड़ कर गली में फेंक दिया। जब दही की जावणियाँ उठाई तो बाई को कुछ विचित्र सुरसुराहट सुनाई दी। अतः दीपक लेकर देखने लगी। उन दिनों बिजली व हरीकेन का अभाव था, मिट्टी की दीवट, तिल्ली के तेल के दिये ही साधन थे। अतः जब दिया लेकर देखा तो विदित हुआ कि वहाँ चुहिया के सात-आठ छोटे बच्चे थे और रात्रि में चुहिया ने उन्हें जन्म दिया था। इसी मोह के कारण चुहिया चिमटा फटकारने पर भी वहाँ से नहीं जा रही थी। अब तो चुहिया फेंक दी गई थी।

बाई ने बताया कि चुहिया के बच्चों को देखकर उन्हें इतनी करुणा उमड़ी कि अब क्या करें, लाचार हो फूट-फूट कर रोने लगी और परमात्मा से प्रार्थना करने लगी, "हे प्रभु, न जाने पूर्व जन्म में क्या पाप किये जिससे मानव देह में दुःख भोग रही हूँ और

अब यह जीव हत्या का नया पाप सिर पड़ा। इन निरपराध प्राणियों की प्रभु रक्षा करो।"

बाई के आर्तनाद के दौरान ही कहीं से वह चुहिया दरवाजे की तरफ होकर ऊपर चढ़ आई और उनके सामने ही उछल कर एक बच्चे को मुँह में पकड़कर खपरेल में कहीं ले जाकर रख आई। इसी तरह जल्दी-जल्दी आकर वह सभी बच्चों को मुँह में बारी-बारी से पकड़ कर ले गई। उसके बाद ही बाई ने गाय-भैंस की दुहारी की व छाछ फेरी तथा उस दिन के बाद कभी कोई भी काम जल्दी में नहीं करने का संकल्प कर लिया। बाई ने बताया कि जिस शक्ति ने उनमें करुणा उत्पन्न की और जिस शक्ति ने चुहिया को जीव रक्षा का ज्ञान दिया वही शक्ति ईश्वर है।

रविवार 19-12-89

कुबड़ी भक्त आनन्दी बाई :

बाई ने आज वार्ता के प्रसंग में बताया कि भक्त की हठ धारणा से भगवान प्रकट हो जाते हैं। इसकी पुष्टि में उन्होंने एक ऐसी महिला का वर्णन किया जो कुबड़ी थी परन्तु रासलीला में भगवान के द्वारा कूबड़ से मुक्त हुई।

आनन्दी बाई पंजाबी महिला थी। वह बचपन से ही कुबड़ी थी और उसकी शादी जिस व्यक्ति से हुई उसने बाद में दूसरी शादी कर ली और आनन्दी बाई को त्याग दिया। आनन्दी बाई गोकुल में जाकर भक्ति करने लगी। साधु-संतों के उपदेश सुनती व अपने घर में पूजा के लिये भगवान की मूर्तियाँ रखती ।

एक अवसर पर गोपेश्वर नाथ नामक स्थान पर सदा की भाँति रासलीला जमी। उन्हीं दिनों आनन्दी

बाई के पति अपनी दूसरी पत्नी व बाल बच्चों को लेकर वहाँ आए हुए थे। रासलीला के प्रसंग में पात्रों का चयन हो रहा था। इस बीच किसी पात्र को कुबड़ी का पात्र बनाने पर विचार चल रहा था। आनन्दी बाई के पति ने हंसी में कहा कि आप लोग नाहक किसी को कुबड़ी बना रहे हैं वास्तव में कुबड़ी स्वयं मौजूद है, उसे ही पात्रता क्यों नहीं दे देते।

आनन्दी बाई के पास रासलीला के लोगों की यह बात पहुँची तो वे परम आनन्द का अनुभव कर कुबड़ी का पार्ट करने के लिए तैयार हो गई। रासलीला में छः-सात वर्ष के एक बालक को कृष्ण बना रखा था जब कुबड़ी आनन्दी बाई रास में आई तो भगवान कृष्ण रूपी बालक ने उनके पाँव पर पाँव देकर हाथ से ज्योंहि झटका दिया कि बड़े आश्चर्य से सबने देखा कि आनन्दी बाई वास्तव में सीधी सामान्य नारी बन गई थी। उनके शरीर की कूबड़

तत्काल गायब हो गई।

बाद में भक्त आनन्दीबाई के घर की पूजा मूर्तियों के दर्शनार्थ अनेक लोग आने लगे।

चित्तौड़ के महात्मा चलफिरशाह जी:

चित्तौड़ शहर के सदर दरवाजे के बाहर मस्जिद में एक पहुँचे हुए राजयोगी बड़े चमत्कारी सूफी संत आज से लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व रहते थे। वे कहाँ के थे, इस बारे में बाई को भी पता नहीं परन्तु उनके चरित्र के बारे में बाई ने बताया कि बड़े विलक्षण महात्मा थे। लगभग चालीस वर्ष तक चित्तौड़ की उस मस्जिद में रहे परन्तु अहाते से बाहर कभी नहीं निकले।

वे गृहस्थ के हाथ का छुआ भोजन नहीं करते थे। उनका भोजन किसी साधु और ब्रह्मचारी के हाथ से

ही बनता था। उनके रसोई घर के पास ही स्नानागार था जहाँ उनका रसोइया पहले स्नान करता फिर मुख पर मुखपत्ती बांध कर रसोईघर में प्रवेश करता व भोजन बनाता था। उनका लगभग एक हजार रुपये प्रतिमाह घर का खर्चा था। लगभग साठ फकीर उनकी मस्जिद के पिछवाड़े रहते जिनको वे मधुकरी देते थे। मस्जिद के बाहर लगभग नौ-दस कुत्ते थे जिनको वे नित्य भोजन कराते। आये गये भक्त लोगों का भोजन खर्च वहन करते एवं किसी से चढ़ावा व भेंट नहीं लेते। वर्ष में एक दिन चित्तौड़ के समस्त बालकों को मिठाई बँटवाते थे।

दिल के इतने रईस थे कि कोई राजा भी क्या बराबरी करेगा। अपने कमरे में ही रहते पर पचास-पचास रुपये की जूतियाँ पहनते, बढ़िया कपड़े पहनते, अपनी धुन में मस्त रहते। तवायफें आकर उनके यहाँ मजलिस करतीं तो उन्हें एक-एक हजार रुपये इनाम बाँटते जिसकी कीमत उस समय बहुत

थी।

बाई पर उनकी विशेष कृपा थी। बाई जब नाथद्वारे से जातीं तो उनके लिए श्रीनाथजी का प्रसाद ले जातीं परन्तु जब उन्हें खाने के लिए कहतीं तो वे खाते नहीं, लोगों में बँटवा देते और कहते अल्ला ताला का ही सब प्रसाद है। बाई जब वापस आते तो वे उन्हें पहुँचाने के लिए उठते पर देहली पर आकर बैठ जाते और कहते अब आप जाओ, हम यहाँ से देख रहे हैं।

शाहजी के एक शिष्य था जिस पर उनका बड़ा अनुग्रह था। वह उनके सामने ही मर गया। अतः उसका मकबरा मस्जिद में ही बनवाया और वे जब तक जीवित रहे सदा उस मकबरे के पास जाकर बैठते। लोग उनके दर्शन करने जाते, उनको वे फटकारते और कभी चिढ़कर कह देते क्या दर्शन करने आया है, क्या मैं कुंजड़ा हूँ या भिश्ती, भाग

यहाँ से।

एक बार महाराणा फतहसिंहजी ने उनके दर्शन करने की अभिलाषा व्यक्त की, इस पर उन्होंने कहला दिया कि इसकी जरूरत नहीं है, हम आपके ही राज्य में पड़े हैं।

चित्तौड़ के आरामशाह जी :

चित्तौड़ मस्जिद में एक संत फकीर आरामशाह भी थे। वे बड़े निस्पृह थे। अपने पास कुछ भी नहीं रखते थे। जो कुछ भी भक्त लोग लाते उस पर ही उनका निर्वाह होता था। वे भी बाई पर बड़ी कृपा रखते थे। एक बार बाई, नाथूलालजी व कालीदासजी उनके दर्शन को गये। उनके पास स्वागत करने को कुछ नहीं था। अतः वे गांव में गये एवं एक रुपया भीख मांग कर लाये और उससे बाजार से ठण्डाई का मसाला, शक्कर आदि लाये

और कालीदासजी, नाथूलालजी को देकर कहने लगे आप और बाई के लिए यह लाया हूँ आप ठंडाई बनाकर इन्हें भी पिलावें।

ये महात्मा अपने एक छीपा भक्त को प्रातःकाल का भोजन पाने पर एक दिन कहने लगे कि शाम को आकर चिराग भी जला जाना। भक्त छीपा सदैव भोजन लाता था पर चिराग सदा साईं बाबा जलाते हैं, आज विशेष आग्रह क्यों किया, यह विचारने लगा। फिर भी आदेशानुसार सायंकाल वह मस्जिद में से साई बाबा के कमरे गया तो बड़ा विचित्र नजारा देखा। साई बाबा ने अपने हाथ से ही अपने लिए कब्र खोद रखी थी और उनका शव कब्र के पास ही पड़ा हुआ था। उसने और लोगों की मदद से साई बाबा को दफनाया और उनकी अंत्येष्टि की।

फूलजी भट्ट गवैया :

नाथद्वारे के गोसाई जाति के फूलजी भट्ट जयपुर से कभी-कभी महाराज साहब के बुलावे पर नाथद्वारा आते थे। वे गाने में बड़े सिद्ध थे। महाराज उन्हें एक-एक मजलिस में एक हजार रुपये इनाम देते थे।

फूलजी जब नाथद्वारे आते तो बाई के यहाँ गायन का जलसा अवश्य रखते। फूलजी भांग बहुत पीते थे, लगभग पाव डेढ़ पाव सूखी भांग घुटती और एक सेर भर से अधिक के लोटे में गाढ़ी छानते एवं गोलियां रखते सो अलग। बाई के यहाँ गायन के लिए जब वे कहलाते तो बाई उनके लिये वासुन्दी एवं गोकुलनाथजी की मलाई आदि का प्रबंध कर रखते, क्योंकि उन्हें मालूम था कि भांग के नशे में ही वे यहाँ गायेंगे।

बाई का कहना है कि फूलजी काले-कलूटे और विकलांग व्यक्ति थे पर गायन में सिद्ध थे। वे जब मीरां के भजन शास्त्रीय राग में गाते, तो संगीत कला

के नहीं समझने वाले को भी रसपान होना स्वाभाविक था। बाई कहते हैं कि उनका संगीत सुनने पर ऐसा लगता था मानो सुनने वालों सहित सारी सभा व कमरा आसमान में उठ गया हो।

बाई का दरबारी खर्च :

श्री मीठालालजी इंजीनियर ने चलफिरशाहजी के खर्च के प्रसंग में कह दिया कि बाई के दरबार का खर्च भी लगभग एक हजार रुपये माहवार है। उन्होंने बताया कि पचास किलो शक्कर प्रतिमाह, एक किलो शुद्ध घी प्रतिदिन तथा आने-जाने वाले अभ्यागत और परिवार का खर्च देखते सहज ही यह स्वीकार करना होगा। बात आगे इसलिये नहीं बढ़ पाई कि बाई ने हँसते हुए उन्हें टोक दिया कि तुम्हें दूसरे के घर का हिसाब-किताब देखने की आवश्यकता नहीं और बात करो।

लहरदासजी बावजी :

जन्म सम्वत् 1933 भाद्र पक्ष शुक्ला अष्टमी-उनके मुख से सुना नाथद्वारा में नरोत्तम जी के मकान पर दिनांक 23 अक्टूबर सन् 1971 को।

मेरे ब्यायीजी गंगारामजी ने लहरदासजी बावजी का एक संस्मरण सुनाया। इनके भाई ईश्वरजी लक्ष्मी विलास उदयपुर में संवत् 1991-92 के आसपास काम करते थे। बावजी लहरदासजी की ईश्वरजी पर बड़ी कृपा थी जब उनके बारे में बावजी ने कहा कि आज ईश्वर नहीं दिखाई देता तो किसी ने कहा उन्हें जोर का बुखार हो रहा है। बावजी तत्काल बोल उठे-उसे मेरे पास उठा लाओ। वे लाये गये। बावजी ने दस मिनिट तक ईश्वरजी का हाथ अपने हाथ में थामें रखा और मन शक्ति से उनका बुखार अपने

हाथ में खींच लिया। अन्य चेलों को जब बावजी ने अपना हाथ छूने को कहा तो वे लोग हाथ छूते ही उसकी गर्मी से जलने का अनुभव कर छोड़ पड़े।

बावजी ने ईश्वरजी को कहा आज तो तेरा बुखार गया, अब तीन दिन बाद वापस तुझे बुखार होगा उस समय तू मेरा नाम याद करना जिससे बुखार टूट जायेगा । भूल जायेगा तो बुखार रहेगा। ईश्वरजी वास्तव में नाम लेना भूल गये और उन्हें तीन दिन तक बाद में बुखार बना रहा। बावजी ने जब लोगों से पूछा और बुखार का जाना तो कहा कि वह नाम लेना भूल गया। ईश्वरजी को पूछा तो बात सही थी। उन्होंने ज्यों ही नाम लिया बुखार टूट गया। बावजी के कुछ वचन-

तीन ग्रंथी षट चक्र नवें धन दशमें द्वार तक जावे।
उलट नैने निरखे छवि सत गुरु भेद बतावे ।।
बसर राजे निहाँ जलीये ख्वार होता है।

खुशबू निकल गई गुल से गुल बेकार होता है।।
मर्तबा चाहे दुनियां में मिटा दे अपनी हस्ती को।
दाना मिल खाक में गुले गुलजार होता है।।
सांस सांस सुमरण करे, नितका रहे उदास।
गंगा वाकी आस करें, कब आवे हरिदास।।
एक तो दिल लाखों तमन्ना।
क्षर से ओं कहत है निरक्षर सोह जान।।

अपिचेत सुदुराचारो भजते माम् अनन्य भाक्:

रविवार 17-02-73

आज ज्ञानेश्वरी गीता के पारायण के उपरान्त बाई ने एक संस्मरण सुनाया। नाथद्वारा के दो-चार बिगड़े हुए दुरात्माओं में गबा कंदोई था। गीले में विष्टा भले ही गबा कंदोई ने छोड़ा हो अन्यथा वह पहले सिरे का दुराचारी कहा जा सकता है। एक बार न

जाने किस बात से उसे कोई हृदयस्पर्शी चोट लगी कि उसका जीवन बदल गया। अपने घर में दो-तीन हाथ छोटी कोठड़ी में बैठकर रात-दिन भजन करने लगा। माथे पर बालकों का टोपा, शरीर पर बंडी तथा कमर पर पंछिया मात्र उसकी पोशाक रहे। दिन में एक समय मौनपूर्वक खाता। खाने के लिये कोठड़ी से उठकर रसोई के बाहर आ बैठता। मौनपूर्वक एवं उसकी पुत्रवधू जो कुछ भोजन रख देती खा-पीकर पुनः कोठड़ी में घुस जाता और दिन-रात भजन करता। इस प्रकार वह लगभग 8 वर्ष तक भजन करता रहा, किसी से कुछ बोला नहीं। एक दिन नाथूलालजी गबा कंदोई के इस व्यवहार के बारे में बाई से चर्चा की और उन्हें उसके पास ले चलने को कहा परन्तु बाई ने जाने की आवश्यकता न समझी। एक बार स्वयं गबा कंदोई बाई के यहाँ चला आया और चुपचाप थोड़ी देर बैठ कर वापस चला गया। भजन करते-करते ही एक दिन गंबा

कंदोई मर गया।

मेरे भी सन्तान नहीं है:

नाथद्वारा महाविद्यालय का भवन बनवाने वाले सेठ बिनानीजी एक बार किसी व्यक्ति को साथ लेकर बाई के पास सरदारगढ़ आये। उन्होंने कई सदाव्रत, पुण्यकार्य आदि करते रहने के अपने आचरण का जिक्र किया परन्तु उनकी एक मनोकामना अब तक पूरी नहीं हुई इसके लिए बाई के आशीर्वाद मांगा कि “उनको एक पुत्र लाभ हो जाय” । बाई ने हँसकर कहा मेरे पास पुत्र कहाँ से आवे । “मेरे खुद के भी कोई पुत्र या सन्तान नहीं आप किसी के भ्रम में यहाँ पधारे।”

आसक्ति :

आज पदार्थ का उपयोग और पदार्थ में रस लेना विषय पर आचार्य रजनीश के गीता के छठे अध्याय पर हुए प्रवचनों के पाठ के प्रसंग में पूज्या बाई ने निम्न संस्मरण सुनाया-

सरदारगढ़ मेवाड़-बाई के जन्म स्थान में एक बूढ़ा ब्राह्मण भिक्षुक था। ब्राह्मण के तीन-चार लड़के अच्छे खाते-पीते कमाते थे। ब्राह्मण प्रातःकाल ही वहाँ से पाँच-छ: मील दूर के एक गाँव में भीख माँगने निकलता और बारह-एक बजे के आसपास भीख में प्राप्त अनाज की पोटली सर पर लादे थका-माँदा घर आता। अकेला हाथ से भोजन बनाता व खाता।

उसी गाँव में एक जाट भी रहता था जो प्रतिदिन राम-नाम की माला फेरता रहता था। बूढ़े ब्राह्मण ने उस जाट से वह माला माँगी। जाट ने माला उस भिक्षुक को नहीं दी। परन्तु प्रतिदिन ब्राह्मण जाट से

माला की भीख माँगता और प्रतिदिन जाट मना कर जाता। इस तरह पूरा एक वर्ष बीता पर ब्राह्मण ने माला को भीख में माँगना न छोड़ा। अन्त में जाट ने तंग आकर वह माला ब्राह्मण भिक्षुक को दान में दे दी।

ब्राह्मण सदा की भाँति भीख माँगकर निर्वाह करता रहा। एक दिन ब्राह्मण मर गया तो उसके पुत्र उसका सामान एकत्र करके बँटवारा करने बैठे। उस सामान में एक बड़ा मटका निकाला जिसमें असंख्य मालाएँ संग्रह की हुई थी। इस तरह ब्राह्मण को माला माँग-माँग कर एकत्र करने की आसक्ति थी। उपयोगी नहीं थी पर आसक्ति जो उनमें थी उसने ब्राह्मण को जाट से एक वर्ष तक लगातार माँगने पर विवश किया। बाई ने बताया कि प्राय: ऐसी ही आसक्ति से हम अपने चारों ओर अनावश्यक दु:ख एकत्र कर लेते हैं। और फिर सुख की आशा करते हैं। यह भूल है।

अभिग्रह :

जैन मुनि कितना कठिन अभिग्रह लेते हैं, इसका एक संस्मरण बाई ने 'समयसार' ग्रंथ की कानजी स्वामी की टीका पाठ के समय सुनाया। ये संस्मरण लगभग चालीस-पचास वर्ष पहले के हैं।

उदयपुर में बाई ने एक बार एक जैन मुनि के अभिग्रह के बारे में बताया जिनका अभिग्रह था कि वे 'बैल द्वारा दिया भोजन ही लेंगे।' जैन मुनि अपना अभिग्रह पंचांग में नोट करके रख लेते हैं और गुप्त रखते हैं। दिगम्बर जैन मुनि ऐसे अभिग्रह लेते हैं।

कई दिनों तक अभिग्रह पूरा न होने से मुनि निराहार रहते रहे। लगभग एक माह बाद उदयपुर धानमण्डी में होकर मुनि भिक्षा के लिये निकले उसी समय बाहर से आई बैलगाड़ियों के एक बैल ने गुड़ की भेलियों में सींग मारना शुरू किया जिससे गुड़

का डला उछल कर मुनिजी के हाथ में आ गया जिसे उन्होंने खाकर अभिग्रह पूरा किया।

इस प्रकार उदयपुर में एक दिगम्बर जैन मुनि ने अभिग्रह किया कि 'हाथी द्वारा दिया गया भोजन करेंगे'-कई दिनों तक अभिग्रह पूरा न हुआ। अचानक एक दिन राजमहलों से एक मदमत्त हाथी छूट पड़ा और और शहर की ओर भागा। जगदीश चौक के आस-पास कंदोइयों की दुकान के पास होकर जब हाथी निकला तो उसने मिठाइयों के एक थाल को सूंड में उठा लिया और उसी समय उधर से आये मुनिजी के ऊपर उलट दिया-मुनिजी ने अपना आहार लेकर अभिग्रह पूरा किया।

साधु का वेश आवश्यक नहीं :

समयसार ग्रन्थ के अंतिम भाग में उपदेश आया

कि नाम प्रतीक से गुण का सम्बन्ध नहीं। किसी का नाम 'सयाजी राव' होने से उसका महाराज होना आवश्यक नहीं। इसी प्रकार किसी बोरे पर चालीस रुपये मण शुद्ध शक्कर लिखा हो और उसमें कोयले भरे हो तो कोयलों में मिठास गुण नाम मात्र से आता नहीं । इस प्रसंग में बाई ने सुनाया-

1. मनोहरसिंहजी राजपूत गृहस्थ थे। उम्र साठ के लगभग। उनको साधु होने की धुन सवार हुई। उनकी पत्नी बच्चे आदि की उन्होंने नहीं मानी। बाद में उन्होंने कहना छोड़ दिया। वे बाई के पास आये तो बाई ने कहा कि साधु होने की आवश्यकता नहीं है। आप दो-तीन माह मेरे यहाँ रहो। कुछ दिन रहने पर वे चले गये और काषाय वस्त्रधारी साधु बन गये। जब वे इस वेश में बाई के पास आये तो बाई ने पूछा कि कपड़े रँगने की क्या आवश्यकता थी। तो उन्होंने कहा कि "सफेद कपड़ों में मुझे कोई रोटी नहीं देता" अर्थात् साधु का अर्थ रोटी माँगने वाला हो गया।

2. हम बाह्य वृत्ति पर पुण्य का आधार मानकर आत्मानुसंधान करने से कैसे विमुख हो जाते हैं इसका एक संस्मरण बाई ने सुनाया-

बाई के आश्रम में जो महिलायें भजनों के लिए प्रतिदिन आती हैं उनमें आज एक विचार चला कि संक्रान्ति से कोई व्रत ले जो दूसरी संक्राति तक पाला जावे। एक महिला ने दूसरी महिला को सुझाया कि प्रतिदिन थाली में प्रातःकाल रोटी-शाक परोस कर निकले एवं जो सबसे पहले मिल जाये उसको भोजन कराने का व्रत ले । उसने शंका की कि यदि गधा मिल जाये तो? इस पर दूसरी भी चुप हो गई। दोनों ने बाई के समक्ष अपनी समस्या रखी कि यदि भोजन लिये जाते समय गधा मिल जाये तो उसे भोजन करावें या नहीं। बाई ने हँसकर कहा कि मूर्खाओं, इससे क्या लाभ होगा। इस व्रत की बजाय तो तुम पच्चीस माला प्रातः और पच्चीस माला सायंकाल जपने का व्रत लो तो पाँच हजार नाम रोज

जप तो होगा परन्तु दोनों महिलाओं ने बाई के सामने असमर्थता प्रकट कर दी कि पच्चीस माला तो कैसे जपी जायें? गरज कि रोटी और बाहर घूमने व पुण्य का दिखावा तो सुख था। खर्च तो पति के सिरे, घूमने और पुण्यलाभ का मौका स्वयं को मिले, यह कैसी विडम्बना है।

संसार की असारता एवं कृतघ्नता :

आज मालूम हुआ द्वारजी से कि रोशनजी (जिला प्रमुख) किसी दावत के प्रसंग में बिजली की करेंट के झटके से तपते हुए घी के कड़ाह में गिर पड़े जिससे कमर, छाती व बैठक के भाग बुरी तरह जल गये। अस्पताल में उनके संबंधियों और जानकारों के क्रंदन को देखा नहीं जा सकता। बचने की आशा नहीं। इस पर बाई ने दो-एक प्रसंग सुनाये

1. भूरामलजी ठेकेदार के बड़ा पुत्र लकवे से लाचार हो गया। उसके 5 पुत्र थे। सबको पढ़ा-लिखा सम्पन्न बना शादी के बाद गृहस्थ बना दिया था परन्तु उस लकवे के मरीज की परिचर्या करने से सब बचे रहते थे। एक बार उन पुत्रों में से किसी ने उसके पलंग के नीचे अंगीठी जलाकर रख दी। पलंग में आग लग गई। लकवे का मरीज हिलडुल नहीं सका और जल गया। बाद में उसे अस्पताल में ले गये जहाँ मरीज ने दो-तीन दिन में दम तोड़ दिया।

2. स्वयं भूरामलजी ठेकेदार पुत्र के मरने के बाद बुढ़ापे में लकवे के शिकार हो गये। उनके ये सम्पन्न पौत्र उनकी सेवा नहीं करते थे। पास में भूरेलालजी वया का मकान (भूपालपुरा) में होने से उन्होंने जब इन परिवार वालों को कहा कि वृद्ध भूरामलजी की सेवा करें तो उन्हें जवाब दिया कि इनका यह नाथू महाराज सेवा कर रहा है। नाथू महाराज एक गरीब ब्राह्मण था जो भूरामलजी की ठेकेदारी के समय से

इनके पास नौकर था। स्वामीभक्ति से सेवा करता पर पुत्रों-पौत्रों ने सम्पत्ति लेना ही अपनी सेवा समझा।

भागवत सुनने का महात्म्य :

02.02.75

मैं बूंदी कॉलेज के उपाचार्य पद से एक माह का सवैतनिक अवकाश लेकर नाथद्वारा आया। बाई अब तक राजनगर बिराजी हुईं। आज राजनगर से पधारीं तो मैं रात्रि के स्वाध्याय में गया। आज एकनाथी भागवत का पारायण परम् भक्त श्री कालीदासजी भाटिया एवं श्री नाथूलालजी आरम्भ हुआ। इस प्रसंग में बाई ने भागवत कथा श्रवण के महत्त्व के विषय में कहा-

भागवत, नैमिषारण्य में शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को सुनाई। हजारों श्रोतागण भागवत सुनने

आये परन्तु ठीक-ठीक यथार्थ श्रवण तो राजा परीक्षित ने ही किया जिनकी नवें दिन मुक्ति हो गई।

हम सब भी भागवत सुनते हैं परन्तु जैसा भागवत प्रवचन एक अशिक्षित भील ने सुना वैसा आज तक सुनने वाला नहीं मिला। प्रसंग इस प्रकार है कि कांकरोली में रेबारी का बगीचा है। उसकी बागवानी में एक भील नौकर था जिनका नाम पेमा बा था। रेबारी 'बे चोपड़ा नदी मां' के नाम से विख्यात था क्योंकि उसके रहते-रहते उसका सारा कुटुम्ब स्वर्ग सिधार गया था और विक्षिप्त अवस्था में अपने अंतिम दिनों तक 'बे चोपड़ा नदी मां' यही वचन उच्चारण करता था।

श्रीमती सज्जन कंवर शिवरती महात्मा श्री भूरी बाई से भगवत् चर्चा करते हुए

रेबारी वैष्णव भक्त था। अतः एक बार बगीचे में भागवत सप्ताह मनाया। बागवान भील पेमा बा भी भागवत कथा के प्रारम्भ से ही श्रद्धापूर्वक वहाँ एकान्त में बैठकर भागवत् कथा का दत्तचित्त हो श्रवण करते रहे। सप्ताह पूरा होते ही उन्होंने संसार त्याग दिया-बगीचे की मजदूरी में आठ पाई प्रतिदिन जो मिलती उससे केवल छाछ का पानी लेकर गुजारा करते- प्राणीमात्र पर सहज स्नेह और सच्चाई, ईमानदारी और स्वामी भक्ति का अलौकिक उदाहरण बन गये। शरीर पर एक कटि वस्त्र के सिवा कुछ नहीं पहनते। एक बार उन्होंने बाई को निमंत्रण दिया परन्तु भील होने के कारण बाई को भोजन कराने में संकोच मानकर जिस परसादिये से वे दही छाछ लिया करते उससे एक तोला के लगभग मिश्री मावा लाये और बाई को प्रसाद के रूप में भेंट किया। इस प्रसाद की कीमत पूरी करने

के लिए पेमा बा ने कई दिनों तक छाछ को एक बार ग्रहण करके परसादिये के पैसे उतारे।

209

अलख आश्रम में सूफी कव्वालियां सुनते हुए

गोसाईजी ने उन्हें मंदिर में प्रवेश करके श्रीनाथजी के दर्शन करने की स्वीकृति दे दी परन्तु उन्होंने अपने भील देह के कारण बाहर से ध्वजा के दर्शन करके ही संतोष माना। पेमा बा इस प्रकार की साधकावस्था में लगभग आठ दस वर्ष रहे और इसके उपरान्त देह त्याग दिया। बाई ने उनका फोटो भी बताया जिसमें वे कृशकाय देदीप्यमान रूप में दिखाई देते थे।

अलख आश्रम में भक्त जनों के साथ

मोह मनुष्य को संसार से बांधे हुए है :

माण्डूक्य उपनिषद का पाठ हो रहा था। प्रसंग मोह-माया और जगत-प्रपंच सम्बन्ध का था। बाई ने अपने ढंग से मोहग्रस्त जीव के दो उदाहरण दिये जिनकी उन्हें व्यक्तिगत जानकारी थी

1. कालीदासजी वकील साहब के पास एक पालीवाल ब्राह्मण यह शिकायत लाया था कि उसकी पत्नी को एक राजपूत बहका कर भगा ले गया। अतः उस पर नालिश करके उसे सजा करायी जाये। कालीदासजी ने उसकी पैरवी करके राजपूत का फौजदारी चालान करा दिया। उस औरत और राजपूत पर मुकदमा चलते काफी अर्सा बीत गया तब एक दिन वह ब्राह्मण वकील साहब को राह में मिला। उसके सिर पर एक टोकरी थी और वह कहीं जा रहा था। वकील साहब ने उसे पूछा तो उसने बताया कि उसकी पत्नी जो राजपूत के पास है

उसके लड़का हुआ है, इसलिए उस टोकरी में वह जच्चा के लड्डू बनाकर अपनी भूतपूर्व पत्नी के लिए ले जा रहा है। वकील साहब को उस व्यक्ति के महा मोह पर बड़ा खेद हुआ और उसे फटकारते हुए उन्होंने कहा कि जो औरत तुम्हारी नाक काट कर चली गयी और अपने यार के साथ रहने पर प्रसूता हुई उसकी चिंता करते तुझे शर्म आनी चाहिये तो वह मोहग्रस्त व्यक्ति गिड़गिड़ा कर कहने लगा- "वकील साहब वह औरत तो बड़ी भोली है, उस बदमाश राजपूत के बहकावे में आ गई है, वह हरामी उसके जच्चा खर्च का प्रबंध नहीं करे तो मुझे तो करना ही पड़ता है।" वकील साहब ने उस मूर्ख की दशा पर आश्चर्य प्रकट करते हुए बाई को यह सब वृत्तान्त कह सुनाया।

2. नाथूवास में एक कीतावत राजपूत सरदार रहता था। उसके घर एक कलाल का आना-जाना

बढ़ने लगा और लोगों की निगाह में अखरने लगा। लोगों ने राजपूत को सचेत रहने को कहा और बताया कि उसकी पत्नी उस जार के वशीभूत हो उसकी जान का खतरा बन सकती है। मोहग्रस्त राजपूत ने पत्नी को निर्दोष और लोगों को अपवाद करने का दोषी ठहराया। कलाल का व्यवहार घर-घर की चर्चा का विषय बन गया पर राजपूत का मोह दूर नहीं हुआ। एक दिन रात्रि के समय घर आने पर किवाड़ बंद पाकर उसने खटखटाया। किवाड़ खुलने पर कलाल किवाड़ के पीछे छिप गया और उसकी पत्नी ने दीपक फूँक से बुझा दिया। इस हरकत में कलाल चंपत हो गया पर राजपूत की पत्नी ने अपने पति पर तलवार से हमला कर दिया। जिससे उसके सिर में घाव हो गया और हाथ से तलवार पकड़ी तो हाथ भी कट गया। मामला पुलिस में दर्ज हुआ। कलाल और राजपूत की पत्नी को पुलिस ने हिरासत में ले लिया। राजपूत

कालीदासजी को अपना वकील बनाकर पेरोकारी करने लगा। एक दिन बाई और कालीदासजी संध्या समय घूमने जा रहे थे, वहाँ वह राजपूत सिर और हाथ पर पट्टी बंधाए हुए उनके समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कालीदासजी से विनती करने लगा कि उसकी पत्नी को सजा से बचा लें। बाई ने पूछा कि यह कौन आदमी है तो कालीदासजी ने नाथूवास के हत्याकाण्ड की बात का हवाला देकर बताया कि यह वही राजपूत है जिसकी औरत ने इस पर तलवार से हमला किया था और अब उसे पुलिस ने कैद कर रखा है, जिसकी यह बचाव की बात कर रहा है, इसी ने तो दोनों पर हत्या का आरोप लगाया जिसका मैं वकील हूँ और यही अब अपनी पत्नी को निर्दोष बताकर बचाने को कह रहा है। बाई ने बताया यह मोहग्रस्त है। यही संसार का ढंग है, इसको अभी उससे और भी लातें खानी बाकी है। इस मूर्ख की अब भी आँख नहीं खुली और

आसक्ति टूटी नहीं है। वह राजपूत गिड़गिड़ाता हुआ कहने लगा, "अन्नदाता मेरी औरत बड़ी भोली है, वह तो उस बदमाश के बहकावे में आ गई वरना वह ऐसी नहीं है।" संसार के माया-मोह का यह ज्वलंत उदाहरण है।

साधु का स्वांग संसार में भटकना ही है :

बाई ने शंकराचार्य की 'विवेक चूड़ामणि' के पाठ के समय संप्रदाय और गुरुडम के प्रपंच के संस्मरण सुनाये।

1. बाई ने बताया कि उन्हें वैधव्य प्राप्त हुए डेढ़ वर्ष हुआ होगा। उस समय वे बाईस-तेईस वर्ष की उम्र में थे। सरदारगढ़ ठाकुर साहब के दादीजी शक्तावतजी ने बाई को उम्र भर संकट से बचाने के लिये उपाय सोचा। उन्होंने एक जैन साध्वी को पत्र

लिखकर कहा कि वे बाई को ढूंढिया साध्वी बनाकर अपने साथ रख लें। उन साध्वी के पास दो राजपूत युवतियाँ साध्वी बनकर रह रही थी। इन दोनों युवतियों का कहीं विवाह संबंध नहीं हुआ था और इन साध्वी ने उन्हें विवाह की व्यर्थता और संसार की निस्सारता बताकर साध्वी बनने को प्रेरित करके अपनी चेलियाँ बना ली थी।

बाई को ठकुरानी ने जब साध्वी से मिलने भेजा तो पहले उन्हें एक राजपूत जैन साध्वी मिली। उसने उन्हें बताया कि ठकुरानी उन्हें साध्वी बनाने का पत्र लिख चुके हैं परन्तु निज अनुभव से उन्होंने बताया कि बाई ऐसा न करें और यह भी डरते हुए कह गई कि बाई उसका नाम जाहिर न करें। जब आगे बढ़े तो बाई को दूसरी राजपूत जैन युवती साध्वी ने देखा और संकेत से बुलाया। उन्होंने भी बाई को कहा कि वे भूलकर भी जैन साध्वी नहीं बने। अपने अनुभव से उन्होंने भी कहा कि बहुत बड़ी भूल उनसे हो गई

जिसका अब कोई उपाय नहीं पर बाई भूल कर भी इधर पग न धरे। उन्होंने भी बाई को नाम जाहिर न करने का आग्रह किया।

बाई जब वृद्धा जैन साध्वी आचार्या के पास पहुँचे तो उन्होंने बड़ी देर तक व्याख्यान दिया। ठकुरानी का पत्र भी बताया और जैन साध्वी की दीक्षा देने को तैयार हो गई। परन्तु बाई ने स्पष्ट मना करते हुए कहा कि साध्वी होकर भी शरीर को भटकना है और नहीं होने पर भी भटकना है। अतः उनकी तो इसमें रुचि ही नहीं है। इस पर जैन साध्वी बड़ी बिगड़ी और भला-बुरा कहने लगी। बाई वहाँ से लौट आये।

2. कालीदासजी को साधु होने की धुन सवार हुई। अतः उन्होंने देवकिशनजी सोनी के घर अपने एक दो वस्त्र गेरू से रंग लिये। यह चर्चा औरतों के जरिये बाई के पास पहुँची। बाई ने भी कालीदासजी की यह भूल उन्हें मुँह पर बताना उचित नहीं समझा।

यह बात बताते हुए बाई ने हिदायत की कि- "कभी किसी को गलती बताने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए, इससे बात बिगड़ती ही है बनती नहीं। इस बात को सदा ध्यान में रखकर संसार से व्यवहार करना।"

अस्तु कालीदासजी की भूल सुधारने के लिये बाई ने कुछ कहने के बजाय पुष्कर यात्रा का प्रबन्ध किया और बड़े-बड़े जाने-माने साधु संन्यासियों का साक्षात्कार कालीदासजी को कराने का अवसर दिया। प्रवास में कालीदासजी ने साधुओं के राग-द्वेष, छल-प्रपंच और कपट व्यवहार और बाड़ा-बंदी को देखकर बाई को खुद ही कह दिया कि उन्होंने साधु नहीं बनकर बड़ा अच्छा किया। इस तरह कालीदासजी को स्वयं भूल सुधारने का अवसर बाई ने दिया।

3. मथुरा वृंदावन में कई साधु आश्रम बनाकर रहते हैं। परन्तु एक-दूसरे से राग-द्वेष में जलते हैं। एक

आश्रम में एक राजपूत और उसकी लंगड़ी पत्नी साधु-महात्मा की कृपा से ठहरे थे। चार-छः माह बाद वे पास के किसी महात्मा का व्याख्यान सुनने चले गये। जब वे लौट कर आए तो साधु ने पूछा कि वे कहाँ गये थे तो उन्होंने किसी महात्मा के व्याख्यान में जाने की बात कही। इस पर साधु इतने नाराज हुए कि उन दोनों निरीह प्राणियों को तत्काल वहाँ से आश्रम खाली करके जाने को कहा। बड़ी विनती करने पर भी साधु नहीं माने और मध्यरात्रि में उन बेचारों को आश्रम छोड़ना पड़ा और किसी धर्मशाला में जाकर अपना गुजारा करना पड़ा।

राजयोग और हठयोग :

आज तीन बजे बाई के पास विवेकानन्द के 'राजयोग पर व्याख्यान' पाठ आरम्भ किया। प्रसंगतः हठयोग की क्रियाओं से दीर्घ जीवन तथा

शरीर की शक्ति बढ़ाने की चर्चा रही। राजयोग में ज्ञान की प्रधानता पर बल दिया जिसमें अष्टांग योग की साधना प्रमुख थी। मैंने कविराज गोपीनाथ द्वारा अपने ग्रंथ में हिमालय के पहाड़ों में पाँच-छः तपस्वी मूर्तियों के वर्णन का उल्लेख किया जो अनंत काल से समाधि में बैठे तप कर रहे थे। उनका शरीर काला, बबूल के तने जैसे फटे चर्मयुक्त तथा विशाल होकर काली पाषाण प्रतिमा जैसा था तथा बैठे हुए भी पांच-छः फीट ऊँचा देह था। वे मूर्तिवत् ही थे खाना-पीना हिलना-चलना बंद था।

इस पर बाई ने अपना अनुभव बताया कि उन्होंने हिमालय में ऐसे महात्मा कृष्णानन्दजी के दर्शन किये हैं जो समाधि में बैठे ही रहते हैं उनके चारों ओर भक्तों ने पत्थरों की गुफा बना रखी है। हिमालय के लोग पीढ़ी दर पीढ़ी यही कहते हैं कि उन्होंने उन्हें वैसे ही देखा है। महात्मा बैठे रहते हैं कोई उनके मुख

में भोजन का ग्रास रखे और उनकी इच्छा हो तो वे निगल जाते अन्यथा नहीं। बाई ने उनको अपने हाथ से हलवा व पूड़ी खिलाई। दो-तीन ग्रास लेने के बाद फिर नहीं लिये। मूर्तिमान रहते, देखते सुनते, हिलते-डुलते नहीं। पहाड़ी महिला उनकी सेवा में रहती। बर्फ पड़ने पर पत्थर चुनकर नीचे चली जाती। बर्फ पिघलने पर पुनः सेवा में आती। महात्मा के शरीर का चमड़ा काला स्याह पड़े हुए पाषाण जैसा था। बबूल की छाल जैसा हो गया था। वे किसी काल में हठयोग की साधना में शरीर को दीर्घजीवी बनाने की साधना में उलझे थे।

दूसरा प्रसंग बाई ने लगभग आज से बीस वर्ष पहले का बताया कामली घाट के पहाड़ों में भी ऐसे ही एक महात्मा रहते थे जो इतने कृश-काय हो गये थे कि रीढ़ झुककर उनकी नाक घुटनों में लगी रहती थे। वे इसी प्रकार कुंडली बनकर पड़े रहते थे। उनका चमत्कार यह देखा कि उनके यहाँ कुछ भैंसे स्वयं

आती और उनके मिट्टी के पात्र में स्वतः दूध की धार छोड़ती थीं। भैंसों का मालिक भी इन भैंसों को महात्मा की भैंसे मानता था। महात्मा उस दूध को उनके पास आने वाले दर्शनार्थी, भील व मजदूरों को पिलाते और स्वयं भी पान करते थे। बाई ने उनके दर्शन किये थे।

एक प्रसंग मनोहर बाई, लक्ष्मीलालजी जोशी की पुत्री ने सुनाया-हठयोग की समाधि का उनके दादाजी जटाशंकरजी ने गंगातट पर देखा था कि किसी चबूतरे के टूटने पर भीतर से समाधिस्थ महात्मा बैठे निकले जिनका शरीर बड़ा दिव्य और ऊँचा था। उनकी भौंहें दाढी जितनी लम्बी हो गई थी। लोगों ने उन्हें जगाया और वे उठे तो उस खंदक में नहीं समाये । उन्होंने परेशान करने का कारण पूछा- पुनः समाधि के लिये गंगाजल माँगा जिसे मिलने पर अपवित्र बताया। अतः अपने कमंडल का जल ग्रहण करके समाधिस्थ हो गये। एक अंग्रेज

अधिकारी ने चबूतरे में उन्हें उनकी इच्छानुसार पुनः चुनवा दिया। जटाशंकरजी जोशी इस घटना को देखने के लिए पूरे चार घंटे तक रुके थे।

बाई की योग साधना, गुरु चतुरसिंहजी बावजी से साक्षात्कार :

आज दिन में तीन बजे बाई के पास पाठ करने गया-भक्त नाथूबा लुहार पधारे, उन्होंने बाई को भजन सुनाये। उनके साथ दो व्यक्ति और थे। राजयोग में प्राणायाम साधना का प्रसंग तथा इडा-पिंगला- सुषुम्ना से षटचक्र भेदन से कुंडलिनी जाग्रत होने से ओजस्विता और ज्ञान प्राप्ति का प्रसंग चला । बाई ने अपना अनुभव सुनाया कि नौ वर्ष तक उन्होंने प्राणायाम साधन करके षटचक्र भेदन किया- नाथूलाल भाई व कालीदासजी ने भी इस साधना को किया था। इसी प्रसंग में बाई ने अपना

पूर्व जीवन और महाराज चतुरसिंहजी से साक्षात्कार का वर्णन किया।

परमानन्दजी के छोटे भाई शोभालालजी शास्त्री बड़े विद्वान थे। वे नाथद्वारा आते रहते थे। बाई से उनका परिचय था । परमानन्दजी की पुत्री माधोलालजी को परणाई थी। (भाई भगवान की माता) अतः उनके मकान में जगह कम होने से शोभालालजी बाई के यहाँ ही ठहरते। बाई की योग साधना जानकर एक बार उन्होंने बताया कि करजाली महाराज साहब लक्ष्मणसिंहजी के भाई चतुरसिंहजी से योग साधना के विषय में मिले तो वे मिला सकते हैं।

बाई, नाथूलालजी और शोभालालजी के साथ उदयपुर महाराज चतुरसिंहजी से मिलने गयीं। नाथूलालजी तो अपने संबंधियों से मिलने चले गये और बाई को महाराज साहब के पास बैठा गये उस समय बाई को साधना करते-करते नौ वर्ष बीत गये

थे।

महाराज चतुरसिंहजी ने बाई से साधना सम्बन्धी जानकारी ली और सुनने के बाद यही कहा कि 'ज्ञान नहीं हुआ'। बाई ने कहा कि यह सुनकर उन्हें इतना गहरा आघात लगा कि मानो शरीर पर तलवार चल गई हो। उन्हें अब तक यह अभिमान था कि वे तो महात्मा योगी हो गयी हैं और उन्हें अज्ञानी बता दिया। परन्तु मन मार कर बाई बैठे रहे। सोचने लगे नौ वर्ष की साधना धूल हुई ।

बाई जब नाथद्वारा आने लगे तो महाराज साहब ने उन्हें पचास रुपये भेंट किये। बाई ने बताया कि धन के कारण उनको अपने गरासियों से अपार कष्ट सहन करना पड़ा है अतः उसे ग्रहण करने से मना कर दिया तब महाराज साहब ने कहा कि बाई यह कह दो कि "राजाओ का धन पाप की कमाई है। अतः वे नहीं लेते।" बाई बड़े पशोपेश में पड़े। यह उन्होंने कहना उचित नहीं समझा और भेंट स्वीकार

की। नाथद्वारा जाने के बाद महाराज साहब ने उन्हें ज्ञानेश्वर की अमृतानुभव हिन्दी टीका भेजी जिसे पढ़ने पर बाई को स्वयं अनुभव होने लगा कि वास्तव में अब तक वे अज्ञान में थी। महाराज साहब की पुस्तकें तब तक छपी नहीं थी। अतः वे समय-समय पर अपने हाथ से लिखे अनुभव छोटे-छोटे परचों पर लिखकर बाई के पास पढ़ने को भेजते रहे। उनसे बाई को ज्ञान हो गया। बाई ने बताया कि आँख उघड़ते देर थोड़े ही लगती है। अब तक साधना पर बल और हठ योग पर अभिमान था जो पल भर में ज्ञानयोग के महत्त्व के समझ में आते ही हट गया। ज्ञान हो गया । ज्ञान षटचक्र भेदन और कुंडलिनी जाग्रत होने पर स्वतः हो जाता फिर कुछ भी शेष नहीं रह जाता है जो कुछ जानने लायक है स्वतः जानने में आ जाता है।

बाई ने बताया कि छोटे बालक कभी बैठे-बैठे गिर पड़ते हैं तो उन्हें तुंगली की बीमारी हो जाती है।

उसमें रीढ़ की अंतिम नोक मुड़ जाती है। उस रीढ़ के अंतिम छोर पर सुषुम्ना नाड़ी है जहाँ मूलाधार से स्वाधिष्ठान चक्र से कुंडलिनी के ऊपर सहस्त्रार चक्र में प्रवेश करते हैं वह सूक्ष्म छेद जागृत करना होता है। यही काम शक्ति है जिसे ओज में ब्रह्मचर्य से बदल कर प्राणायाम से इड़ा, पिंगला को जाग्रत कर सुषुम्ना में प्राण को प्रवेश करना होता है।

प्रायः समस्त प्राणियों में इड़ा, पिंगला ही चलती है। इड़ा से बाहरी अनुभव भीतरी सहस्त्रार तक जाते हैं और पिंगला से सहस्त्रार से आदेश बाहरी जगत को क्रिया रूप में होते हैं। मनुष्य राजयोग द्वारा दोनों के मध्यवर्ती सुषुम्ना के द्वारा प्राण शक्ति कुंडलिनी जागृत कर सहस्त्रार में प्रवेशकर मेधा और ओज को बढ़ा लेते हैं जिससे ज्ञान होता है। स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि समस्त जीव क्रमशः देवत्व प्राप्त करके मुक्त होंगे परन्तु यह लम्बी प्रक्रिया है।

बाई ने हँसते हुए कहा कि "यदि मुझे महाराज

साहब चतुरसिंहजी जैसा गुरु समय पर नहीं मिलता तो मैं भी असंख्य बनावटी मीरां बाइयों की तरह होती, लोग मुझे बड़ी महात्मा मानते। चढ़ावा चढ़ाते और मैं भी अभिमान में फूली-फूली फिरती। महाराज साहब ने मेरी आँखें खोल दी। तत्काल मैं जग गई, मुझे ज्ञान लाभ हुआ।"

आगे बाई ने बताया- "महाराज साहब ने मृत्यु के पहले अपने सभी भाइयों को पास बुलाकर यह हिदायत दी कि वे कम से कम महीने में एक बार अवश्य मेरे (बाई के) पास आयें। महाराज साहब लक्ष्मणसिंहजी ने जीवन पर्यन्त यह प्रण निभाया। मैं सरदारगढ़ होती तो वहाँ भी माह में एक बार वे आकर मेरी सार संभाल करते। महाराज शिवदान सिंहजी ने भी मृत्यु पर्यन्त इसका पालन किया। उन्होंने यह झोंपड़ा (अलख आश्रम) बनाकर मुझे यहाँ रख दिया जिससे मुझे अपना पुराना मकान अपने गरासियों को सौंप कर आना संभव हुआ।"

फिर बाई कहने लगीं, "इसमें संसार का क्या दोष है? सब दोष अपना ही है। यह जो कुछ जगत में दिखता है वह मैं आपको कहने नहीं आती कि अमुक चीज का नाम अमुक है। यह तो सब आपके ही दिये हुए नाम हैं। बुरा और भला अपने ही मन के माने हुए खेल हैं।"

ब्रह्मचर्य और योग साधन :

प्राणायाम और योग साधना में षटचक्र भेदन के लिये ब्रह्मचर्य साधन परम आवश्यक है। बाई ने बताया कि एक ब्राह्मण का लड़का योग साधन में लगा और गृहस्थ की गलती कर बैठा अतः पागल हो गया। इसी तरह एक ठाकुर भी असावधान रहने से पागल हो गया।

वृत्ति का शमन करना योगी के लिये नितांत

आवश्यक:

आज स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यान के पातंजल योग सूत्र में वृत्ति निर्मूल करने के विषय में बाई ने अपना अनुभव सुनाया और बताया कि वृत्ति को वश में करने के लिये उसका अनुसरण न करके उसके विपरीत करना चाहिये:-

एक बार बाई को छः दिन तक उग्र ज्वर रहा। उस समय बाई की उम्र तेईस वर्ष की थी और वैधव्य अवस्था थी। मजदूरी करके तांगा वाले चौधरी के घोड़ों की रातब दलतीं जिससे एक मन के चार आने मिलते। बुखार की हालत में छः दिन तक यह काम नहीं किया। खाना-पीना बन्द रहा। जब बुखार छठें दिन टूटा तो भूख लगी। घर में खाने-पीने को कुछ था नहीं। एक डिब्बे में एक पैसा मिला उससे भोयण के पास से कोला (कद्दू) लेकर उबाल कर खाया।

बाद में एक घड़ी (दस सेर) रातब दली जिससे दो आना पैसा आया और जौ का आटा लाकर दो रोटी सेकी, रोटी गले नहीं उतरी क्योंकि बुखार से गले में कांटी पड़ गई थी और जौ की कोरी रोटी थी। मन में आया कि मिर्च-मसाला हो तो रोटी खाई जाये। घर में मिर्च-मसाला नहीं था। इस तरह तीन दिन तक मगज में से मिर्च-मसाले की वृत्ति हटी नहीं। बार-बार उसकी ही याद मन के सामने आ खड़ी होती। बाई ने कहा कि आज मिर्च-मसाले की वृत्ति को मारना ही होगा। यह निश्चय करके वे जौ की रोटी खाने बैठे। पर उबाकी आई, मिर्च की वृत्ति पुनः सामने आ खड़ी हुई। उदयलालजी गुर्जर की पत्नी उनके पास बैठी थी, उसे बाई ने कहा कि कहीं साफ जगह से थोड़ा गोबर ले आवे। उस महिला ने समझा कि बाई को घर लीपने के लिये गोबर की आवश्यकता होगी अतः तुरन्त ही साफ-सुथरी जगह से गोबर ले आई। बाई ने गोबर तुरन्त रोटी पर

रखकर उससे रोटी खाना शुरू कर दिया। यह देखकर वह गूजरी बिलख-बिलख कर रोने लगी। वह अपने घर से शाक, मिर्च-मसाला लाकर देने की मिन्नत करने लगी पर बाई ने कहा कि कोरी रोटी गले नहीं उतर रही थी इसलिये गोबर से गले उतर जायेगी। मिर्च मसाले के मन को आज यही खुराक खिलानी है। तू सोच मत कर। इस तरह वृत्ति को विजय करने में यह प्रयोग बड़ा सहायक हुआ ।

धन की वृत्ति पर विजयः

पति के देहान्त के बाद बाई के पास चांदी के जेवर लगभग पांच सौ रुपये के थे। जिनके लिए उनके गरासियों ने बाई के पिता को पंचों में बुलवाया व इकरार कराया कि यह रकम खुर्द-बुर्द न हो। इसकी वे जमानत दें। पिताजी ने पंचों के सामने यह कबूल किया। बाई के यहाँ महिलाएँ भजन-भाव के

लिये आती थी। बाई की आयु बाईस वर्ष की थी। अतः महिलाओं ने उन्हें सलाह दी कि जेवर की पोटली को जाब्ते से रखें, कोई ले न जाये वरना उनके पिता को और उनको परेशानी होगी। एक दिन रात्रि में बाई के मन में जेवर की पोटली की सुरक्षा की वृत्ति उठी उन्होंने उसे कहीं छिपा देने की कोशिश की। उनके घर के ओवरे में घास भरी थी। गाड़ी दो गाड़ी घास थी। दीवार की तरफ छोटा रोशनदान था उसकी सीध में बाई ने घास में गहनों की पोटली छिपा दी और पुनः आकर सो गये। परन्तु जेवर की वृत्ति सामने आ खड़ी हुई। नींद नहीं आई । यह चिन्ता हुई कि कहीं चूहे पोटली ले न जाये। ज्यों-ज्यों चिन्ता की त्यों-त्यों यह भय बढ़ता गया कि चूहे पोटली ले जायेंगे। अतः पुन उठकर पोटली लेने गये। अंधेरे में जहाँ घास में पोटली रखी, वहाँ नहीं थी। मन घबरा गया चूहे पोटली ले गये अब क्या करे। बहुत देखा फिर विचार आया कि वजन

के कारण घास में नीचे धंस गई होगी, पर हाथ कैसे पहुँचे। रात के बारह बजे होंगे, धीरे से किवाड़ खोलकर बड़ा पत्थर भीतर ले गये, उस पर खड़े होकर हाथ पहुँचाया तब पोटली के सिरे पर हाथ लगा और धीरे-धीरे उसे खींचकर ऊपर उठाया और तब संतोष हुआ।

पोटली लाने के बाद भी नींद नहीं आई। इस धन की रक्षा करने की वृत्ति ने बड़ा परेशान किया। बाई ने सोचा हजारों का धन जमीन-मकान आदि तो मरने वाले के बाद गरासियों ने ले लिये। पिता ने बालपने में विवाह कराकर अपने को उऋण समझा। अभी तो बहुत जीना है। इन पांच सौ रुपयों के जेवरों से ज़िन्दगी निकलेगी नहीं और अभी से यह दुःख दे रही है। अतः अब इससे छुटकारा जरूरी हो गया है। अतः प्रातःकाल एक सनाढ्य ब्राह्मणी को बुलाकर कहा कि ये जेवर की पोटली उसके पति को ले जाकर दे और कह दे कि इसे बेचकर पैसा आवे उसे

गरीबों को बांट दे। ब्राह्मण ने रकम बेचकर गरीबों में अन्न-वस्त्र बाँट दिये और शेष बची चौअन्नी को बाई को लाकर लौटाई जिसे बाई ने तत्काल गली में फेंक दी।

जेवर की पोटली खत्म होने के बाद निश्चिन्तता से नींद आई। मन की वृत्तियाँ उठकर सदा सामने आ खड़ी होती हैं। "यो संसार अस्यो ही है" (यह संसार ऐसा ही है) अब ऐसी कोई वृत्ति नहीं उठती, "अब है ही क्या जिसके लिये उठे?" और बाई ने वृत्ति-विजय पर हँसकर बात खत्म करके आगे पढ़ने को कहा।

अलख आश्रम :

राजयोग में उपेक्षा के प्रसंग में बाई ने बताया कि **क्रोध का कारण उपस्थित होने पर दूर हट जाने और दुखदायी व्यक्ति के प्रति पूर्ण उपेक्षा रखने से**

चित्तवृत्ति का शमन होता है। इस प्रसंग में अपना अनुभव और अलख आश्रम के निर्माण की बात कहीं-

पहले वाले मकान में महाराज शिवदानसिंहजी शिवरती वालों की बहूजी एक बार एक दो माह के लिए आकर रहीं। मकान में बाई के दत्तक पुत्र अंबारामजी कथा वार्ता और सत्संग के समय ही घर में से घास निकालना, धूल उड़ाना, बक-शक करना किया करते थे। बहूजी ने जब सब परेशानी अपनी आँखों में देखी तो उन्होंने महाराज साहब को बताया कि बाई को उस मकान अत्यन्त क्लेश है। अतः इसका उपाय करें।

एक बार तंग आकर बाई अपने पिता के यहाँ सरदारगढ़ जा बिराजी थीं। महाराज शिवदानसिंहजी ने नया आश्रम बनाने का निश्चय कर लिया था। अतः मौजूदा स्थान किसी कुम्हार से एक हजार रुपयों में खरीदा और आठ हजार रुपये लगाकर यह मकान

तैयार करवा दिया। भूरामलजी रेलवे ठेकेदार ने किवाड़, लोहा, सीमेन्ट आदि का प्रबन्ध अपनी ओर से कर दिया। एक वर्ष के अंदर आश्रम बनकर तैयार हो गया। बाई सरदारगढ़ से आकर इसमें बिराजीं। उसके बाद कभी फिर कर भी पहले वाले मकान की तरफ न गयीं, न उसका कभी हाल ही पूछा।

यहाँ बाई जब से आ बिराजीं तब से यह मकान एक तीर्थ हो गया है। साधु-संन्यासी- जिज्ञासु और भक्त यहाँ तांता लगाये रहते हैं। "आपण यूं ही ठीक है, है के नी?" (अपने ये ही ठीक है, है कि नहीं?) बाई ने हँस कर पूछ लिया। क्रोध की वृत्ति को शमित करना योगी के लिये नितान्त आवश्यक है अस्तु शान्त वातावरण में रहो।

बाई के भण्डार का खर्च :

राजयोग पाठ के पूर्व बाई सदा आगंतुक व अतिथियों को चाय पिलाते हैं, वह भी भरपूर बड़े-बड़े कटोरों में। बाई के आश्रम की चाय और चाय पीने के साधन अनोखे थे। एल्यूमीनियम की बड़ी कटोरी में बड़े चम्मच से अतिथि को चाय पीनी होती है। सभी इसी ढंग पीते हैं। इनकी परिचारिकाएं चाय पी लेने के बाद पात्र स्वयं ले लेती हैं और स्थान को लीप कर साफ करती हैं।

दस दिन में एक सौ रुपये की शक्कर खत्म हो जाती है। चाय दो-तीन किलो के पुड़ों में इकट्ठी आती है। तीन महीने में पाँच किलो हल्दी खत्म हो गई। आठ महीने में ग्यारह बोरी गेहूँ खत्म हो गया। पाँव जल जाने से बाई चार माह बीमार रहे। जोशीजी पूरे समय तक यहीं रहे। आने-जाने और खुशी पूछने वालों का तांता लगा रहा। घर खर्च भगवान भरोसे चलता है।

मनुष्य अपने आपको धोखा देकर दूसरों को भी धोखा देता है :

पास में एक कुम्हार रहता है जिसके एक अंधी बूढ़ी माता है। उसकी पत्नी मर गई और तीन-चार बालक छोड़ गई है। कुम्हार ने दूसरी औरत की पर वह टिकती नहीं है। एक बार राह में बाई के सामने आकर रोने लगा कि "बाई! माँ की सेवा और बालकों के लिये औरत लाया। पर मैं दुखी हो गया, वह भाग जाती है।" बाई ने फटकार दिया कि "कर्म तो तुम्हारा खोटा है और माँ की सेवा का नाम लेकर सुख पाना चाहता है यह कैसे बनेगा?" कुम्हार खरा उत्तर पाकर चुप होकर चलता बना।

योग मार्ग में वाद-विवाद की गुंजाईश नहीं :

डूंगरपुर महारावल लक्ष्मणसिंहजी ने दर्शनार्थ

आने का पत्र लिखा। बाई ने बताया कि वे आकर कोई प्रश्न पूछेंगे तो क्या उत्तर देंगे। जोशीजी ने कहा कि आप किसी से डरते थोड़े ही हो-बात यह है कि योग से ज्ञान हो जाने पर बोलने-बताने का कुछ रहता ही नहीं, चुप बैठ रहना ही होता है। महारावल लक्ष्मण सिंह जी पधारे, जोशीजी से परिचयात्मक वार्ता के बाद भोजन तैयार होने पर, भोजन करके आज्ञा लेकर रवाना हो गये।

संसार को सत्य मानने का भ्रम प्राणी का क्लेश हैं :

बाई के पास आज एक वृद्ध मिलने आया, वह पहले मोटा ताजा था पर आज कृश काय दीन-हीन सा मृतप्रायः था। राज योग पढ़ने के आरम्भ में बद्ध और मुक्त के प्रसंग पर बाई ने उस व्यक्ति का उदाहरण दिया। आत्मा को किसी ने बांधा नहीं है न

कोई अन्य मुक्त कर सकता है। अपनी उलझन आपको ही मेटनी होती है। बाई ने बताया कि वह व्यक्ति सरदारगढ़ का निवासी एक दर्जी है। अपने आपको महान् बुद्धिमान मानता है। यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी उसकी क्या बराबरी कर सकते हैं। गाँव के लोग उससे राय लेते हैं। बाई के यहाँ प्रतापजी सुथार आते हैं, वे भी उसके चेले हैं। उसे पूछे बिना काम नहीं करते।

यह व्यक्ति ब्याज-बट्टा और गेणावट के लेनदेन में अपने को अत्यन्त चतुर मानता है। गाँव के लोगों को कर्जदार बना रखा है। एक मण अनाज उधार दे तो साख पर डेढ़ मण वसूल करता है, रुपयों पर ब्याज मनमाना वसूल करता है। किसी को एक सौ रुपये दे दे तो दस वर्ष तक उसे चूसता रहे और मूलधन उतर नहीं सके। अपनी संसारी बुद्धि लोभ की तृप्ति से वह मुष्टण्डा बना हुआ था।

अब इतना दुबला कैसे हो गया। क्या बीमारी

लगी। यह पूछने पर उसने बाई को बताया “घणो दुख आ पड्यो, हजारां को नुकसान व्हे ग्यो, जीवन में घणी हैरानी व्ही है, अणी सूँ तँजी ग्यो हूँ।” बहुत दुःख आ पड़ा है, हजारों का नुकसान हो गया, जीवन में बहुत परेशानी है, इससे बाई अत्यन्त कष्ट अनुभव कर रहा हूँ। बात यह हुई कि उदयपुर के कलेक्टर सरदारगढ़ गये और उन्होंने एक रोज स्वयं वहाँ रहकर बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत करीब-करीब सब कर्जदारों को उसके कर्ज से मुक्त करा दिया। रुपया नहीं दिलाया। (इंदिरा गांधी के आपातकालीन नियमों में)

इसी बीच उसका सबसे छोटा लड़का घर में एक गाडरी के द्वारा गिरवी रखे हुए हांसली-कड़े व जेवर चुरा ले गया और चार हजार रुपये में बेच कर भाग गया। रुपये खर्च होने पर वापस लौटा। गाडरी जब अपनी रकम मांगने आया तो ढूँढने पर नहीं मिली। अब उसे उसकी रकम चुकाने का प्रबन्ध करना

पड़ा। अगर पहले, ब्याज, गिरवी रखते वक्त लोगों की गर्दन अनावश्यक नहीं दबाई होती तो आज तुमको यह कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

"बाई म्हने घणो दुःख और परेशानी आई पड़ी है" बाई ने कहा कि "भाई पेला ब्याज-गेणावट छुड़ाबा में दूजारा गला मरोड़वा में अस्यों ही दर्द जाण ग्यो व्हेतो तो आज अस्यो नी व्हेतो" दर्जी बेचारा मुँह लटका कर वस्तुस्थिति समक्ष आ जाने से चुप हो गया।

भ्रम मिटना ही मुक्ति है :

राज योग के विभूतिपाद अध्याय के पाठ में विभिन्न विभूतियों की प्राप्ति के उपरान्त स्वामी विवेकानन्दजी जब यह कहा कि सब स्वप्नवत् ही हैं, अतः योगी उनमें ललचाये नहीं । अन्यथा पुनर्जन्म और भव-भ्रमण आदि सब कल्पना और

भ्रम ही है, अपने को इससे डरना नहीं चाहिये।

"आप हो और आपकी कल्पना, यह संसार है, इसमें जमीन, धरती, पत्थर आदि जो भी नाम दिये आपने ही दिये हैं। आप नहीं हो तो ये शून्य ही है। घर संसार में अहं भाव नहीं रखना। यह है ऐसा का ऐसा ही है। कुटुम्ब खटमल की तरह खून चूसेगा, इससे अधिक कुछ नहीं है, पुरुष बाहर मजदूरी करते हैं और स्त्रियाँ घर में, दोनों मजदूर ही हैं। इसमें उत्तम कौन है?"

कुटुम्ब परिवार संसार में मनुष्य अपने आपको भूल गया है।

यह भ्रम मिट जाये तो संसार में सब कुछ होते हुए भी योगी (समझा हुआ ज्ञानी व्यक्ति) इनमें आकर्षण का कोई कारण नहीं देखता-"जो है जो दीख जाय पर्छ तो जमारो पूरो करणो ने सांस छूटै जठा तक सत्संग रोज घड़ी-दो घड़ी करले जणी सूं सुरता बणी रेवे"-आपां सब राजा हीज हाँ पण कांजरां भेळा रेवा

लागा ने कांजर मान बैठा आपणे आपने, "कणी दूजे आपांने नहीं भुलाया। आपा आपो आप ही भूल कीदी है आपा ने हीज भूल मिटावणी है पछै तो ज्यूं हाँ ज्यूरां ज्यूं हीज हां। बाल री नोक जतरी भी हलण-चलण अन्तरात्मा में कदी नी व्ही है न कई है है" एक उदाहरण में वार्ता पूरी की-

एक राजा जंगल में शिकार के लिए गया। वह मार्ग भूल गया तब कांजरों ने उसे लूट लिया और कैदी बना दिया। उसको कांजर के कपड़े पहना दिये और एक कांजर औरत से विवाह कर दिया, सब उसे कांजर मानने लगे। राजा भी कांजर की तरह बर्ताव करता । पर वह जानता था कि वह कांजर नहीं, राजा है। कांजर उसे गधे चराने भेजते और अपनी निगाह में ही रखते। राजा कांजरों का नौकर होकर गधे चराता था। एक दिन रात्रि में वह जंगल में ही रह गया। कांजरों को चिंता हुई पर प्रातःकाल

जब राजा गधे चराकर गाँव की ओर आता दिखाई दिया तो उन्हें विश्वास हो गया कि अब यह कहीं नहीं जाने का। राजा को कांजरों के साथ रहते काफी समय हो गया। उसके कांजरी से बाल-बच्चे भी हो गये पर उसे सदा भान बना रहता कि वह राजा है कांजर नहीं ।

एक बार मौका पाकर राजा गाँव से भाग निकला और अपने नगर में जाकर अपने पुत्र को सारा वृत्तान्त कहा और बताया कि तुम मुझे अपने साथ रखो तो मैं रहूँ। कांजरों में रहते मेरे कंजर बच्चे भी हो गये हैं, सब कुछ हुआ पर मैं राजा हूँ। यह मुझे भान है। नहीं रखो तो कांजरों के डेरों में जाकर तो रहना ही है। पुत्र ने राजा को अपने पास रख लिया। राजा अपने रूप में पुनः ज्यों था वैसा ही प्रकट हो गया।

भ्रमित आत्मा कंजर है, राजा प्रबुद्ध आत्मा है, पुत्र सतगुरु है, और भ्रम निवारण का सहारा भव

भ्रमण से मुक्ति का उपाय तथा वास्तविक रूप का ज्ञान है।

तदाकार वृत्ति के चमत्कार :

स्वामी विवेकानन्द के ज्ञान योग का पाठ आरम्भ होने के पूर्व प्रसंगतः बाई ने वृत्तियों के नाश और भगवद् वृत्ति के उदय होने की अवस्था की बात के संबंध में बताया कि स्वामीजी ने अमेरिका जाते समय विदाई समारोह में रंडियो (वेश्याओं) को भजन गाने आया जानकर अपने को कमरे में बंद कर लिया और किवाड़ बंद करके बैठ गये थे। जब रंडी ने सूरदास का भजन आरम्भ किया-

"प्रभु मेरे अवगुण चित न धरो।" इस भजन से तो स्वामीजी की आँख उघड़ गई। उन्हें स्वयं के इस व्यवहार पर पश्चाताप हुआ। बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि उस समय मेरी वृत्तियों का पूर्ण शासन

नहीं हुआ था "मुझे तब, मुझमें और रंडी में भेद दृष्टि बची हुई थी। आज यदि वह महिला मुझे मिले तो मैं उसके चरणों में लौट कर क्षमा याचना करूँ।"

बाई ने इस पर कहा कि अहं वृत्ति का नाश हो जाना ही योग साधना की मुख्य उपलब्धि है। इसी प्रसंग में अलग निजी अनुभव कहा कि प्रेम व्यवहार, स्त्री, पुरुष, संसार, समाज, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का ध्यान नहीं रखता।

एक संन्यासी "रमैया राम कहो" सर्वत्र दीवारों पर लिखते फिरते थे।

नाथद्वारा, उदयपुर और आसपास होते तो पधारते रहते थे। बाई एक बार कालीदासजी, नाथूलालजी और पांच-छः अन्य स्त्री पुरुषों को साथ ले वृन्दावन गये थे। वहाँ दर्शनार्थ जाते समय राह में महात्मा रमैयारामजी सामने आते दिखाई दिये। उन्होंने भी बाई को देखते ही दौड़ कर बीच बाजार में बाई से भेंट की और गले मिलकर रोने

लगे। बाई भी प्रेमाश्रु से विह्वल व महात्मा भी अश्रु प्रवाह से विह्वल थे। कालीदासजी, नाथूलाल भाई और उनके साथ के नर-नारी सभी प्रेम विह्वल होकर इन दोनों महात्माओं का महान मिलन देख रहे थे और गद्गद् होकर रो रहे थे। बाजार के लोग यह विचित्र समागम देखकर चकित थे।

"प्रेम व्यवहार, सांसारिक मर्यादा नहीं देखता" अभेद दृष्टि होने पर संसार मिट जाता है।

मांडा वाला पूराराम भगत की जय :

भीण्डर के इलाके में मांडा वाला एक गाँव है। वहाँ पूरारामजी सुथार रहते थे। उनकी साधु संतों में बड़ी भक्ति थी। उनके घर आये साधुओं का भोजन सत्कार करते रहते थे। वे बड़े गरीब फटे हाल सुथार थे और गाँव सामान्य सुथारी काम करके जीवन यापन करते थे। गाँव वाले उन्हें ढोंगी कहते थे,

"बड़ो भगत बणै है, ढोंगी है, कमाई नी व्हे है।" आप बड़ा भगत बनता है, ढोंगी है, कमाई नहीं होती है। उनकी पत्नी भी बड़ी कर्कशा थी, बेचारी गरीबी से दुखी थी और साधु-संतों के पीछे पागल अपने पति से तंग थी। लोगों ने उन्हें नहीं समझा था।

उनके पास भारत के लगभग सभी तीर्थों के साधु-संत आते रहते थे।

वे उन्हें अच्छी तरह समझ गये थे। भक्त के दर्शन करके भोजन-भजन करके तृप्त होते थे। उनके नाम का प्रताप एक बार भीण्डर महाराज साहब ने हरिद्वार में देखा, तब तक उन्हें स्वयं भी पता नहीं था कि उनके गाँव में इतना उच्चकोटि का भक्त निवास करता है।

भीण्डर महाराज साहब अपने परिवार के साथ हरिद्वार गये थे। नाव में बैठ कर गंगा पार जा रहे थे। नाव में अन्य यात्री भी थे। बहुत से साधु भी बैठे थे।

नाव अधिक भरी हुई थी, अतः बीच मझधार में खतरे में पड़ गई और डूबने लगी। सबके सब यात्री भयातुर हो गये। साधु-संतों ने भी घबराकर "भक्त पूराराम की जय" "मांडावाला भगत की जय" आदि जय जयकार की रट लगा दी। नाविकों ने संभल-संभल कर नाव खेई । नाव पार लग गई। सबको संतोष हुआ।

भीण्डर महाराज साहब ने अनेक भक्तों के नाम सुने पर 'भक्त पूराराम' का कभी नाम नहीं सुना था । 'मांडा वाला नाम' से भी उन्हें आश्चर्य हुआ। अतः उन्होंने साधुओं से पूछा कि 'पूराराम भगत' कौन है तो साधुओं ने बताया कि "मेवाड़ के बहुत बड़े भक्त हैं और भीण्डर के पास मांडा गाँव में रहते हैं।" भीण्डर महाराज को जिज्ञासा हुई। अतः भीण्डर आने पर भक्त पूरारामजी के दर्शनार्थ सपरिवार गये। वहाँ इन्होंने देखा कि एक फटे हाल सुथार प्रौढावस्था पार किये हुए हैं। उनके नाम का इतना

प्रताप है, यह आसपास एकत्रित अन्य लोगों को बताया कि “पूराराम बड़े भक्त हैं इनके देहत्याग होने पर सामान्य संस्कार नहीं होगा। उनका डोल निकालेंगे। अतः इनके स्वर्गवासी होने पर मुझे भी सूचना देना।” लोगों ने फिर भी कहा, “ढोंगी है भगत बने हैं पाखंडी हैं।" ढोंगी है, भक्त बनता हैं, पाखण्डी है।”

बाई ने बताया कि उनकी जेठानी (नरोत्तम जी की माता. नारायण जी की पत्नी) ने उनके दर्शन किये थे। संवत् 1956 के अकाल में और बाद में महात्मा पूरारामजी के घर आने जाने वाले साधु-संतों को वे भोजन कराया करते थे। अपने हाथ से मक्की दल कर एक मटकी में भर रखते। दलिये से रावडी या घाट बनाकर साधुओं को खिलाते। साधुओं के भोजन व्यय के लिये घर में साधन न होने पर गाँव के एकमात्र बनिये से उधार सामग्री लाते। उधार के तीन सौ रुपये लगभग चढ़ गये थे। घर के छोटे-मोटे

जेवर गिरवी पड़े थे। यहाँ तक कि पत्नी की साड़ी घाघरा, शादी-ब्याह या त्योहार पर पहनने योग्य थे वे भी गिरवी पड़े थे। बनिया उगाही करता था। पैसों के लिये खरी खोटी सुनाता, भक्त कान बंद करके सुनते रहते। "कर्जो उतार दूँगा सबर राखो।" "कर्जा उतार दूँगा, धैर्य रखो।" इसके सिवाय कुछ प्रतिवाद नहीं करते।

एक समय ऐसी ही हालत में उनके घर पच्चीस साधु-संत आ गए, मालपुआ-पूड़ी का भोजन और पच्चीस कंबल साधुओं ने मांगे। भगत पूराराम क्या करें? लाचार हो साधुओं को आश्वासन देकर बनिये के पास ही प्रबंध के लिये गये। बनिये ने सुन कर अनाप-शनाप गालियों से उनका स्वागत किया। अपने पहले के तीन सौ रुपये की वसूली और उधार की ही उसे फिक्र लगी थी। अब पच्चीस कंबल और मालपुआ का जीमण पच्चीस साधुओं के लिये कराने में वह कतई तैयार नहीं था। भगत

पूराराम ने बहुत मिन्नत की परन्तु काम नहीं बना। अतः लाचार होकर कुएँ पर स्नान करने चले गये। गाँव में दूसरा बनिया था नहीं। प्रबन्ध की कोई आशा नहीं थी। घर पर भी क्या मुँह लेकर जावे।

साधुओं को क्या जवाब दे । स्नान के बाद इसलिए मुँह छिपाने के लिए कुएँ पर ही बारह बजे तक बैठे रहे और साधुओं के भोजन के प्रबंध की चिन्ता में गमगीन हो लीन हो गये।

बहुत देर बाद उन्हें विचार आया कि पास के दूसरे गाँव के किसी बनिये के पास जाकर उधार का प्रबन्ध करके साधुओं को निपटाना होगा। अतः वे उठकर दो खेतों के बीच में रास्ते से होकर अपने गाँव के बनिये की नजर बचा कर निकलने के उद्देश्य से रवाना हुए। रास्ते के बीचों-बीच पहुँचे ही थे कि सामने से उन्हें वहीं बनिया आता दिखाई दिया। उसे देखते ही वे भयातुर होकर तुरन्त मुड़ गये और अपने हाथ से स्नान के बाद साथ लाए पानी के लोटे को

उठाये उठाये ही वापस गाँव की ओर द्रुतगति से कदम बढ़ाये ताकि वे अन्य मार्ग से दूसरे गाँव जा सके। इस बनिये का सामना करने की हिम्मत इनमें निश्शेष हो चुकी थी।

हठात् गाँव में आने पर उन्हें अपने घर में धुँआ उठता दिखाई दिया। उन्हें लगा कि क्या बात है? जीमण का प्रबन्ध कौन कर रहा है, यह जानने की इच्छा हुई। घर गये तो विचित्र अनुभव हुआ, मालपुओं का भोजन तैयार था, साधु महात्मा जीमने की तैयारी में थे। पच्चीस कंबल जमे हुए रखे थे। पत्नी के जेवर की पोटली रखी थी। उनके कपड़े भी थे और एक पोटली में कुछ रुपये बंधे थे जो साधुओं को दक्षिणा में देने थे। यह सब विचित्र संयोग देखकर उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा, "यह सब कौन लाया?" पत्नी यह सुनकर और भी चकित हुई। ऐसे क्या बोलते हो? तुम ही तो यह सब यहाँ रख कर नहाने की कह कर गये थे, भूल गये हो क्या? भगत्

पूराराम चकित थे क्या कहें। साधु-संतों को भोजन करा दक्षिणा दे कंबल भेंट करके विदा किया। इसके बाद जानकारी के लिए बनिए के पास गए। उसके पास से पोटली जेवर की किसने छुड़ाई, कंबल कौन लाया, रुपये किसके हैं। बनिया पागल समझ कर फटकारने लगा। अभी जब नहाने गये तब मेरी सब उधार चुकाई और सब काम स्वयं ने किये। अब, पागल जैसी बातें कर रहे हो। यह देखो बहियों में सब तुम्हारे उधार रुपये जमा कर तुमने हस्ताक्षर कर रखे है। अपने हस्ताक्षर बनिये की बही में देखकर भक्त स्तम्भित थे। सीधे घर आए कर्कशा पत्नी और कुटिल बनिये को भगवान ने उनके रुपये और दर्शन देकर भक्त की लाज बचाई। परन्तु उन्हें दर्शन नहीं हुए। उसी दिन से गमगीन हो घर में जा बैठे, बाहर निकलने में शर्म लगी। कुछ दिनों में बीमार हो देहोत्सर्ग कर दिया।

संसार में ज्ञान चराचर में व्याप्त है, किसी का अनादर नहीं करना :

ज्ञान योग के पाठ के आरम्भ में बाई ने किसी की निन्दा या तिरस्कार करना योगी और आत्मकल्याण साधक के लिए अयोग्य व अनुचित बताया। उन्होंने कहा कि अपने आपको ज्ञानी मानना और समस्त संसार को अज्ञानी मान कर उपदेश करना या तिरस्कार करना ही सब भ्रान्तियों का मूल है। ज्ञान ईश्वर रूप में चींटी से लेकर महान् ऋषियों मुनियों तक में एक सा पूर्णरूपेण व्याप्त है। उदाहरण स्वरूप बाई ने अपने यहाँ एक कुत्ते के व्यवहार की बात कही-

बाई के आश्रम में एक पालतू कुत्ता रहता था। उसको रमेश नाम से पुकारा जाता था। रमेश दरवाजे में या बाहर चबूतरे पर बैठा करता था। उसे आश्रम में आने वाले और अन्य व्यक्तियों का सामान्य ज्ञान

तो था ही पर उसके भोजन पानी व चाय आदि के लिए घर में कहाँ तक आना और कहाँ नहीं जाना, इसका भी वह ध्यान रखता था। उसको भोजन बड़े आदर से खिलाना पड़ता था। उसके लिए तामचीनी का विशेष पात्र था, जिसमें वह दूध-रोटी खाता था। जमीन पर रोटी डाल देने पर वह नहीं खाता था। इसी तरह अपमानजनक भाषा उसको सहन नहीं होती थी। एक बार उसको भोजन रखते समय जमनाबाई ने कहा दिया 'खाता हो खा अन्यथा जा कुएं में।' इतना सुनना था कि रमेश तुरन्त मुँह फेर कर चला गया और तीन दिन तक जब भी भोजन रखा जाता उसकी तरफ मुड़ कर नहीं झाँकता और भूखे मरता रहा। बाई को पता चला तब बाई ने उसे पास बुलाकर पुचकारा। बड़ी मिन्नत की और अपने पास बैठाकर अपने हाथ से भोजन कराया तब उसने भोजन किया।

एक बार चौक में पशु सुलभ वृत्ति से वह जमीन

कुचर कर मिट्टी बिखेरने लगा। इस पर गोमती बाई ने उसका कान पकड़ कर उसको एक थप्पड़ लगा दी। बस! रमेश रूठ कर आश्रम से भाग गया। पास-पडोस के कुम्हारों के घर ही रहता पर कभी मुड़ कर आश्रम की ओर झाँकता तक नहीं। तीन माह गुजर गये। कई बार उसे बुलाने का प्रयत्न किया गया पर सब व्यर्थ। तब बाई ने कारण का पता लगाने के लिए कहा "किसी ने उसे कुछ कह तो नहीं दिया" इस पर उस दिन चांटा लगाने की बात सामने आई। तब तो बाई को निश्चय हो गया, उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे स्वयं रमेश के पास गयीं। उसे बड़ी मुश्किल से बड़ी देर बाद बाई मना पायीं और अपने साथ आश्रम लायीं और अपनी सेविकाओं को उन्होंने कहा, "हे सखियों! तुमको इस रमेश पर क्रोध नहीं करना है। तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे को माथे में मार देना, पर इसको कुछ मत कहना!"

बाई ने बताया पशु भी मान, अपमान, स्नेह, दया,

ममता समझते हैं। उनके पास भोजन के समय चिड़ियाँ, गिलहरियाँ आदि दूध, चावल, सेव, रोटी चुगते हैं। किसी दिन देर हो जावे तो वे आकर बाई के हाथ पाँव पर काटने लगते हैं।

सरदारगढ़ कुंवर साहब मानसिंहजी :

'समयसार' नामक जैन ग्रंथ कुंदकुंदाचार्य प्रणीत कानजी स्वामी की गुजराती टीका युक्त आजकल पाठ करने में आता है। बाई को यह ग्रंथ अत्यन्त प्रिय एवं वेदान्त का मान्य ग्रन्थ लगता है। इसके कई पारायण मेरे द्वारा भी कराये जा चुके हैं और इसे पुनः आरम्भ किया है।

आज के स्वाध्याय के पूर्व प्रसंगतः बाई ने सरदारगढ़ ठाकुर साहब के यहाँ पधारने की चर्चा की। प्रातःकाल सरदारगढ़ छः-सात व्यक्ति जीप में आये, भोजन करके हल्दीघाटी गये। राणाप्रताप की

चार सौ वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में सरदारगढ़ से कोई चित्र लाए जो प्रदर्शनी में रखने ले गये। इन अतिथियों के अचानक आने और भोजन व्यवस्था से नियमित आयोजन की तरह सब सम्पन्नता निभ गई इस बारे में बाई ने बताया कि-

घर में सात-आठ प्राणियों के लिये तो रसोई बनती है पर प्रायः पाँच-सात व्यक्ति प्रतिदिन और आ ही जाते हैं। परमात्मा की असीम कृपा है कि जब भी कोई अतिथि अधिक आवे तो भी उसी सामग्री में कार्य सम्पन्न हो जाता है। जब कोई नहीं आता तो भी वही सामग्री घर वालों में पूरी हो जाती है। आ जाता है तो भी नया प्रबन्ध नहीं करना पड़ता। आज सात व्यक्ति आ गये तो भी सबके भोजनोपरान्त दो व्यक्तियों के लायक सामग्री बची रही। भगवान की दया न हो तो मेरी क्या हालत हो।

सरदारगढ़ के कुंवर साहब मानसिंहजी उदयपुर में भूपाल नोबल्स स्कूल व एम.बी. कॉलेज में पढ़े हैं।

छत्तीस वर्ष की आयु तक विवाह नहीं किया परन्तु किसी नारी की तरफ देखा तक नहीं। दाँता (गुजरात) दरबार की लड़की से इनका पाणिग्रहण छत्तीस वर्ष की आयु में हुआ। इनके दो पुत्र हैं। शादी के सब जलसे होते रहे पर ये स्वयं तो कमरे में बैठे रहे। राजपूत होते हुए भी इन्होंने मद्य-माँस का कभी भी स्पर्श तक नहीं किया। इन्होंने अपने हाथ से चींटी तक नहीं मारी। वेदान्त के अध्ययन में रत रहते हैं। अपनी घर-खेती से हजारों मन अनाज उपजता है पर किसी को हानि-लाभ होने पर कुछ भी नहीं कहते।

कुंदकुंदाचार्य कृत 'समयसार' ग्रंथ के पाठ के प्रसंग में बाई के उपदेश खुलासा होता और इस बीच कोई संस्मरण सुनने को भी मिलता। पिछले दो से दिनों से मैं स्वामी मुक्तानन्द कृत 'चितशक्ति विलास' नामक ग्रंथ पढ़ रहा हूँ जिसमें महात्मा के गुरु नित्यानन्द द्वारा 'शक्ति पात' से कुंडलिनी योग

साधना की उपलब्धि से मुक्तावस्था और ध्यान योग का महात्म्य वर्णित है। इनमें अपने अनुभव से उन्हें ध्यान से 'नरलोक से स्वर्गलोक एवं सिद्धलोक तक' के दर्शन हुए और चराचर में चित्शक्ति ही ब्रह्मरूप में विलसती है यह ज्ञान अनुभव हुआ बताया। बाई को यह ग्रंथ दिखाया और इसमें लिखित विषय और लोकालोक दर्शन के बारे में जिज्ञासा की इस पर बाई ने फर्माया-

ऐसी पुस्तकें नहीं पढ़ना ही ठीक है। ये भ्रम उत्पन्न करती हैं। स्वर्ग, नरक, सिद्धलोक के दर्शन अपने नहीं करने। जिन्होंने दर्शन किये वे भी लौट कर

स्वावलम्बन हेतु चरखा कातते हुए

नहीं आये और जहीं थे वहीं बैठे हैं। फिर यह भ्रम पालकर दिमाग खराब क्यों करना? सही बात तो

यह समझनी है कि करना कुछ भी नहीं है, साधन करना, योग ध्यान से सब करने का सार कुछ भी नहीं है। मुख्य बात तो यही समझना है कि ठिकाने बैठ जाना है, भटकना नहीं इसमें बात तो एक मात्र यही समझने की है कि "एक चेतन तत्व है जो आप स्वयं हैं और दूसरा है चेतन (आप) की कल्पना" जो यह सारा जड़ चराचर दिखाई देता है। चेतन नहीं तो यह सब व्यर्थ है। इसमें रुचि रखना ही राग है। रुचि तभी होती है जब जड़ संसार में कुछ सार दिखाई देवे। रुचि, राग रहेगा तो भी यह यहीं छूट जायेगा और असार लगने पर राग छूट गया तो भी यह यहीं रहेगा। इससे अपने को प्रभावित नहीं होना है। जगत् व्यवहार मात्र है उसमें तादात्म्य नहीं होना ही मुक्तावस्था है।

महाराज साहब चतुरसिंहजी ने मुझे आते समय दो चार छोटी पुस्तकें पढ़ने को दी। उनके पढ़ने से और महाराज साहब के उपदेश से मुझे तो तीसरे ही

दिन ज्ञान हो गया। कहीं भटकने की जरूरत नहीं है 'ठिकाने बैठ जाने की ही बात है' सब कल्पना तत्काल मिट गई। जगत है जैसा है, सार-असार कुछ भी नहीं। आत्मा का तीनों काल में न कुछ बिगड़ा है न कुछ सुधारना है। इसलिये साधनाक्रम ही निरर्थक हो गया। अपार शान्ति अनुभव में आ गई।

महाराज चतुरसिंह जी की योग साधना :

बागोर महाराज साहब के निस्संतान देहान्त पर महाराज सूरतसिंहजी ने अपने पुत्र चतुरसिंहजी को बागोर ठकुराणियों के आग्रह पर गोद रख दिया और उन्हें बारह दिनों तक बागोर में शोक मनाने के लिए सर पर अंगोछा बंधा कर भेज दिया।

बारहवें दिन महाराणा फतहसिंहजी ने बागोर की सम्पत्ति को मेवाड़ सरकार ने हस्तगत कर ली। अतः चतुरसिंहजी को बड़ा अपमान लगा और

खिन्न होकर वे अपने एक नौकर को साथ ले वृन्दावन चले गये और साधना मार्ग का अवलंबन करके केवल पाँच ग्रास भिक्षा पर तीन वर्ष तक निर्वाह करते रहे।

इसी दौरान तीन वर्ष तक भीख का कष्ट भुगतने के बाद उन्हें मेवाड़ से गये हुए कमल भारतीजी महात्मा मिले। उन्होंने पूछताछ की तो उन्हें बताया कि मैं मेवाड़ के महाराणा का भाई हूँ और योग साधना करने वृंदावन तीर्थ में रह रहा हूँ। कमल भारतीजी ने महाराज साहब को समझाया कि "भीख मांग कर समय मत गंवाओ। मेवाड़ में चले जाओ, वहाँ लक्ष्मणपुरा में गुमानसिंह जी के पास जाकर रहो, वह तुम्हें सही उपदेश करेंगे।"

पूज्या श्री बाई के सान्निध्य में श्री कालीदास जी एवं श्री मीठालाल जी माथुर- जिन्होंने आश्रम की अनवरत आर्थिक सेवा की

महाराज साहब लक्ष्मणपुरा-बाठेड़ा आकर गुमानसिंहजी के पास रहने लगे। योगसाधन की व्यर्थता सम्बन्धी उपदेश उन्हें समझ में नहीं आये। जब उन्होंने कहा कि "आपकी बात मुझे समझ में नहीं आती" तो गुमानसिंहजी ने कहा कि पत्थर लेकर सिर फोड़ डालो जिससे जो कुछ मल माथे में भर रखा है वह निकल जाये। इस तरह शास्त्र ज्ञान की असारता जान लेने पर महाराज साहब को 'ज्ञान' हो गया। ज्ञान सबमें समान रूप से है। यह सब को जानता है, अपने को भी और पर को भी। यही ज्ञानसत्ता

ही चिद्रूप में चराचर में व्याप्त है। उसी ज्ञान की कल्पना का स्फुरण यह माया प्रपंच जगत है।

महाराज चतुरसिंहजी ज्ञान लाभ होते ही उदयपुर हवेली में आ बैठे और समय यापन के लिए पातंजल योग सूत्र के अनुवाद और अन्य ग्रंथ की

रचना में लग गये। उनको ज्ञानोपलब्धि कराने के बाद गुमानसिंह जी देवलोक सिधार गए।

गुमानसिंह जी के एक चरवादार बलाई था जो चतुरसिंहजी को जब गुमानसिंहजी उपदेश करते तो छिपकर चुपचाप सुनता रहता था। उसे भी ज्ञान हो गया। बाई ने कहा, "मैंने उसको देखा है" लक्ष्मणपुरा में गुमानसिंहजी के परिवार वालों को उसी बलाई ने स्मरण दिलाया कि गुमानसिंहजी के ज्ञानमार्ग को अपनावें। चैनसिंहजी ने उसे पालन किया पर उनके छोटे भाई मेहताबसिंहजी ने उनसे भी अधिक सरलता से 'ज्ञान' को समझा।

अपिचेत सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्ः

आज पाठ के प्रसंग में किसी सज्जन ने प्रश्न किया कि मनुष्य को बुराई का ज्ञान होने पर भी उसमें

उसकी प्रवृत्ति क्यों होती है? इस पर बाई ने बताया कि “ज्ञान हुआ ही नहीं।” क्योंकि ज्ञान होने पर कोई भी व्यक्ति जहर नहीं खाता है।

उनके चले जाने पर बाई ने मुझे दो संस्मरण सुनाये।

1.

एक गूजर महिला सायर बाई जो बाई के यहाँ रामायण पाठ करने वाली महिलाओं में अग्रणी है, उनके बारे में बाई ने बताया कि सायर पहले बड़ी उदण्ड थी। जबसे सायर ने बाई के यहाँ आना आरम्भ किया है तब से उसके व्यवहार में आमूल चूल परिवर्तन हो गया है। उसके हृदय में कालिमा और कुटिलता नाम शेष रह गई है।

2.

बाई ने अपनी जेठानी की सद्गति का बड़ा मार्मिक वर्णन किया। नरोत्तमजी की माता बाई की जेठानी लगती थी। उनके पति नारायणजी बड़े रूखे आदमी

थे। रावतों के दरवाजे से होकर शहर में घूमकर वापस घर आ जाते। किसी से व्यवहार उन्होंने नहीं रखा। उनके चार पुत्र थे। बुढ़ापे में प्रत्येक पुत्र से दस रुपये माहवार तीन माह के लिए अपने गुजारे का लेते थे। नारायणजी की पत्नी को गहनों-कपड़ों का बड़ा शौक था। प्रातः उठ कर 10 घरों में आग लगाना, खटपट कराना उनका स्वभाव था। अपनी पुत्रवधुओं को भी उन्होंने बड़ा जलील किया था। छल-प्रपंच और खटपट में बड़ी रुचि थी।

बाई के पास एक बार वे यह जानने के लिए आई कि उनके यहाँ इतने लोग आते हैं सो क्या करते हैं। उन्हें जब पता लगा कि यह सत्संग है और जीवन सुधारने का मार्ग है, तो उन्हें कुछ रुचि हुई। उनके पति बीमार हुए और उन्हें लगने लगा कि वे मर जायेंगे। ऐसी परिस्थिति में उन्हें यह भी भान होने लगा कि वे पुत्रवधुएँ उनके पति के मरने के बाद उनकी "खाल में नमक भरेंगी" उनको यह भय ऐसा

बैठा कि वे बाई के पास आकर पूछने लगी कि 'क्या पति के पहले मर जाने का कोई उपाय भी है?' बाई ने कहा और बताया कि "माला फेरो भगवान का नाम लो।" यह सुनते ही वे प्रतिदिन बाई के पास आकर माला फेरने और जप करने लगे। उन्होंने अपने जेवर - आभूषण और सुरुचिपूर्ण कपड़े त्याग दिए। इस तरह जप करते और सादा जीवन बिताते रहने से उनकी पुत्रवधुओं में और घर भर में शान्ति का वातावरण हो गया। एक वर्ष तक वे इस तरह जप में लगे रहे। एक दिन निमोनिया होकर मर गये। उनके पति से पहले मरे। उनके पति उनके दो माह बाद मरे। बाई का उपाय बताना सार्थक हुआ, जीवन, जाते-जाते भी सुधर गया।

डॉ. कालूलालजी श्रीमाली बाई के आशीर्वादार्थ आये :

लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के प्रत्याशी उदयपुर क्षेत्र से डॉ. कालूलालजी श्रीमाली, भूतपूर्व शिक्षामंत्री भारत सरकार एवं तत्कालीन कुलपति बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पूज्या बाई का आशीर्वाद लेने पधारे। उनके पास शिवजी व तीन-चार नवयुवक एवं पाँच-छः युवतियाँ भी आयी। डॉ. श्रीमालीजी ने बाई को प्रणाम कर विजय के लिए आशीर्वाद मांगा। बाई ने उनसे पूछा आपके घर में कौन-कौन है? श्रीमाली जी निरुत्तर हो बाई के समक्ष हँसते हुए बैठे रहे- उन्होंने चुनाव में विजय की कामना की-बाई ने हँसकर कहा कि सब ठीक होगा और यह भी कहा कि मुझसे एक आदमी पुत्र मांगने आया मैंने उसे कह दिया कि जा तेरी कामना पूरी होगी। परन्तु उस आदमी के 6 पुत्रियाँ हुई और मेरे से आकर लड़ने लगा कि अब कभी भूलकर भी तुम्हारे घर नहीं आऊँगा। "यह तो सब यूँ ही है" और बाई हँस दीं- डॉ. श्रीमालीजी का लाड़-प्यार करके

उन्हें विदा किया। बाद में बाई ने मुझे बताया कि मैंने उन्हें पूछा कि आपके घर में कौन-कौन हैं-वे कहते कि स्त्री-पुत्र, धन-सम्पदा सब है तो मैं कहती कि और अब क्या चाहते हो जिसके लिये भटकना कबूल किया है? माया जाल में जीत और हार के चक्कर में लोग उलझे हुए हैं?

एक ऐसा ही आख्यान गार्गी और जनक की सभा का है। सभा में एक दिन गार्गी के दिगम्बर रूप में आने पर जनक सहित सारी सभा के आश्चर्य व टीका टिप्पणी करने पर गार्गी ने कहा कि तुम सबने चर्म चक्षुओं से चर्म को ही देखा। वस्त्रों में भी सभी ऐसे ही हैं। जिस दिन इसके प्रति निरपेक्ष दृष्टि हो जायेगी तभी आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी।

कालीदासजी भाटिया का स्वर्गवास :

16 अगस्त 1971

बाई के पास लगभग चालीस वर्ष से शिष्य होकर रहने वाले कालीदासजी वकील का सोमवार भाद्रपद कृष्णा ग्यारस रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे देहान्त हो गया, तद्नुसार 16 अगस्त सन् 1971 को ये वकालत का पेशा छोड़कर वेदान्त के स्वरूप ज्ञान साधना में प्रवृत्त हुए। अपने गृहस्थ जीवन में चालीस वर्ष पूर्व ही संन्यास लेकर बाई की शरण में आकर रहने लगे। दर्शन-उपनिषदों के अध्ययन एवं तार्किक दृष्टि से वेदान्त ज्ञान में उनकी अच्छी दक्षता थी। बाई के कई उपदेश जब इनके संशयग्रस्त चित्त में नहीं समाते तो उपनिषदादि ग्रंथों के अध्ययन से संशय छिन्न होता। बाई के अमृत वचन को गूढार्थ सरल और सुगम वाणी में समझ गये। आपने-अपने अनुभवों को 'सुजाण बावनी' नाम पुस्तिका में पदबद्ध किया। 'सुजाण बावनी' अर्थात् सूक्ष्म ज्ञान तत्व में वेदान्त आत्म ज्ञान का अच्छा विवेचन हुआ है।

प्रातः ज्योंही यह समाचार सुना तो मैं द्वारजी भाई के साथ गया, विदित हुआ कि रात्रि को कालीदासजी का देहान्त साढ़े दस बजे हुआ एवं रात्रि एक बजे उनका दाह संस्कार कर दिया गया। अधिक लोगों को बुलाने एवं कष्ट देने की कोई आवश्यकता बाई ने नहीं समझी। कालीदासजी की हालत बिगड़ती गई, कल रात्रि तक उन्हें दस्त बार-बार होते रहे। कल शाम जब मैं बाई के वहाँ जाने लगा तब भी द्वारजी भाई ने बताया कि वे वहाँ जाकर आये हैं और बाई ने उन्हें वापस छुट्टी दे दी और कहा कि आज इन्हें दस्तें अधिक लग रही हैं अतः मिलने की चेष्टा न करें।

रात्रि को दस बजे तक जब उनकी हालत गिरती गई तो उन्हें नीचे के कमरे में ले आया गया। जब तक इनके धड़कन और स्वांस की गति चलती रही बाई इनके पास बैठी रहीं। लगभग साढ़े दस पर इनका दम टूट गया तो बाई ने आसपास की उनकी

सेविकाओं व सेवक को आगे क्या करना सो समझा कर वह स्थान छोड़ दिया एवं ऊपर पधार कर रसोई के कमरे में निर्लिप्त भाव से जा बैठे। देवकिशनजी ने द्वारजी को सूचना दी और उन्होंने आकर दाह संस्कार की व्यवस्था की। बाई ने चालीस रुपये देवकिशनजी को दाह क्रिया के लिये दे रखे थे।

प्रातः 17 अगस्त 1971 मंगलवार वत्स द्वादशी को जब मैं द्वारजी के साथ बाई के यहाँ आठ बजे गया तब पृथ्वीसिंहजी बैठे हुए थे। बाई जंगल घूमने पधारी हुई थीं। लगभग पन्द्रह मिनिट बाद वे पधारीं व नीचे चौक में बिराजीं। हम सभी नीचे आये। हमें आया देख बाई ने मुझे संबोधित कर हँसते हुए कहा मास्टर साहब! कालीदासजी तो गये। फिर सबको सांत्वना देते हुए कहा- मिट्टी के बर्तन तो एक दिन फूटेंगे ही। इसका कोई विचार नहीं करना। मेरे सामने ही कालीदासजी चले गये सो अच्छा हुआ उनको मेरे बाद कोई भी सम्हाल कर नहीं रख सकता। फिर

कालीदासजी के गुणों की चर्चा करते हुए कहा, दो-तीन दिन पेलां तो वणारी वाणी में वेदान्त रो धारा प्रवाह उच्चारण सुण ने म्हने घणो आनन्द वियो। वणी बगत म्हनै आपरी और द्वारजी री याद आई के आप भी सुणता तो बड़ों आनन्द वेतो । रामायण-उपनिषद् भागवत कई प्रसंग श्लोकबद्ध आनन्दपूर्वक घणी देर चर्चा रा विषय रिया-आसपास वाळा सबने बड़ो आनन्द रियो ।

कल प्रातः, जब मैंने उनको पानी पीने के लिये कहा तो वे कहने लगे बाई आज तो मुझे निर्जला एकादशी करनी है। मैंने उनसे पूछा कि तुमने सारी उम्र कभी भी व्रत-उपवास नहीं किया, यहाँ तक कि एक समय भूखे भी नहीं रहे हो आज यह नई बात करने की क्या ठानी है। पानी पीलो जी घबरायेगा। उन्होंने उत्तर दिया आज मेरे निर्जला एकादशी है। बीच में चाय के लिये पूछा तो कहा- बाई आप तो भूल जाते हो, मैंने कहा न कि आज मेरे व्रत है। आज

कुछ भी नहीं लेना है। इस तरह अंतिम समय तक उन्हें एकादशी का चेत रहा और पानी नहीं पिया - ओम, राम आदि का उच्चारण करते रहे।

यह बड़ी अजीब संगति रही कि ठीक आज से चार वर्ष पूर्व ही वत्स द्वादशी के दिन ही बाई के शिष्य नाथूलालजी का देहान्त हुआ। द्वारजी ने बताया कि नाथूलालजी बीमार सामान्य हुए थे। बाई के परम भक्त थे। बाई पुष्कर विराजती थीं। वत्स द्वादशी के दिन उन्होंने अपने पुत्र-पुत्रियों को तथा अपनी पत्नी को भी नाथूवास भेज दिया और कहा कि वे ठीक हैं ओर उनको ठीक देखकर ही पत्नी भी अपने पीहर नाथूवास (नाथद्वारा से लगा हुआ गाँव) गयीं।

इधर संध्या समय बाई का चित्र सामने रखकर नाथूलालजी पछेवड़ी ओढ़कर सो गये। बाई के ध्यान में समा गये। घर वालों ने जब वापस आकर उन्हें सोया हुआ पाया तो जगाया नहीं। परन्तु जब

भोजन के लिए जगाया तो वे निश्चल थे और सबको विदित हुआ कि वे स्वर्गवासी हो चुके। शाम को 5 बजे बाद द्वारजी के साथ में व नरोत्तम नारायणजी भी बाई के यहाँ गये उस समय उनके आसपास भक्त महिलायें भजन गा रही थीं। "गुरांसा री आनन्दी मूरती"। हम भीतर गये चौक में बैठ गये, जब भजन पूरा हुआ "श्रीगुरुदेव यही विनती मेरी भवसागर पार लगा देना" गाकर महिलायें विसर्जित हुई। बाई हमारे बीच पधारीं। प्रसन्नचित्त से मृदु वाणी में सबको कहा- "अच्छा हुआ, जग जंजाल छूट गया, मिट्टी के बर्तन फूट कर मिट्टी में ही मिलते है।" कालीदासजी के सद्गुणों की सामान्य चर्चा हुई। हँसी बीच घासीरामजी तार मिलने से उदयपुर से सीधे बाई के पास आये। भीतर आते ही मुँह छोड़ दिया (रोने लगे)। बाई ने हँस कर कहा, "अब रोते हैं, देखो-मास्टर साहब मैंने इनको कल रहने को कहा और आज रोते हैं। रोने की कोई बात नहीं है।"

घासीरामजी को समझाया “मिट्टी का बर्तन तो पड़ना है जो फूट कर मिट्टी में मिल गया। कालीदासजी मेंरे सामने चले गये सो सुखी हुए।” “कालीदासजी मारे सामने ही गया ज्यो सुखी विया” इस तरह समझाते रहे। घासीरामजी का रोना सुन ऊपर तीन-चार व्यक्ति बैठे थे वे भी नीचे आ गये। कुछ देर चर्चा के बाद बाई ने पूछा कितनी बजी- छः बजे के आसपास का समय आया था। बाई ने कहा अब उठो और सब अपने-अपने घर गये। कालीदासजी के बीमार अधिक रहने से बाई ने पंद्रह-बीस दिनों से रात्रि का सत्संग चर्चा बंद रख दी थी, अब एक दिन में पुनः आरम्भ करने को कहा है। रामनाम का उच्चारण करना भी भाग्य बिना नहीं होता :

इस प्रसंग में बाई ने एक चर्चा सुनाई-एक व्यक्ति बीमारी से तंग आकर हाय-हाय, अरे बाप आदि चिल्लाता रहता था। इस पर उसके पुत्र ने कहा हाय

हाय मत करो, राम-राम कहो परन्तु वह बीमार व्यक्ति हाय बाप, हाय बाप ही करता रहा इस पर उसके पुत्र ने पुनः याद दिलाया कि राम-राम कहो तो बीमार वृद्ध कहने लगा यह नहीं कहा जाता है- "यह मेरे द्वारा नहीं कहा जाता" पुत्र ने इस आशा से कि "क्या नहीं कहा जाता है" पूछने पर तो राम नाम उच्चारण हो ही जाएगा, पूछा कि "क्या नहीं कह सकते?" इस पर वृद्ध बोला, "तुम कह रहे हो वह नहीं कहा जा सकता है।" "तू जो नाम कह रहा है वह नहीं कहा जाता" अर्थात् रामनाम उच्चारण नहीं होता। इस संकेत से भी अन्त समय में नामोच्चार नहीं कर पाया।

महाराज साहब चतुरसिंहजी :

महाराज साहब की पत्नी का स्वर्गवास हो गया। एक पुत्री छोड़ कर मरीं। सूरतसिंह जी (इनके पिता)

तथा महाराणा साहब फतहसिंहजी व अन्य भाइयों ने उनसे पुनर्विवाह के लिए आग्रह किया पर महाराज चतुरसिंहजी नहीं माने । भगवत् चिन्तन में ही जीवन लगा दिया।

कालीदासजी :

बाई ने बताया कि कालीदासजी पिछले चालीस बरसों से उनके पास रह रहे थे और इस अवधि में एक रात भी वे अन्यत्र नहीं रहे थे। बाई के प्रति उनका स्नेह इतना था कि जैसे दूध पीते बालक का अपनी माता से होता है। अपने अंतिम दिनों में बीमार होने पर भी उन्होंने कभी शरीर की बीमारी या संसार की चर्चा नहीं की । सदैव अपने अध्यात्मज्ञान से जाग्रत बने रहे। उनके जीवाणु इतने सूक्ष्म हो गये थे कि उन्हें परोक्ष में भी संसार की अनुभूति हो जाती थी। बाई ने इस प्रसंग में बताया

कि इसके विपरीत किसी-किसी मनुष्य के वातावरण से ही आसपास विक्षोभ हो जाता है।

महाराज चतुरसिंहजी का पुस्तकालय :

आज मानपद संग्रह के पाठ के अवसर पर बाई ने द्वारजी भाई के उस ग्रंथ के मांगने के विचार पर कहा कि "क्यों कचरा इकट्ठा करते हो रे? महाराज साहब चतुरसिंहजी के पास तीन बैलगाड़ी भरे उससे भी अधिक पुस्तकों का संग्रह है, जो आज मिट्टी में मिल रहा है। महाराणा फतहसिंहजी के स्वर्गवासी होने के केवल ग्यारह मास पूर्व ही महाराज साहब का स्वर्गवास हुआ था। उनके पीछे उनकी पुस्तकों के संग्रह को रद्दी के कबाड़े के साथ पटक दिया उनके भाई के पौत्र आजकल महाराज कर्णसिंहजी हैं। एक बार कालीदासजी को महाराज साहब के हस्तलिखित साहित्य की आवश्यकता हुई।

कर्णसिंहजी ने उन्हें वह गोदाम बताया जहाँ मोटरों के फटे पुराने टायर व अन्य टूटा-फूटा सामान पड़ा था जिनके नीचे महाराज चतुरसिंहजी के संग्रहणीय ग्रंथ कूड़े का ढेर हो रहे थे।

सन्त सुदामाजी उदयपुर :

महाराज साहब चतुरसिंहजी रचित "परमार्थ विचार" ग्रंथ के 185 पृष्ठ पर जड़ भरत का प्रसंग आज के सत्संग में आने पर बाई ने स्वानुभव से ऐसे ही जड़ भरत रूप एक महात्मा का संस्मरण सुनाया-

भीण्डर के पास नारायणपुरा के एक औदीच्य ब्राह्मण बड़े ही संत एवं वीतरागी पुरुष हो चुके हैं। नाम तो उनका देवा था परन्तु उनकी कृशता कारण लोग उन्हें सुदामाजी के नाम से जानते थे। अपने परिवार और घरबार को छोड़कर वे अपने खेत में एक खड्डा खोद कर उसमें बैठ गये। उनके माता-

पिता, पत्नी, बाल-बच्चों ने बड़ा आग्रह किया पर खड्डे में से नहीं उठे। लोगों ने भी कहा, "देवा! उठो न बैलों को पानी पिलाना है।" तो इसी वाक्य को जड़ भरत की तरह उन्होंने भी दोहरा दिया "देवा! उठो न बैलों को पानी पिलाना है।" मगर उठे नहीं।

उनके इस प्रकार सनकी व्यवहार से तंग आकर परिवार वालों ने उन्हें घर से निकाल दिया और गाँव से भी हटा दिया। वही महात्मा फिर उदयपुर मंडी में फूलचन्दजी वकील के यहाँ आकर रहे। यहीं से लोग उन्हें सुदामा नाम से जानने लगे। फूलचन्दजी वकील के मकान में एक लम्बे कमरे में वे लगभग चालीस वर्ष तक रहे परन्तु उस कमरे में कभी कचरा नहीं निकाला।

इन महात्मा की दिनचर्या और अलौकिक चमत्कार से कई लोग परिचित थे। महाराज साहब लक्ष्मणसिंहजी करजाली, चतुरसिंहजी आदि तो प्रतिदिन उनके दर्शन किये बिना नहीं रहते थे।

महात्माजी दुबले-पतले फटे हाल रहते एवं मंडी में बनियों से भिक्षा मांग कर निर्वाह करते परन्तु उनका नियम यह था कि कभी तीन जगह से चौथी जगह नहीं मांगा। इस तरह दो-चार मुट्ठी धान गेहूँ, उड़द, मूँग, चणा आदि जो कुछ मिल जाता वही उनके लिये पर्याप्त था। भोजन पकाने के साधन आदि का भी ढंग निराला था। भिक्षा में प्राप्त अन्न को बिना साफ किये स्वयं चक्की में पीसते तथा बिना छाने ही एक फूटे ढीबरे में पानी से सान कर रोठ बना लेते। शाक-भाजी, मिरच-मसाले की कभी आवश्यकता नहीं रही। पकाने के लिए एक कनस्तर का टुकड़ा मुड़ा कर बनाया हुआ तथा दर्जियों की दुकान से फेंकी कपड़ों की कतरन ईंधन का काम देती। उस पर उपरोक्त रोठ चेप देते और उसे कुछ आंच देकर सिका हुआ मान लेते। स्पष्ट है कि इस प्रकार के अपर्याप्त साधन से रोटी सिकना संभव ही नहीं था परन्तु उनको यह सब ठीक था। उसी अधपके

टिक्कड़ में से वे कभी महाराज लक्ष्मणसिंहजी, कुंवर जगतसिंहजी, कुंवर अभयसिंहजी, बावजी चतुरसिंहजी आदि को प्रसाद के रूप में एक कौर देते थे। चतुरसिंहजी तो अन्न नहीं खाते थे, उनके सिवाय सभी लोग वैसा प्रसाद खा जाते थे। चतुरसिंहजी अपना प्रसाद पीछे बैठे नौकरों में पहुँचा देते थे।

संत सुदामाजी फूलचन्दजी वकील के परिवार में घुलमिल गये थे। प्रायः ये नारी समाज में ही अपना समय निकालते थे। उनके घरेलू काम-धंधों (पीसने-पोवने) में हाथों-हाथ मदद देते। औरतों के माथा-चोटी कर देते, जुएं निकालते। बाजार में कूंजड़ियों-मालनियों आदि पर उनकी कृपा दृष्टि रहती थी, उनके सिर पर हाथ फिराते आते-जाते थे। भोजन जैसा कि ऊपर बता चुके हैं, स्वयं का पकाया हुआ ही करते थे। किसी के यहाँ का मांग कर नहीं खाते, न दिया हुआ लेते।

जैसा भोजन बनाने का साधन था वैसा ही ओढ़ने-बिछाने का। लोगों की फेंकी हुई कतरन का संग्रह एक कनस्तर में कर रखते। सोने के बाद शरीर पर बिखेर लेते। यही ओढ़ना हो गया जो स्पष्ट ही अपर्याप्त था। कोई मेहमान आते तो बिछाने के लिये ये चिथड़े उनकी तरफ फेंक कर बिछा कर बैठने को कहते । कमरा पक्का था जिसके बीचों-बीच टीन का चूल्हानुमा पतरा एवं चारों ओर वर्षों का कचरा पड़ा रहता था।

इन महात्मा के कुछ चमत्कार बड़े आश्चर्यजनक होने से स्मरणीय हैं।

1. फूलजी वकील को अनधिकृत रूप से चित्तौड़ी रुपये की अन्नियाँ बनाने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया व जेल में रखा गया। घर में कुहराम मच गया। उनकी औरत-बच्चे रोने लगे। महात्मा ने कहा, "ऐ महिला, क्यों रोती है? एक काम करो, मुझे ऊपरवाले मकान में बन्द कर दो

और मेरे ऊपर चिथड़े डाल कर सुला दो। फिर किंवाड़ बन्द कर दो, फिर ताला लगा तुम्हारे घर के बिस्तर लाकर मुझे ओढ़ा दो और फिर मेरे ऊपर बैठ जाओ। कोई भी आकर पूछे तो कुछ भी बोलना नहीं। केवल इशारे से उत्तर दे देना।" तीन दिन तक महात्मा उसी मेड़ी में सोये रहे और फूलजी को तीसरे दिन बिना किसी सजा के मुक्ति मिल गयी। फिर वे कमरे के बाहर निकले।

2. उनके आसपास की औरतें उनके बहुत मुँह लग गई थीं। उन्हें 'देवा बा' कह कर संबोधन करती थी। जब वर्षा नहीं होती तो सब औरतें उनसे पुकार करती। "देवाजी, वर्षा नहीं हो रही है कुछ उपाय करो न।" इस पर वह कहते "थाणे घरां रा गोदड़ा लावो बिछाय दो म्हनै वणा पर सुलाय दो ने मारे ऊपर भी गोदड़ा ओढ़ाय दो ने पछे था सब मारे माथे बैठ जाओ।" औरतों का विश्वास और आस्था अटूट थी उनके बताये अनुसार करके जब वे उनके ऊपर

बैठती तो एक दो घड़ी में ही जोर की वर्षा आ जाती। ऐसा कई बार हुआ।

3. बहुधा नारियों के साथ वे बड़ी विचित्र ठिठोली करते थे। एक बार सूर्य ग्रहण पर उन्होंने सभी औरतों को पुष्करजी स्नान कराने ले जाने का निश्चय किया। जब सब पुष्करजी पहुँची तो उन्होंने सभी को पानी के पास की सीढ़ी पर एक साथ खड़ा किया और कहा "ऐ महिलाओं! अगर तुममें से कोई भी नहायेगी, तो तुम्हारे पति मर जायेंगे।" यह कह कर बिना स्नान कराये ही सबको वापस ले आये।

4. बाई के प्रति उनका विशेष अनुराग था। एक बार बाई के साथ कुछ भक्तगण तथा उदयपुर की अलारखी बाई तवायफ और हैदरबक्षजी आदि साथ थे और वे महात्मा के वहाँ मिलने गये। उसी दिन महाराज चतुरसिंहजी के भक्त नारायण छीपा ने भी महाराज साहब के मार्फत बाई को अपने घर भोजन पर निमंत्रण दिया। उनकी यह भावना थी कि

बाई को निमंत्रण करेंगे तो सुदामाजी भी भोजन पर पधारेंगे अन्यथा नहीं। अस्तु जब सुदामाजी को निमंत्रण किया तो उन्होंने बताया कि वे शुद्ध दूध में पकाया भोजन ही कर सकते हैं और पकाने वाला पवित्र ब्राह्मण हो। अस्तु बाणनाथजी के पुजारी एक आमेटा ब्राह्मण से नारायणजी छीपा ने दूध की रसोई अलग कमरे में चौका-चूल्हा करके बनवाई तथा बाई के लिये अपने रसोई घर में। भोजन के समय सुदामाजी ने सभी लोगों की रसोई भी अपने रसोई वाले स्थान पर ही मँगवा दी। अपना भोजन अलग लीपे-पोते स्थान पर अलग परोसवाया व दूसरे लोगों को उनके लिये पकाया भोजन अलग-अलग पंक्ति में परोसा। सुदामाजी ने सभी से कहा, "अरोगो भगवान"। सभी जीमने लगे, वे बैठे रहे तब बाई ने कहा, "आप भी जीमो" तो कहने लगे, "मैं यही विचार कर रहा था कि दो पत्तल क्यों झूठी की जाय।" यों कह कर उन्होंने अपनी पत्तल का भोजन

बाई की पत्तल पर रख दिया। बाई ने जब कहा कि बावजी म्हूं तो अतरो भोजन नी कर सकूँगा। तो आप स्वयं बाई की पातल में ही साथ बैठकर भोजन करने लगे। यह देख नारायण छीपा चकित रह गया एवं रसोई बनाने वाले आमेटा महाराज बड़े खिन्न होकर रवाना हुए कि उन्होंने व्यर्थ ही इतनी तकलीफ कर अलग भोजन पकाया।

बाई के साथ भोजन करने का एक और भी विचित्र प्रसंग हुआ। बाई उदयपुर अपने भक्त समूह के साथ सुदामाजी के यहाँ मिलने पधारीं। उसी दिन सुदामाजी के घर से व गाँव के कुछ प्रतिष्ठित लोग उन्हें मनाकर वापस नारायणपुर ले जाने आये। उन्होंने कहा कि अब वे जाति का दंड भी माफ करा देंगे, हेमाद्री आदि भी आसान कर देंगे और वे वापस अपने गाँव चल चलें। सुदामाजी ने कहा "मैं भी गांव आना चाहता था पर मेरे आज मेहमान बहुत आ गये है। आप लोग इनके भोजन का क्या प्रबन्ध

करोगे?" हँसकर लोगों ने चूरमा -बाटी का जीमण करके मेहमानों को भोजन कराना तय किया। तदुपरान्त सुदामाजी को उनके गाँव नारायणपुर ले जायेंगे। फूलचन्दजी वकील वाले कमरे पर ही चूरमा-बाटी का प्रबंध हुआ। सभी मेहमानों को चूरमा-बाटी पत्तलों पर परोसी, सुदामाजी ने कहा "अरोगो"। सभी ने जीमना आरम्भ किया। सुदामाजी अपनी पत्तल का सामान बाई की पत्तल पर डाल कर खाने लगे तथा बाई की साड़ी के पल्ले से सिर ढके रहे तथा साड़ी की ओट और कनखियों से उनको लेने आये गाँव के बुजुर्ग लोगों को देखते रहे जो ये सब विचित्र व्यवहार देखते ही बिना आगे कुछ बोले वापस चले गए।

बाई के साथ सुदामाजी ने एक बार बड़ी बुरी बिताई। सुदामाजी ने उन्हें भोजन का निमंत्रण दिया। उनके साथ कालीदासजी भी थे। गिराई (सी. आई. डी.) के हाकिम मानसिंहजी राणावत, कूंचोली ने

उसी दिन बाई को भोजन का निमंत्रण दिया जिन्हें सुदामाजी के निमंत्रण के कारण उन्हें मना करना पड़ा। जब बाई व कालीदासजी ग्यारह बजे के आसपास सुदामाजी के यहाँ भोजन करने पधारे तो वे निश्चित बैठे थे। जब भोजन के निमंत्रण की याद दिलाई तो कहने लगे "मेरे आटे का प्रबन्ध नहीं हुआ" लाचार हो बाई ने हँसकर वहाँ से प्रस्थान किया तथा तांगा कर मानसिंहजी की हवेली पहुँच भोजन के लिए कहा-

ऐसे ही एक बार बाई जब मंडी में इनसे मिले तो वे सड़क पर ही बात करने लगे। उनको किसी बनिये ने गुड़ की डली दी थी जो हाथ में थी, बात-बात में पीछे से कुत्ते ने आकर गुड़ चाट लिया तो उन्होंने हाथ ऊँचा कर कुत्ते को कहा "ये क्या करते हो अन्नदाता ये गुड़ तो मेरे लिये ही है।"- बाई ने कहा कि "अब आप यह गुड़ कुत्ते को ही डाल दो।" तो कहने लगे "यह तो मेरे को मिला है। मैं और आप

दोनों ही इसे खा सकेंगे" यह कह कर आधा गुड़ बाई को दे दिया और खाने को कहा बाई ने जब कहा कि प्रसाद दूसरे भक्तों को भी दो तो कहने लगे "दूसरे खाये और पागल हो जावे तो?" इस तरह बाई और सुदामाजी को कुत्ते का झूठा गुड़ खाना पड़ा।

5. एक बार बाई उदयपुर से आते समय सुदामाजी से मंडी में मिलने गये। सुदामाजी ने कहा, "आपको भोजन भी नहीं कराया" तो बाई ने कहा "और कब करवायेंगे" तो कहने लगे बावजी आज भिक्षा में मूँग मिले हैं सो थोड़ो से भोजन के लिये लेते जाओ। बाई ने वे एक मुट्ठी मूँग ले लिये।

नाथद्वारा आने पर अपनी भक्त महिलाओं में उन मूँगों के दो-दो, चार-चार दाने सभी औरतों को महात्मा के प्रसाद के रूप में बाँटे। बहुत-सी तो उन्हें खा गई परन्तु एक गूजर की पत्नी जिसके घर में छः

प्राणी थे और छः-छः साल तक जिनको नये कपड़े मोअस्सर नहीं थे तथा खाने के लाले पड़ रहे थे, उस महिला ने उन दानों को पल्ले बाँध लिया और निसांस डालकर पुकार उठी, "हे सुदामाजी, हमारे दुःख से कब उबारोगे।" उसने बाई को कहा-वाह ये दाने तो मैं नहीं खाऊंगी, इन्हें तो पूजा में रखूँगी। थोड़ी देर में उस महिला का पुत्र उसे बुलाने आया और कहने लगा पिताजी को गुसाईजी की ड्योढी की नौकरी लग गई है। महिला को यह प्रत्यक्ष चमत्कार लगा। वे दाने उसने पूजा में रखे । उसका भाग्य फिरा और उसी दिन से प्रभु कृपा से वे सम्पन्न होते गये। आज उसके पुत्र-पौत्र अच्छे खाते-पीते सुखी हैं। जब उस महिला के पलटे दिन को उसके एक सम्बन्धी ने देखा तो कारण पूछा। उसने सरलता से कह दिया बाई ने मुझे मूँग के दाणे दिये उनका प्रताप है। यह सुनकर वह भी बाई के चरणों में आकर गिड़गिड़ाया मूँग के दाणे मांगे। जो कुछ बचे

हुए थे बाई ने उसे देकर सीख दी तो उसके भी भाग्य फिर गये। आज उसके परिवार वाले भी सुखी हैं।

6. सुदामाजी अन्तिम दिनों में बद्रीनाथ यात्रा पर गये, वहाँ पेचिश हो गई। लौटते समय मावली से उन्होंने बाई को उदयपुर बुलवाया। बाई को वे बड़ा भाई मानते थे। बाई जब उदयपुर उनसे मिलने पधारीं तो हालत बड़ी नाज़ुक देख कर दाड़िमके छिलकों का रस पीने को कहा पर वे नहीं माने। उत्तर में सुदामाजी ने कहा- "बाई अपने दुश्मन मरेंगे-अपन तो समायेंगे। अर्थात् आत्मा का परमात्मा में विलय होगा। समा जायेंगे।"

महात्मा की हालत गिरती देख बावजी अभयसिंहजी ने मोटर की व्यवस्था की, उन्हें नारायणपुरे पहुँचवा दिया। जहाँ "बूंद समानी समंद में" और अलौकिक वार्ता रह गई।

राजराणा हरिसिंहजी ताणां द्वारा लिखित

संस्मरण :

मुझे पूज्या बाई के दर्शनों का सौभाग्य उनके जीवन के अंतिम वर्ष में ही प्राप्त हुआ जबकि मैं वर्तमान महाराणा साहब की सेवा में रह रहा था। जब-जब महाराणा साहब बाई के दर्शनार्थ नाथद्वारा पधारते मैं भी उनके साथ होता था। गेहूँ के मोटे आटे की बनी हुई घृत एवं अजवायन युक्त मोटी रोटी, मिर्च की सादी चटनी और कढ़ी-ये सब बाई स्वयं बनाती थी। उसका अमृतोपम स्वाद अवर्णनीय है। केवल अंतिम यात्रा, बाई के ब्रह्मलीन होने के चार-पाँच दिन पहले, के समय भोजन बाई स्वयं नहीं बना सकी थीं, जिसका पता हमें भोजन के स्वाद से ही लग गया था। इस अल्प समय में दो संस्मरण जो मेरी स्मृति में सर्वाधिक अंकित हो गए थे उनको मैं यहाँ प्रस्तुत करता हूँ।

एक बार महाराज साहब कर्णसिंहजी करजाली

भी महाराणा साहब के साथ थे। बाई ने तब स्वर्गीय योगीवर्य महाराज साहब चतुरसिंहजी के साथ हुए अपने प्रथम साक्षात्कार का वर्णन किया जो उन्हीं के शब्दों में मेरी स्मृति के अनुसार इस प्रकार है- शोभालालजी शास्त्री ने मुझसे कहा कि करजाली महाराज साहब के भाई अच्छे भक्त और योगी हैं। उनके पास चलो। मैं उदयपुर गई पर महाराज साहब ने मिलने का समय रात को आठ बजे का दिया, जिससे मन आगे-पीछे हुआ। मैंने सोचा कि राज परिवार में नशा करना स्वाभाविक है, शायद उन्होंने भी पी रखी हो। शोभालालजी ने कहा कि वे तो इससे मीलों दूर रहते हैं। मैं साथ चलूँगा। तब मैं उनके साथ चली गई। महाराज साहब एक छोटी-सी कोटरी में बिराजे हुऐ थे। तेल के दीपक की मध्यम रोशनी हो रही थी। अधिक प्रकाश नहीं था। महाराज साहब ने मेरे से बहुत-सी बातें पूछीं और फिर शोभालालजी से कहा कि अभी तक ज्ञान की कमी

है। महाराज साहब की बात से मैं चिन्ता में पड़ गई। उन्होंने मुझे कृपा करके कुछ पुस्तकें और हस्तलिखित कागज दिये। दो दिन तक उनको पढ़ने और उन पर विचार करने से मेरे सब बात समझ में आ गई। महाराज साहब से नहीं मिलती और उनकी कृपा मुझ पर नहीं होती तो मैं भी पाखंडी दिखावे वाली साध्वी हो जाती और इधर-उधर डोलती फिरती। इसीलिये मैं महाराज साहब से कभी भी उऋण नहीं हो सकती हूँ। उस परिवार का मनुष्य तो क्या इस घर का कुत्ता भी मेरे लिये बहुत ही महंगा मेहमान है।

(2)

बाई के ब्रह्मलीन होने के चार दिन पहले तारीख 30 अप्रैल, 1979 के दिन महाराणा साहब उनके दर्शनार्थ पधारे। मैं भी साथ था। बाई का स्वास्थ्य गिरा हुआ था। शरीर में बहुत दर्द था। जो कभी-कभी हलकी कराह के रूप में अभिव्यक्त हो जाता

था। फिर भी वे महाराणा साहब के लिए बैठे रहे। आग्रह करने पर भी नहीं लेटे । महाराणा साहब ने निवेदन किया कि मैं तीन-चार दिन के बाद और आऊँगा । बाई बोले तो नहीं पर हाथ से इंगित कर आने के लिए मना किया। फिर हाथ को पहले हृदय के पास समेट कर फिर आकाश की तरफ उठा कर यह स्पष्ट संकेत कर दिया कि मैं जा रही हूँ। उपस्थित लोग सब इस संकेत को समझ गए। उदयपुर लौटते हुए महाराणा साहब ने रास्ते में फर्माया कि अब बाई अधिक रहने वाले नहीं हैं। दूसरे दिन महाराणा साहब ने मुझे रुपये देकर फिर नाथद्वारा भेजा। घासीरामजी और जोशीजी मौजूद थे। मेरे पहुँचने पर बाई ने नेत्र खोल कर अपने हाथ लम्बे कर प्रणाम करते हुए मेरे कपोल का स्पर्श किया। मैं कृतार्थ हो गया। वह स्पर्श आज भी मुझे प्रत्यक्ष सा अनुभव होता है। तारीख तीन मई के दिन बाई ब्रह्मलीन हो गईं।

(3)

जिस दिन बाई ब्रह्मलीन होने वाली थीं एक दैवी घटना घटी। कैलाशपुरी से नाथद्वारा की ओर जाते हुए कैलाशपुरी से थोड़ा सा आगे दोनों ओर ऊँचे पहाड़ हैं जिन पर बड़ी-बड़ी चट्टानें लटकती हुई दिखाई देती हैं। बाई के ब्रह्मलीन होने से कुछ ही घण्टे पहले अनेक चट्टानें पहाड़ से गिरना प्रारम्भ हुई और राष्ट्रीय मार्ग संख्या आठ को बिल्कुल अवरुद्ध कर दिया। मई का प्रारम्भ था। बरसात नहीं हुई थी। इतनी चट्टानें गिरने का कोई कारण प्रतीत नहीं हो रहा था। इसे लोगों ने आने वाली घटना का देवी संकेत ही माना। मेरी तो यह दृढ़ मान्यता है कि मेवाड़ भूमि की सन्त परम्परा की इस महान विभूति के उस दिन शरीर छोड़ने का यह स्पष्ट पूर्व संकेत था क्योंकि उसी दिन पूज्या बाई ने कुछ ही घंटों बाद महाप्रस्थान किया था।

(4)

स्व. महाराज शिवदानसिंहजी शिवरती बाई के अनन्य भक्त थे। उन्होंने बाई के बिराजने के लिए जमीन खरीद कर वर्तमान मकान "अलख आश्रम" का निर्माण कराया था, जिसमें अन्यों का भी सहयोग प्राप्त किया था। उनकी मृत्यु का बाई को पूर्व संकेत हो गया था और वे अचानक एक कार मंगा कर महाराज साहब से मिलने के लिए चल पड़ी थीं। उनके उदयपुर में शिवरती के बंगले पर पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि कुछ ही क्षणों पूर्व महाराज साहब ने देह त्याग किया था। यह घटना पूज्या बाई और उनके अनन्य भक्तों के बीच की आन्तरिक एकता (टेलीपैथी) की द्योतक है।

अमृत वचन

पूजनीया महात्मा भूरीबाई वचनामृत

अलख आश्रम से पूर्व प्रकाशित पुस्तिका 'अमृत वचन' में पूज्या बाई के द्वारा समय-समय पर कहे गये मूल मेवाड़ी वचनों को संकलनकर्ता श्री श्याम सुन्दर जोशी द्वारा पदबद्ध किया गया है। यहाँ पर पूज्या बाई के इन वचनों का हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। उद्धरण सूचक चिन्हों में मूल वचन है। शेष भाग -पूर्ति, प्रश्न या टिप्पणी के रूप में है। छन्द-

भूमिका

कुछ परिचित सज्जनों के यह आग्रह करने पर कि आप भी एक पुस्तक लिखें परम पूज्या महात्मा भूरीबाई ने भी एक पुस्तक की रचना की । इस

पुस्तक में ऊपर के सफेद पन्ने पर केवल 'राम' लिखा हुआ है और अन्दर चार पन्ने काले स्याह रंगे हुए हैं। कुछ लोगों के पास इसकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं।

'पुस्तक-परिचय' शीर्षक से इसी उपरोक्त अद्भुत पुस्तक के सम्बन्ध में आत्मा - अनात्मा के विभाग-पूर्वक कुछ दोहे हैं।

'विषय-परिचय' शीर्षक से पूज्या बाई के वचनों को दोहों में ढाला गया हैं। वे बहुत कम बोलती हैं किन्तु कभी-कभी प्रश्न करने पर अथवा प्रसंगवश उनके मुख से जो गंभीर और पते की बातें जिस सरल सहज एवं सशक्त ढंग से कही जाती हैं यह जिन्होंने सुना है वह जानते ही हैं।

भाषा की अलंकारिता आदि की अपेक्षा इन

दोहों में यही प्रयत्न किया गया है कि जहाँ तक हो सके महात्मा के मूल शब्दों और वाक्यों का ही समावेश हो जिससे आशय के साथ ही उक्तियों की चोट भी सुरक्षित रह सके।

श्री लक्ष्मीलाल जी जोशी एवं श्री घासीराम जी

जो भाग "" इस प्रकार उद्धरण-सूचक चिह्नों के भीतर आया है वह महात्मा के ही शब्द हैं अथवा यथासंभव उन्हीं का आशय व्यक्त करते हैं। अन्य भाग कहीं प्रश्न-सूचक है और कहीं संदर्भ एवं छन्द-पूर्ति के लिए अपनी समझ के अनुसार जोड़ा हुआ है।

अधिकतर प्रत्येक दोहा स्वतंत्र है, जहाँ संयुक्त है वहाँ पार्श्व में चिह्नित कर दिये गये हैं। कुछ दोहों के

संदर्भ में अन्तर्कथाएं है जिन्हें विस्तार भय से नहीं दिया गया है किन्तु मूल अभिप्राय दोहे में स्पष्ट हो जाता है। परिशिष्ट में कुछ मिलते-जुलते उपनिषद्-वाक्य उद्धरित किये हैं।

श्री लक्ष्मीलालजी जोशी, श्री घासीरामजी व अन्य

'पुस्तककार-परिचय' शीर्षक से 'राम' नाम वाली पुस्तक के रचयिता पूज्या परमात्मस्वरूप बाई की स्तुति में कुछ दोहे बनाये हैं :-

'जिमि निज बल अनुरूप ते, माछी उड़इ अकास'

(श्यामसुन्दर)

संकलनकर्ता

अलख आश्रम में श्रद्धावनत श्रीजी अरविन्द सिंहजी मेवाड़ एवं डॉ. हरिसिंह चूंडावत

पुस्तक-परिचय

एक छोटी सी पुस्तिका बनाई, उसमें संसार और जीवन का सार लिखा कि केवल 'राम' ही प्रकाश है और सब अंधकार ही अंधकार ।।1।।

तत्ववेत्ता लोग इसको पढ़-पढ़ कर, तरह-तरह के अर्थ लगाकर थक गये, वे भूल गये कि यह पुस्तिका स्वयं बता रही है कि हम कल्पना कर रहे है ।। 2 ।।

ऊपर ही सब-कुछ लिख दिया, बाकी कहने को कुछ भी नहीं बचा। कालिख में ही सब ग्रथों का सार समा गया है।।3।।

अगर लिखा हुआ हो तो पढ़ लो देखा हुआ हो

तो पहचान लो, अन्यथा स्वयं के अन्दर विश्राम का बिछौना बिछाकर आराम करो।।4।।

गुटका की भी गुटका कर दी, रामायण का लघु सार कर दिया। इस अलौकिक पुस्तिका को देख कर तुलसी भी बलिहारी कहते है ।।5 ।।

दूसरी पुस्तकें वृत्ति को बाहर ले जाती है, परन्तु इसको समझने लगेंगे तो वृत्तियों को अंतर्मुख होना ही होगा ।।6 ।।

यह क्षेपक करने योग्य नहीं है, न ही इसका अर्थ लगा सकेंगे, यह तो जैसी है वैसी ही रहेगी। अतः इसको निष्चिन्त होकर पढ़नी चाहिये।।7 ।।

कालिमा कुछ भी नहीं कहेगी, क्योंकि जड़ वस्तु अपने-आपमें सत्ताहीन होती है। अतः इसको इसी के अन्दर डालकर 'राम' में लीन रहो ।।8।।

काली रात्रि की जो कालिमा हैं, उसमें अनेक अर्थों की कल्पना की जा सकती है परन्तु स्वयं प्रकाशित तो केवल राम के नाम की रेखा ही है ।।9

॥

काले में मत भटकना, उजाले की शरण में आ जाओ। काला तो मुँह फेर लेगा परन्तु प्रकाश तो गले लगायेगा ॥10॥

प्रकाश और अंधकार के अतिरिक्त संसार में और कोई वस्तु नहीं है। वास्तव में प्रकाश को नहीं समझ पाना ही अंधकार है ॥11॥

पुस्तककार-परिचय

हे बाई, आपकी वाणी तो सहज, सत्य और निर्दोष होती है, परन्तु मैंने इसको तुकबन्दी में बाँध कर दोषयुक्त कर दिया है। ॥1॥

बुद्धिमान एवं गुणीजन पाठक तो इसमें से हंस की तरह गुणों को ही ग्रहण करेंगे तथा मुझे अनुभवहीन जान कर मेरे सभी दोष समुदाय को क्षमा करेंगे ॥ 2 ॥

ऐसे पुस्तककार की महिमा का क्या कहना? जिनकी पद-रज को भी वाणी और विचार छू तक नहीं सकते ।।3।।

या तो वह बोलता ही नहीं है और बोले तो एक ही बात बोलता है कि हे बावरे, उसको ठीक से समझ कर हृदय के बन्धन खोल ।।4।।

न कर्म, न भक्ति, न उपासना, न यज्ञ, न भोग और नहीं योग। यह इस आत्म तत्त्व का उपदेश संसार के बन्धन को समाप्त कर देता है ।।5।।

जिस प्रकार प्रकाश की किरण युगों-युगों के अन्धकार को तत्क्षण भर देती हैं, उसी प्रकार ये वचनामृत जन्म-जन्मों के अविचार को मिटा देते है।।6।।

तीनों लोकों और तीनों कालों में ऐसा कोई निष्ठावान नहीं, जिसे आत्मस्वरूप के अलावा दूसरे किसी का भान हो ।।7।।

जहाँ-जहाँ भी दृष्टि पड़ती है वहाँ-वहाँ मोक्ष

कमल खिल जाते है और हृदय में चरण कमलों की जगमग ज्योति जग जाती हैं ।। 8 ।।

उनके चरण नखों के पावन प्रकाश की प्रभा से घनघोर अंधकार तुरन्त हर लिया जाता है तथा उनकी कृपा दृष्टि का एक अंश भी क्षण भर में अभिभूत कर देता है ।।9 ।।

वैराग्य की भस्म लग कर, हृदय में ज्ञानाग्नि की धूणी के साथ प्रेम की गंगा जग में बहती रहे तो यही शिव रूप हो गया।।10 ।।

बाई ने तो योग-बोध के धनुष-बाण से रावणरूपी अहंकार का नाश करके अपने दशरथ तुल्य तन आंगन में चेतना रूपी राम को विराजमान कर दिया है।।11।।

बाई भगवान् श्रीकृष्ण की तरह प्रतिदिन, संविताकार होकर अनेक भक्तों के साथ में गोपियों की तरह महारास की लीला करते रहते है।।12 ।।

बाई तो सदैव अविगत, अलख, अनन्त, अगम,

असंग, अखण्ड, व्यापक, परिपूर्ण, परम प्रत्यग और आत्मानंद होकर विराजते है ।।13।।

पर दुख कातर, कृशकाय बाई की बुद्धि सूर्य समान तेजोमय, हृदय आकाश तुल्य विशाल तथा नेत्रों से अनवरत स्नेह सरिता प्रवाहित होती रहती है।।14।।

जो पाना था पा लिया, जो करना था कर लिया, जिसको जानना था जान लिया और सब कुछ परमानन्द में विलीन कर दिया। ।।15 ।।

अर्द्धोन्मिलित नेत्रों का सतत् यही उपदेश रहा कि भीतर ढूँढने से मिलेगा, बाहर को मत देखा करो ।।16।।

परमपूज्या बाई प्रतिक्षण स्वस्थचित्त होकर शांतभाव से निरकुंश, निश्चल अचलानंद

विभु आत्मानंद में निमग्न रहते है।।17।।

बाई के अमृत वचन सभी दृष्टियों से विनिर्मुक्त व संयुक्त रहकर सगुणागुण, सत्यासत्य, अनअनुगत

एवं व्यावृत्तयुक्त भावों से ओत प्रोत है।।18 ।।

बाई की प्रत्येक क्रिया, उपदेश व वचन वेदों के अनुरूप है। ब्रह्म-स्वरूप जाग्रति में रहना तथा तप और सत्वगुण उनमें मूर्तिमान होकर रहते हैं।।19।।

हे बाई, आपकी महिमा का कौन बखान कर सकता है वेदों की पहुँच आप तक नहीं है फिर मैं बेचारा तो आपका अनजान अबोध बालक हूँ।।20 ।।

वचनामृत : प्रथम भाग

“बना ही नहीं तो बिगडे क्या?”

“सब कुछ 'मानों भाई' की तरह ही है।”

“जैसे बच्चे मिट्टी की गुड़िया बनाकर उससे तरह-तरह की बातें करते हैं” ॥1 ॥

“बीस और चार व्यक्ति बैठ कर गप्पें लगा रहे हों और एक दूर बैठ कर सुनता मात्र हो” उस केवल सुनने वाले पर दृष्टि रखो ॥2 ॥

“प्रकृति और पुरुष का सम्बन्ध सीता और राम के सम्बन्ध की तरह मन-वचन-कर्म से परे, अज्ञेय एवं अकथनीय है” ॥3॥

“वन में ग्राम वधुओं के पूछने पर कि ये (राम) आपके क्या लगते हैं, सीताजी केवल संकेत से ही समझाती हैं” ॥ 4 ॥"

श्रीरामचरितमानस

“धूप को पकड़ने का प्रयत्न करें तो हाथ में क्या आता है?” वैसे ही प्रकृति पुरुष का नित्य स्वभाव है, अतः भिन्न रूप से ग्राह्य नहीं है ।।5।।

“पुराणों में भगवान की मुस्कान उनकी माया तथा हास्य उनकी करुणा कही गई है” ।।6 ।।

“जब तक जीवन में घोर संकट नहीं आता व्यक्ति भगवान के सम्मुख नहीं होता” ।।7।।

“जो दुनिया के वास्ते नालायक होता है वही भगवान के लायक होता है” ।।8।।

भगवान विष्णु की नाभि में से कमल पर ब्रह्मा प्रगट होते हैं। “मन ही ब्रह्मा है जो चारों ओर से सुख ढूँढ-ढूँढकर आखिर थक-हारकर अपने उद्गम में ही विश्राम पाता है ।।9।।

“जब तक देखे और सुने हुए में रुचि है तब तक कठिन है कि संसार-क्लेश कट सके” ।।10।।

“यह जो कुछ भी दिखाई देता है वह है वास्तव में ही नहीं, ऐसा ही श्रुति भी कहती है और संतगण

भी यही बताते हैं” ॥11॥

“वह एक ही है, वैसा कोई दूसरा नहीं है।” अनुपम, अद्वय और अकेला है, ऐसा बाई सदा समझाते रहे है॥12॥

“लोग परमात्मा को भी किसी पदार्थ की तरह देखना चाहते हैं।” यह असंभव है क्योंकि वह तो अत्यंत निकट है॥13॥

अपने आधे छंद में महाराज चतुर सिंहजी बावजी (जो महात्मा भूरी बाई के गुरु थे) ने सब कुछ कह दिया है कि **जाता है वह मन है और जानता है वह आत्मा है** ॥14॥

“सब के भीतर समझ के रूप में हम स्वयं उपस्थित है, इस समझ की समझ को जानने से ही हम जन्म-मरण से छूटते है” ॥15॥

“समझ में तो संसार आता है-अप्पन नहीं आते।” “अपने तक किसी की पहुँच नहीं है” ॥16॥

“अपने त्रिकाल में कोई नहीं पहुँच सकता है।”

एक अलौकिक स्वरूप देखकर तुरन्त निहाल हो जाओ॥17 ॥

"समझ में तेरी-मेरी का भेद कहाँ है? क्या आते-जाते अपनी-अपनी समझ की अलग-अलग गाँठ बाँध कर साथ ले जाते हैं? ॥18 ॥

कर्म-बंधन शरीरों के साथ है। अपने को इनसे न लाभ है न हानि। जप, तप, तीर्थ व्रतादि कोई भी क्रिया अपने तक नहीं पहुँचती ॥19॥

प्रकृति शरीरों को बनाते समय ही होने वाली बातें उनमें रख देती है॥20 ॥

फिर इन शरीरों से वे ही काम होने हैं, दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता, अतः अपने सिर का बोझ उतारकर निश्चिन्त हो जावो ॥21॥

"यह करना है- यह करना है कि कुछ भी नहीं करना है। यह सोचना है-यह सोचना है कि कुछ भी नहीं सोचना है"॥22 ॥

प्रश्न- जीवन का उद्देश्य दुःख निवृत्ति है ?

उत्तर- “जैसे भूख का दुःख है तो भोजन कर लिया, प्यास है, पानी पी लिया, इत्यादि। जब कुछ करना ही नहीं है तो कौन-सी दुःख निवृत्ति ?” ।। 23 ।।

“यदि कुछ किये बिना नहीं रह सकते हो तो शुभ कर्म करो, यही साधना का मर्म है" ।।24 ।।

“भजन करना शरीर के लिए अच्छा है। अपने को तो इससे कोई हानि-लाभ नहीं” ।।25 ।।

“दूसरे को मारने के लिए कई प्रकार के शस्त्र चाहिये परन्तु खुद के मारने के लिए तो एक सूई ही पर्याप्त है” ।।26।।

मन कहता है वैसा भले ही कर लो किन्तु अहंकार मत पालो। यदि हमारे अपराध को हम स्वीकार नहीं करते है तो शासन भी दंडित नहीं करता ।। 27 ।।

“ठेकेदार मत बनो, क्योंकि ठेकेदार हमेशा चिन्ताओं में उलझा रहता है। मजदूरों की मस्ती ही

न्यारी है" ॥28॥

"दैनिक मजदूर बनकर रहो। इसमें हानि-लाभ की कोई चिन्ता नहीं है। दिन अस्त मजदूर मस्त" ॥29॥

लोकलाज का कारण अहंकार है। यह अहंकार ही सभी पाप कर्मों की खान है ॥30॥

प्रश्न- पाप क्या है? कृपा करके इसकी व्याख्या करो?

उत्तर- "अपने को ईश्वर से अलग समझना ही पाप है" ॥31॥

"किसी के कर्म मत देखो। शरीरों के कर्म तो जैसे शरीर हैं वैसे ही हैं"॥32॥

"भयंकर से भयंकर अथवा अचंभे की बात हो जाए तो भी उसमें सत्यता नहीं देखनी। इससे हर्ष-शोक नहीं होता" ॥33॥

"संसार ही झूठ है और शरीर भी झूठ हैं, तब उनके कर्म सत्य कैसे हो सकते हैं। जैसे स्वप्न की बात कोरी कल्पना है, वैसे ही यह जाग्रत भी झूठ ही

है” ||34||

तिल भर भी हिला नहीं। अपने स्थान पर अडिग रहते, बिना पैरों व वाहन के देश-विदेश में भ्रमण कर लिया है ||35||

प्रश्न- यदि सभी कल्पित है तो क्या रामायण भी कल्पित है?

उत्तर- “हाँ, स्वयं तुलसीदासजी रामायण को भगवान शंकर के मन से निकली हुई बताते हैं” ||36||

श्रीरामचरित मानस

“श्री राम के यह पूछने पर कि मनुष्यों की मुक्ति के सम्बन्ध में आपने जो कहा वह तो ठीक है किन्तु इन पशु-पक्षी-वृक्ष आदि की मुक्ति किस प्रकार होती है? भगवान वशिष्ठ ने कहा कि उनमें कल्पना नहीं है, इसलिए उनको मुक्त ही जानो”||37||

श्रीयोगवाशिष्ठ

जो कुछ विस्तार दिखाई दे रहा है, वह सब सत्य

अपने में से ही निकल रहा है। एक बार इस बात का पैदा देख लेना चाहिये।।38।।

शास्त्र अपने बनाये हुए हैं, अपने को शास्त्रों ने नहीं बनाया। यह पुराणों आदि में वर्णित है कि हममें विशिष्ट शक्ति सन्निधि है ।।39।।

हम तो बिल्कुल हिले-डुले नहीं है, पूर्ण रूप से अचल व अंकप है। मोक्ष, बंधन एवं फंद ये सब कार्यकलाप तो प्रकृति के ही है ।।40।।

प्रकृति ही एक ओर से बाँध कर दूसरी ओर से छोड़ती भी है। हम प्राणी तो अपने स्थान पर अडिग हैं ।।41।।

बंधन एवं मोक्ष की कल्पना सब प्रकृति के भीतर ही होती है। कोई बधा ही नहीं तो फिर छूटेगा क्या ।।42।।

सबके भीतर सदा एकमात्र प्रकृति काम कर रही है, इसलिये मन का साथी मन ही है।।43।।

“है तो दोनों लोहा ही किन्तु तलवार का काम

तलवार से होता है और सूई का काम सूई से" ।।44।।

ये केलू, ईंटे, घड़े आदि मिट्टी ही के विविध आकारों में निर्मित हुए हैं। अतः मिट्टी की महत्ता को मत भूलो ।।45।।

"जड़ और चेतन में ग्रन्थि पड़ ही नहीं सकती, तब छूटे क्या? स्वयं तुलसीदासजी उसे 'मूषा' कह रहे है" ।।46।।

"त्रिकाल में भी जब ग्रहण ही नहीं हुआ तो तुम त्यागते क्या हो? जिसको त्यागना चाहते हो वह तो तुमसे अलग ही है" ।।47।।

रामायण में वर्णित लक्ष्मण-गुह संवाद में आधे छंद में ही सब सार स्पष्ट कर दिया है कि **मोह में परमार्थ नहीं है।** इस पर ठीक से विचारो ।।48 ।।

"लोग कहते है कुछ समय के लए सत्संग करने चले तो क्या अन्य समय असत् का संग करते हैं ।।49।।

मेवाड़ में 'मृत्यु हो जाने' के लिये कितना

सारगर्भित कथन है कि 'समा गये' । वस्तुतः इन दो शब्दों में ही सब लय-योग आदि को पहचान लो ॥50॥

"जब भीतर कोई कोलाहल नहीं हो तब ढूँढो। अप्पन अकेले ही मिलते हैं" ॥51॥

'चुप' साधन है और साध्य भी । इस चुप के भीतर चुप समा जाता है। वस्तुतः चुप समझे हुए की समझ है, और यों समझे हुवे चुप हो जाते है ॥52॥

संत ठाकुर राम सिंहजी केलवा

"अपने होने से किसी को इन्कार नहीं है। अँधेरी कोठरी के अन्दर बन्द होकर ओढ़कर सो जाय तो भी 'मैं हूँ' तो रहता ही है" ॥53॥

मन है ही नहीं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि कुछ भी नहीं है। केवल भगवान् हैं और है उनका स्वभाव, जैसे सूरज में उजाला" ॥54॥

'आप' एक अविच्छिन्न है, मन कदापि है ही नहीं। अपने से भिन्न कुछ भी निश्चय नहीं करना है

||55||

"वृत्ति को मिटानी नहीं है। बिना वृत्ति के शरीर ही नहीं रहता। वृत्ति को जानना है" ||56 ||

"वृत्ति है ही नहीं, यह होती तो कहीं इकट्ठी होती और हाथ आ ही जाती" ||57|| 'भन्न भन्न' भीतर जान पड़ता है इसी से अप्पन जानने वाले सिद्ध होते हैं ||58||

अगर वृत्ति नहीं होती तो हमें हमारा पता ही नहीं लगता। यह रहस्य बाई बताते है ||59||

प्रश्नः "बाई! आपकी बातें तो बहुत ऊँची और गूढ़ है। उनको नापा नहीं जा सकता।"

उत्तरः जिन्होंने ऊँचाई को जाना है, उनमे आप ही सबसे ऊपर है ||60||

दशरथ-पुत्र राम पहचान व समझ से परे है। वे तो आदि ब्रह्म हैं, अज है, अगुण और स्वयं प्रकाशित है ||61||

श्रीरामचरित मानस

"कर्म मत करो, ठहर जाओ"

"थक कर बैठ जाओ"

तथा "सदा सावधान रहो" यही बाई का उपदेश है।।62।।

"कहीं खोया नहीं है, वह है जहाँ का तहाँ ही है, किन्तु समझ उल्टी हो गई इसलिए ढूँढ़ते फिरते हैं"।163।।

उल्टी बुद्धि में सीधी बात समझ में नहीं आती जिस तरह एक उल्टे रखे हुए बर्तन पर दूसरा बर्तन सीधा रखने से नहीं टिकेगा ।।64।।

"उल्टे-उल्टे तो चाहे जितने रखते जाओ। पर वे किस काम के? उल्टे बर्तन में कोई वस्तु रखी नहीं जा सकती" ।।65।।

"वैसे ही समझ सीधी हुए बिना सही बात समझ में नहीं आती, भूल नहीं सुधरती। यह बात उक्त दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है" ।।66।।

"यदि कोई खुद ही खुद को ढूँढता फिरे, पूछता

फिरे तो वह पागल कहलाता है। खुद को खुद भूल ही कैसे सकता है जो ढूँढना पड़े ।।67।।

"कोई ब्राह्मण सोचे कि इतने जप-तप करूँ तब ब्राह्मण होऊ-यह उसकी कितनी बड़ी भूल है । ब्राह्मण तो है ही और ब्राह्मण होने की सोचता है" ।।68।।

जैसे पर्वत स्वयं पत्थरों से बना हुआ होते हुए भी पत्थर को ढूँढता फिरता हो । मैं पत्थर का ही हूँ ऐसा नहीं देखता ।।69 ।।

अपने से भिन्न को 'ढूँढ़ना' छोड़ दो। यही साधन सूत्र है ।।70।।

"संसार को मृग-जल की उपमा दी जाती है। तब इसमे कोई डूब ही कैसे सकता है कि तारने के लिये उपदेश करते हैं? ।।71।।

"नाना प्रकार से कोई उपदेश भले ही करें। किन्तु अपने अनुभव कहने में कोई समर्थ नहीं है" ।।72।।

अनुभव कहने में नहीं आ सकता, चाहे कितनी

ही व्याख्या करो। फिर भी कहे बिना कोई नहीं रहा है ॥73॥

इस आधी पंक्ति में ही सारी बात आ गयी है कि **दीन-भाव को त्याग कर अपने सच्चे स्वरूप को देखो।** ॥74॥

श्रीविचारसागर

यह दिमाग की कमजोरी ही बुरी है जिसको श्रीगीताजी में 'क्लैव्य' कहा है। इस सब दुःखों के मूल को त्यागकर निज स्वरूप को पहचानो ॥75॥

"अपने विचारों में हीनता नहीं आने देनी। जो बनता है बिगड़ता है-वह अप्पन नहीं हैं ॥76॥

वस्तुतः "अप्पन तो हैं ही और यो अपना कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है तथा कोई बना बिगाड़ सकता भी नहीं" ॥77॥

"कोई भी किसी का भला नहीं कर सकता, क्योंकि बुरा हुआ ही नहीं; तो भला क्या करे?" ॥78॥

"सिर्फ बहम हो गया है और बहम ही मिटाना है। किन्तु इसको दूसरा कोई नहीं मिटा सकता। जिसका है वो ही मिटाये तो मिटता है" ||79||

प्रायः देखा जाता है कि शारीरिक कमजोरी के कारण गाय-भैंस एक दफा बैठ जाने पर अपने-आप खड़ी नहीं हो पातीं। तब यदि आठ-दस आदमी भी यदि सहारा देकर उन्हें खड़ा करना चाहे तो तब तक उनको कोई खड़ा नहीं कर सकता जब तक वे पशु खुद अपने पैरों पर खड़ी होने की कोशिश नहीं करते ||80||

"ज्ञानी वही है जिसे कहीं भी अज्ञान नहीं दीखता तथा धार्मिक वही है जिसको कहीं भी पाप नहीं दीखता" ||81||

बाई का कथन है कि "यदि हाड़-चाम के एक शरीर को के लोग महात्मा कहते है तो फिर अन्य शरीरधारी क्या हैं?"||82||

"स्वयं परब्रह्म जब हंस के रूप में ब्रह्मा तथा

सनकादि के सम्मुख आये तब सनकादि ने पूछा कि आप कौन है? हंस ने पुनः पूछा आत्मदृष्टि से अथवा भौतिक दृष्टि से? यह सुनते ही सनकादि का संशय दूर हो गया"॥83॥

श्रीभागवत

""कीका बा डांगी एक अनपढ़ निर्धन कृषक, किन्तु पहुँचे हुए महात्मा थे जिनमें श्रीचतुरसिंहजी बावजी का अत्यंत पूज्य भाव था। उन्होंने अपने एक दोहे में कहा है "कीके कपिल गुमान कह्यौ"। बावजी चतुरसिंहजी की सत्शास्त्रों में अत्यधिक रुचि थी। कीका बा उनसे कहते है कि 'पुस्तकों में कुछ नहीं है। मैं अधिक कुछ नहीं जानता। यह बताओ कि भीतर से वाणी को बाहर कौन ढकेलता है?'॥84॥

कीका की किताब में अक्षर नहीं है, यह बताओ कि चिड़िया को टहनी टहनी पर कौन फुदकाता है ॥85॥

“एक बार कीका बा बीमार थे इसलिये रात में उनके खेत की रखवाली करने को बावजी चतुरसिंहजी स्वेच्छा से उनके साथ मचान पर बैठे। कीका बा ने उन्हें समझाया कि आधी रात में सुअर आते हैं। उनकी खड़खड़ाहट पर ध्यान लगाये रखना। बाबजी का ऐसा ध्यान लगा कि उन्हें कुछ भी भान नहीं रहा” ॥86॥

पढ़-पढ़ कर पंडित हो गये तथा सब शास्त्र जान लिये किन्तु खुद को नहीं जाना तो उससे अधिक अनजान भी कौन है? ॥87॥

बाई ने सार रूप में बताया कि मनुष्य-जन्म पाकर, करना कुछ भी नहीं है, केवल अपने को जानना ही है ॥88॥

संसार में कही भी सार जैसी बात नहीं दीखनी चाहिये। जब तक सार दीखता है तब तक जड़ विचार बना हुआ जानो ॥89 ॥

"थोड़ी भी संसार की जड़ रह जाती है तो वृक्ष की ही तरह संसार पुनः फैल जाता है"।।90।।

ऐसा कुछ उपाय करो कि संसार में फिर नहीं आना पड़े। अपने भीतर की भीड़ मिटाकर सहजता में समाकर रहो ।।91।।

संसार ब्रह्म है कि भ्रम? अपने को इस उलझन से कोई लेना-देना नहीं है। गुरु के इसी उपदेश को हृदयंगम करो ।।92 ।।

"यदि मेरे हैं तो सभी मेरे हैं और यदि मेरा नहीं है तो कोई भी मेरा नहीं है" ।।93।।

"एक जगह हनुमानजी श्रीराम से कहते हैं कि व्यावहारिक दृष्टि से आप मेरे स्वामी हैं, आस्तिक दृष्टि से परमेश्वर हैं किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से मेरे आत्म-स्वरूप ही हैं" ।।94।।

श्रीअध्यात्म रामायण

"संसार झूठा है, इसमें कोई फँसे कैसे? कोई फँस ही नहीं सकता, न कोई फँसा ही है ।।95 ।।

बिल्कुल बहम मत रखो कि संसार में कोई फँसा हैं अथवा फँस सकता है। केवल आँख खोलकर परमार्थ के रास्ते पर चलते रहो ।।96।।

आवागमन मिटाकर ध्रुव की तरह अविचल हो जाओ और यह याद रखो कि मैं उस देश का मुर्दा हूँ जहाँ जन्म-मरण कुछ भी नहीं है ।।97।।

-मान पद्य संग्रह

वचनामृत : द्वितीय भाग

स्वयं का कुआँ खोद कर पानी की पहचान कर लो। फिर दूसरों के कुओं का भी वैसा ही पानी जानो ।।98।।

"पशु-पक्षी आदि भी संकेत द्वारा स्पष्ट परिचय देते हैं कि उनको भी पूरा होश है तथा अपेन हित अनहित का ज्ञान है" उसी प्रकार सूर्य का प्रकाशरूपी ज्ञान तत्त्व उदित है, उसको पहचानो ।।99।।

भान, ज्ञान, होश, समझ, आत्माराम, स्वयं, खुद, आप, अप्पन आदि एक ही स्व-चैतन्य तत्त्व के भिन्न-भिन्न नाम हैं। सभी महापुरुष एक ही बात कहते हैं ।।100।।

"ज्ञान-विशेष जैसे घट-ज्ञान, पट-ज्ञान आदि में उनके विषयों से विशेषता है किन्तु इन विशेष-ज्ञानों

के मध्य में इनमें अनुस्यूत एवं फिर भी अभंग, सामान्य-ज्ञान है-वह निरंतर समान और एक रस हैं"।।101।।

श्रीत्रिपुरा रहस्य

"आटे में नमक भी मिलता नहीं है। खाते समय उसका स्वाद अलग से जान पड़ता है।" तब इस चैतन्य की जगमगाहट से भला कौन अपरिचित रह सकता है? "ज्ञाता अलग ही है।" ।।102।।

घट है, पट है, इस प्रकार सबमें ज्ञान है तथा वह सर्वान्तर है, अप्रत्यक्ष रुप से सभी में प्रकट है, ऐसा जानो ।।103।।

"जब एक वस्तु से दूसरी मिल नहीं सकती" (समय सार) "तब भला घास में हाथी कैसे छिप सकता है?" (बुल्ले शाह) आत्मा और अनात्मा के धर्म इतने विभिन्न और विलक्षण हैं कि उनका मेल असंभव है ।।104।।

"सूर्य का प्रकाश सभी वस्तुओं पर समान रूप से

पड़ता है किन्तु जल, दर्पण आदि में उसका प्रतिबिम्ब बनता है दीवाल आदि पर नहीं"।।105।।

आत्म चेतन का प्रकाश सभी में समान रूप से है। जब शुद्ध बुद्धि प्रतिफलित होती है तब अविद्या का नाश हो जाता है।।106।।

गुरु एवं ईश्वर की दया तो धन, पुत्रादि देते हैं, परन्तु उनकी करुणा तो उन जैसा ही बना देती है।।107।।

जितना अधिक कुटुम्ब होता है उतना ही अधिक मन भी बनता है। संगदोष से जो बच सके ऐसा कोई भी दिखाई नहीं देता ।।108।।

पार्वतीजी स्वयं भगवान शंकर की अर्धाङ्गिनी, गरुड़-स्वयं भगवान विष्णु का वाहन, नारद मुनि, महर्षि विश्वामित्र आदि को भी मोह हो गया था। गति अति विचित्र और अगम है ।।109 ।।

अहंकार अत्यंत सूक्ष्म रूप धारण करके 'मैं ज्ञानी हूँ' ऐसा विचार उत्पन्न कर देता है और फिर मोह

का वृक्ष खड़ा करके जन्म-मरण रूपी संसार पैदा कर देता है।।110।।

"इसको (संसार को) रोटी कपड़े की पूर्ति हो जितना ही समझो। अधिक समझने की कोशिश मत करो" ।।111।।

कभी भूलकर भी अपने को कुछ भी बनना नहीं है। बनते ही ग्रह आदि सभी सुख-दुःख लागू हो जाते हैं ।।112।।

या तो मैं अथवा मेरा ईश्वर ही, ऐसी दृढ़ लगन के बिना भवसागर पार पाना असंभव है।।113।।

अपनी जिज्ञासा ही स्वयं उत्तर बन जायेगी जैसे प्रचण्ड अग्नि समस्त विकारों को भस्म कर देती है ।।114।।

तुम और तुम्हारी कल्पना इससे परे कुछ भी नहीं है, यही समस्त आर्ष ग्रन्थों का निचोड है ।।115।।

यह बात दूसरा कौन समझा सकता है कि 'तुम कौन हो?' यह प्रश्न तो तुम अपने आप से ही पूछो

||116||

उक्ति-यदि आप इतनी माला प्रतिदिन फेरें तो ईश्वर का दर्शन हो जायेगा। उत्तर-"माला आप कहते हैं तो फेर लूँगी किन्तु ईश्वर-दर्शन नहीं चाहिए" ||117||

नवधाभक्ति (श्रवण, स्मरण, कीर्तन, चरणसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन) करके क्यों विलम्ब किया जब यही कहा है कि:-

मम दरसन फल परम अनूपा।

जीव पाय निज सहज सरुपा ।।

शबरी प्रसंग, श्रीरामचरित मानस देखा और सुना हुआ सब छोड़ दो। सर्व साधनों में ही परम त्याग ही सिरमौर साधन है।।119।।

देखे और सुने हुए को छोड़कर विचार करो। किन्तु फिर विचार कैसा ? शेष स्वरूप तो अपार है।।120।।

न तो दिन है, न रात ही। इसी भाँति महीना व वर्ष भी नहीं है। वस्तुतः ऐसा कुछ भी नहीं है। निष्कर्ष यही है कि व्यर्थ में अपना समय नष्ट मत करना ।।121।।

कोई पाँच तत्व कहते हैं, कोई पच्चीस, कोई तीन बताते हैं, कोई तेरह। यह सब मात्र अनुमान हैं। "तुम इनको बार-बार गिनते क्यों हो?" ।।122 ।।

"सभी शास्त्र तो मस्तिष्क ज्वर (सन्निपात) जैसी असाधारण दशा में निर्मित हुए हैं। वस्तुतः दूसरे को देखे बिना कौन उपदेश सुना सकता है"।।।23।।

"तपता नहीं है वही तप है, जपता नहीं है वही जप है। बोलता नहीं है वही सत्य है, जो बोलता है वह गप्प है" ।।124।।

रंगलालजी

सम्प्रदाय, मत, शास्त्र, गुरु आदि सब गुप्त रहस्यों का ढिंढोरा पीटते रहते हैं। इनमें नहीं पड़ना। ये ऐसे खोखले समुद्र हैं जिनमे महंगे मोतीरूपी उपदेश नहीं

अपितु निरर्थक शंख-कौड़ी ही मिलेंगे ।।125।।

"ऐसा भी कहा करते हैं कि अभी तुम अधिकारी नहीं हो, पात्रता प्राप्त करने पर बतायेंगे - यह सब वैसे ही है कि एक बाप ने तिजोरी में पत्थर भर दिये, फिर बेटे से कह दिया कि इसको बड़ा होकर ही खोलना" ।।126।।

बाप-दादा तो हाथी-घोड़ों को सवारी के मजे लेते रहे किन्तु मुझे तो गधा भी नसीब नहीं है।।127।।

"बही-खातों की रोकड़ में हजारों रुपये लिखे हुए होते हैं पर उनको झाड़ो तो एक भी पैसा निकल कर नहीं गिरता" ।।128।।

वाचक ज्ञानोपदेश तो नक्शे की पानीरहित नदियों की भाँति सारहीन ही होते हैं ।।129।।

स्वामी शरणानंदजी

प्रश्न: हे माँ! ईश्वर के दर्शन किस प्रकार होंगे?

उत्तरः चलो अप्पन दोनो जहाँ परमात्मा हो वहीं चले चलें ।।30।।

प्रश्नः हे मातेश्वरी। इस भव-जाल से मुक्ति कैसे मिले?

उत्तरः चलो अप्पन दोनों वहाँ चले चलें जहाँ संसार का अस्तित्व ही न हो ।।131।।

चाहे गृहस्थ के यहाँ जाओ अथवा पहुँचे हुए संत के यहाँ सर्वत्र प्रकृति एवं धर्मयुक्त क्रिया ही देखने को मिलेगी ।।132।।

संसार के समस्त कर्मों से हार मान लेनी चाहिये। वस्तुतः यह सब हलचल केवल थकाने वाला विचार पैदा करने हेतु ही बनी है ।।133।।

एक भजन

हे माँ! ऐसा आशीर्वाद दो कि मेरा भ्रम मिट जावे।

जब भ्रम को भ्रम जान लिया है तब फिर भ्रम कहाँ रहा ।।134।।

वाद्ययंत्र बजाने वाले के पास मधुर राग पैदा करने वाला वाद्ययंत्र हैं नहीं, उसके पास तो मृतक पशु के सींग का वाद्य है जिससे ऐसा ही बेसुरा सुर उत्पन्न होगा ।।135।।

श्रीशुकदेवजी ने श्रीभागवत कथा सुनायी। उसको हजारों श्रोताओं ने सुना किन्तु सम्यक् ज्ञान तो केवल एक राजा परीक्षित को ही हुआ क्योंकि उसी के सम्मुख भारी संकट था ।।136।।

कथा के अंत में शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से पूछा कि श्राप तुझको लगा कि शरीर को? उसने कहा शरीर को इसी प्रकार फिर कहा कि साँप तुझे डसेगा कि शरीर को उत्तर था शरीर को। इसी क्षण तन और चेतन को अलग किया और सहज ही विदेह हो गया ।।37।।

श्रीभागवत

संसार की सभी वस्तुयें सापेक्ष है। उनका विशेष उपयोग करके फिर अलग रख दो तथा स्वयं को

असंग और अलिप्त रखो ॥138॥

"दीनता को धारण करके कभी भी पाप कबूल मत कर (अर्थात् मैं पापी हूँ ऐसी भावना न कर)। राज्य भी अपराध स्वीकार कर लेने वाले को दण्ड देता ही है" ॥139॥

"कोई भी हमेशा कामी या क्रोधी नहीं रहता। व्यर्थ की बुद्धियाँ भर रखी हैं। आप तो इनसे दूर है बहुत दूर ॥140॥

"अरे भाई, छोटी सी बात है पर लम्बा चौड़ा विस्तार हो गया। वस्तुतः आत्म-अज्ञान से ही इतना सब पसारा हुआ है ॥41॥

एक दफा अष्टावक्रजी ने राजा खट्बांग को युद्ध में जाने से पहले कह दिया कि तू नहीं मरेगा। उसी समय उसने यह निश्चय कर लिया तथा तुरन्त अभय पद प्राप्त कर लिया॥142॥

कहावत है कि-"ब्राह्मण के पेट में पड़कर हिल नहीं सकता। ऐसा दृढ़ निश्चय ही कल्याणस्वरूप है

||143||

"मालिन केवल शाक लेकर बैठी है-मिर्च मसाला नहीं है। इसको वैसे ही खालो चाहे सुस्वाद न लगे" ||144||

"चुपचाप होकर एक जगह बैठ जाओ।" इसके अतिरिक्त कहने-करने को और कोई बात नहीं है ||45||

हानि-लाभ, दुःख-सुख, शत्रु-मित्र, भय-कंप, स्तब्ध-सम, स्थिर-हितकर इन सब स्थितियों से मुक्त होकर एक वृक्ष जैसा संतत्व ग्रहण कर लो |||46 ||

भूल हो गई है, उसको निकाल लो तथा सार और असार तत्त्व को समझ लो । यह भी जान लो कि सबसे पीछे तुम ही अपने को पाओगे और तुम्हारे इस आधार का कोई आधार नहीं होगा ||147||

ये सब कौवे तो हो-हो कर मिटते रहते हैं। परन्तु मैं तो कल्पांत में भी जहाँ का तहाँ ही हूँ।|48 ||

श्रीकाग भुशुण्डि

"देखा और सुना हुआ मैं नहीं हूँ, इसको पक्का समझ लो। यह तो कोई बहुरूपिया है, मैं नहीं हूँ, इसको पहचान लो" ।।।49।।

सीताजी हनुमानजी से कहती है कि हे वानर राज मैंने ही राम के रूप में अवतार लेकर रावण का वध किया है तथा अन्यान्य कार्य भी मेरे द्वारा ही हुए है, आप इस रहस्य को समझो ।।150।।

श्री अध्यात्म रामायण

प्रश्न- सुख-दुःख क्यों होते हैं?

उत्तर-"मानते है इसलिए होते है। दूसरों के तो अपने को नहीं होते। मैं और मेरा यही उलझन है" ।।151।।

"घण्टे-आध घण्टे चुप होने को कहते हैं। यह तो बताओ कि अप्पन बोले ही कब?"।।152।।

वृक्ष के सूखे पत्ते निरुद्देश्य इधर-उधर उड़ते रहते है इसी तरह सांसारिक प्रपंचों का अर्थ समझ लेना

है ।।153।।

अपने भीतर ही लय लगा कर रमे रहो। संसार में और सब कुछ तो अर्थविहीन है ।।154।।

“कोई घर में ही बैठा हुआ मैं-मैं करता रहता हो, तो लोग उसे देखकर हँसते हैं और यही समझते हैं कि वह पागल हो गया है”।।155।।

संसार के सभी प्रपंच बिना सिर-पैर की गप्प हैं। किन्तु इससे भी ऊँची गप्प, गप्प छोड़ने की है ।।56 ।।

कोई सन्निपात के प्रभाव से घर में होते हुए भी शोर मचाता रहता है कि ‘घर जाऊँ, घर जाऊँ’। जबकि वह घर का घर में ही है। वस्तुतः कभी साधनों को देखना है ।।।57।।

सन्निपात से उबरने पर यह नासमझी मिट जायेगी कि मैं तो अपने घर से बाहर कहीं गया ही नहीं, वहीं का वहीं हूँ।।158 ।।

धन और जवानी का नशा इतने जोर-शोर से चढ़ा

कि सब होश-हवाश खो दिये। किन्तु नशा उतरने के बाद यह समझ आई कि मैं तो जहाँ का तहाँ ही हूँ ॥159॥

वस्तुतः ज्ञान ही तो है सर्वत्र अज्ञान को क्या कभी किसने देखा है? जिसको नहीं जाना, वह तो है ही नहीं और यदि जान लिया तो फिर अज्ञान कैसे होगा, वह तो ज्ञान ही है॥160॥

यह परमात्म-चैतन्य-धन तो अणु-अणु में इकसार परिपूरित है यहाँ तक कि श्वास लेने जितनी जगह भी खाली नहीं है ॥161॥

ज्योति तो है किन्तु वह जलाती नहीं है। उसका अति सुकोमल मंद-मंद प्रकाश वृत्त्यारूढ होकर भ्रमपाश का नाश करता है ॥162॥

मूत्रादि के प्रवाह को चाहने पर उसको बीच में ही कौन रोक देता है? उस प्राण के प्राण को मनुष्य शरीर में देखो ॥163॥

“योगवाशिष्ठ के अन्त में वशिष्ठजी ने श्रीराम से

सृष्टि कैसे हुई, इस विषय में पुनः प्रश्न करने के लिए कहा तो रामजी ने इन्कार कर दिया। वशिष्ठजी ने कहा विनोद के लिए ही सही, पूछो ! किन्तु रामजी ने कहा 'नहीं' ॥164॥

- श्रीयोगवाशिष्ठ

'आगे होगा, आगे होगा', जीव में यह भाव लगा ही रहता है। किन्तु महात्मा बाई यह उपदेश करते हैं कि यह पक्का जानो कि आगे कुछ भी नहीं होना-जाना है॥165॥

"यह दृढ़तापूर्वक कहती हूँ कि है-है-है, यह है भी नहीं अपितु मै स्वयं ही हूँ। घट-घट मे अपरोक्ष रूप से व्याप्त हूँ। यही सब अनुभवों का बीज है"॥166॥

प्रश्न-अपना आप ही है, अन्य कुछ नहीं है तो यह घटनाक्रम, दृश्य विकार सब क्या है?

उत्तर- "यह तो ऐसे है जैसे 'हाँ, हाँ, हाँ, ॥' सब अपना ही स्वीकार है। अपने को अपना ही परिचय। ॥167॥

"कतिपय साधन करके अब मोक्ष पद प्राप्त कर लूँ, यह धारणा त्याग दो और यह जान लों कि स्वयं पहले से ही मोक्ष स्वरूप में बैठे हुए हो" ।।।68।।

श्रीत्रिपुरा रहस्य

आत्म-समुद्र में ज्ञान, अज्ञान, बन्धन, मोक्ष-तरंगों के समान उठते और विलय होते रहते हैं ।।169।।

श्री अष्टावक्र गीता

ज्ञान, अज्ञान, भक्ति, मुक्ति तथा गति आदि सब हमारे द्वारा ही बनाये हुए हैं। हमारी स्वयं की इस महिमा को पहचानों ।।170।।

किसी अनुष्ठान में "मिट्टी के एक हजार महादेव नित्य बनाते हैं और प्रत्येक पर एक एक साबुत अक्षत रख कर प्रतिदिन उन सभी को पानी में डुबो देते है" ।।71।।

ज्ञान एवं भक्ति उस परब्रह्म परमात्मा की पूजा-आराधना ही है। इसी तरह जितने भी पद-पदार्थ है

ये सभी पत्र-पुष्पों के ही प्रतीक है। ॥72॥

करुण भाव से जनहितार्थ कार्य करते रहो। प्रभु के मन का इसी से निवारण होगा। श्रीप्रभु के चरणों में शरण प्राप्त करने के लिये सब कुछ श्रीराम की आज्ञा समझ कर उसको शिरोधार्य करते रहो। ॥73॥

श्रीरामचरितमानस

"मेरा होकर मेरा ही चिन्तन भजन कर मेरे में लगा हुआ मुझ में सराबोर होकर मुझे ही पायगा।" यह स्वयं भगवान की घोषणा है ॥174 ॥

श्रीगीताजी

निश्चय के महल में परम प्रेमास्पदं प्रियतम का वास है। प्रेम के मार्ग से दर्शन पाकर अखण्ड आनंद मंगल सजा लें॥175॥

भजन- दया राम जी

वचनामृत : तृतीय भाग

"ये लोग दुकानें (मत, संप्रदाय, मठ, आश्रम, संघ आदि) लगा-लगा कर बैठे है। अपनी वस्तु तो नहीं बताते केवल मोल-तोल ही करते रहते है। सारा जगत् इससे ही भ्रमित है" ।।176।।

प्रश्न- हे ब्रह्मस्वरूप बाई! वस्तु आप ही बता देने की दया करें?

उत्तर-मैंने तो कोई दुकान नहीं लगाई है तथापि आपकी आवश्यकता को स्पष्ट करे कि आपको क्या चाहिये ? ।।77।।

वास्तव में आप जैसी परमहंस दिव्यात्मा की तो कुछ भी नहीं चाहिये। आप स्वयं तो आत्मा राम अकाम पूर्ण काम, परिपूर्ण, सुख स्वरूप एवं सुखधाम जो हो ।।178।।

मैं ज्ञानरूप हूँ, ब्रह्मरूप हूँ तथा वह तू ही है, ऐसा

कुछ भी निश्चित रूप से मत करो। यह सब गड़बड़झाला मात्र है, असमंजस की स्थिति ही है ||179||

प्रश्न- यह पंच भूतादि प्रपंच पहले से (प्रासिद्ध) है अथवा नित-नव (दृष्ट-सृष्ट) है?

उत्तर- "तुम्हारा ही कल्पित है। कैसे भी मान लो" ||180 ||

इस पार अथवा उस पार, यह सब बच्चों की सी बातें है। ऐसी तथ्यहीन कल्पना को त्यागकर अविकल, अविरोध व द्वन्द्वरहित होकर रहो।||181||

यदि हमारे मनोरथ (संकल्प-विकल्प) सत्य होते तो सब उथल-पुथल हो जाता, पहाड़-पर्वत परस्पर भिड़ जाते परन्तु ऐसा संभव नहीं है।||182||

खंडन-मंडन से क्या कोई वस्तु (मूर्ति आदि) विखंडित हो जायेगी? अवस्तु अनादि काल से खंडित ही है, चाहे कुछ भी कहो या करो।||83 ||

"पास या फेल क्या होता है और क्या है बंधन

एवं मोक्ष? इसी तरह के ऊँचा और नीचा तथा गुण और दोष क्या है? ॥184 ॥

"हे तात! सुनो, माया से रचे हुए अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है)। गुण (विवेक) इसीमें है कि दोनों ही न देखे जायें, इन्हें देखना ही अविवेक है" ॥185 ॥

श्रीरामचरितमानस - उत्तर काण्ड

शांति-अशांति, जैसी घर में अनेक वस्तुयें रखी हुई है। इनमें से कोई ऊपर आकर तो पड़ती नहीं। इनका दूर से ही अवलोकन करो॥186॥

जैसे पुरुष की छाया उसका अनुसरण करती है वैसे ही जिस भाव को ग्रहण करेंगे वह वैसा दिखाई देगा। ॥87॥

श्रीरामचरितमानस

महाकवि तुलसीदास ने अपने इस आधे द्वंद में सृष्टि के सार तत्त्व को स्पष्ट कर दिया है कि प्रभु राम बालक रूप मे जग रूपी आंगन में अपने प्रतिबिम्ब

के विविध रूप देख कर नाच रहे है, प्रसन्न हो रहे है॥188॥

हे परब्रह्म परमेश्वर! यदि तू ही नहीं है तो जगत के प्रपंच का प्रसार कहाँ से होवे ? अतः आदि, मध्य व अंत सर्वत्र आप सनातन का ही प्रसार है॥189॥

"हे बाई! आपने किन सद्ग्रन्थों के श्रवण-पाठ से संसार के सारतत्त्व को जाना है?" "मैं तो अपना पाठ करती हूँ। अन्य किसी प्रकार के श्रवण-पठन का विचार तक नहीं रखती" ॥190॥

या तो खुद को मिटाकर ईश्वर को रहने दें अथवा ईश्वर को मिटाकर खुद को रहने दें ॥191॥

"ईश्वर को याद रखना जितना सरल है, उसको भूलना उतना ही कठिन" ॥192॥

प्रश्न- हे बाई! आपके इतने गूढ उपदेश के लिये तो अधिकारी चाहिये। सिंहनी के दूध से स्वर्ण पात्र के अतिरिक्त अन्य पात्र टूट-फूट जाते हैं ।" उत्तर- "फूटते हैं तो फूटने दो किन्तु अधम सत्य तो कहना

ही नहीं" । ।।93 ।।

प्रश्न- वृद्धावस्था में तो व्यावहारिक प्रपंच से मुक्ति लेनी चाहिये? उत्तर- "मेरी दृष्टि में तो शांत भाव से कोठड़ी में बैठकर ध्यान करो अथवा सड़क पर पत्थर डालो-दोनों बराबर है" ।।194।।

"यह तो कहा जाता रहा है कि हृदय में गहरे से गहरे उतरना चाहिये।" परन्तु कोई यह भी तो बताये कि पहुँचना कहाँ है?" ।।195।।

जहाँ के तहाँ ठहर जाओ। बिल्कुल मत चलो। वस्तुतः यह ठहरना ही समाधान है तथा चलना अधिक भ्रम पालना है ।।196।।

शरीर है तब तक ही खटपट का विस्तार है। इस खटपट में ही सारतत्त्व को देखकर तत्काल अपना उद्देश्य प्राप्त कर लो ।।197।।

"हे महात्मा बाई! आपने ईश्वर-साक्षात्कार किया है। हमे भी तो उपाय बताओ?" "इसमें उपाय की कौन सी बात है। परमात्मा तो सर्वत्र समाया हुआ

है”।।198।।

“किसी को भी अपना जन्म या मृत्यु याद नहीं है क्योंकि कभी जन्मा अथवा मरा ही नहीं ।।99।।

मुँह बंद कर दिया है, किसी से कोई शिकायत नहीं। शांत भाव से सतत् स्मरण-चिन्तन से ही उस परम सत्ता के प्रकाश की बिजली कौंधेगी ।।200।।

।। चुप ।।

‘काली पोथी’

आम के दिनों में बाई ने मुझे इतने आम खिलाये। एक-एक आम देतीं और वापस ले लेतीं और दूसरों को वितरण करती। वो एक आम देतीं मैं उसे चूस भी नहीं पाता, तभी वह दूसरों को दे देती। वह प्रसाद हो जाता। मुझे इतने आम खिलाए कि मैं आम खाने से तृप्त हो गया, ऐसी तृप्ति मुझे कभी नहीं मिली। बाई की काली पोथी देखी, बाई की काली पोथी सूफियों की धोली किताब से भी आगे जाती है, जो शिष्यों को परम्परा से दी जाती है। काली पोथी का कोई मुकाबला नहीं।

-ओशो (आचार्य रजनीश)

महात्मा भूरीबाई के जीवनवृत्त और आध्यात्मिक ज्ञान को देखने से यह स्थापित होता है कि परम ज्ञान और मानव जीवन के चरम उत्कर्ष,

आत्म-साक्षात्कार की गति उन्होंने प्राप्त की तथा साधारण जनमानस के लिये अनुसरण का विषय हो गई। उनका सरल, प्राकृतिक, सहज व्यवहार और सहज ज्ञान उनके प्रेमपूर्ण व्यक्तित्व का सुन्दर स्वरूप है। निश्चल प्रेम एवं देदिप्यमान ज्ञान का वे अथाह समुद्र थीं। सांसारिक तापों से तप्त लोग उनके यहाँ आकर, आनन्द और प्रेमरूपी सागर में गोते लगाकर शीतल होते थे।

-'सहज साधना सन्त परम्परा के परिप्रेक्ष्य में मेवाड़
की महात्मा भूरी बाई का दार्शनिक चिन्तन'
(डॉ. लक्ष्मी झाला द्वारा पीएच.डी. शोध)

'चुप'

चुप साधन चुप साध्य है, चुप चुप माँहि समाय।

चुप समझया री समझ है, समझया चुप है जाय ||

-संत ठाकुर रामसिंह केलवा

संत वाणी

सूत्र बड़ा प्यारा है, आनन्द भारती तुम्हें यह कहाँ से मिला ? भूरीबाई से मेरे बड़े निकट के संबंध रहे हैं। शास्त्र देखे नहीं और सत्य जान लिया, इनकी गिनती भारत की कुछ इनी-गिनी महिलाओं में करने योग्य है। जैसे- राबिया, मीरां, सहजोबाई, रानी रूपांदे, दया, मदालसा, इनमें इनकी गिनती करने योग्य है। आनन्दी बाई की प्रसिद्धि है, भूरी बाई की अनुभूति है। प्रसिद्धि और अनुभूति में बड़ा फर्क है। भूरीबाई का कोई मुकाबला नहीं, 'चुप' हो, करना क्या है ?

-ओशो (आचार्य रजनीश)

भूरी बाई, तुम प्रेम की साक्षात् मूर्ति हो ।

-स्वामी शरणानन्द जी, मानव सेवा संघ,
वृन्दावन

जैसी बाई थी वैसी ही यह पुस्तक बनी है ‘जीवनी एवं संस्मरण’। यह पुस्तक भक्तों, गृहस्थियों और संन्यासियों का मार्गदर्शन करने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी एवं भला करेगी।

-स्वामी योगेश्वरानन्द, नेपाल

जीवनी एवं संस्मरण

राम

काली पोथी

छोटी सी पोथी करी, जग जीवन से सार। एक राम उजियार है, और सकल अँधियार।।

-सन्त श्याम सुन्दरजी जोशी (आई.ए.एस.)